दैनन्दिन रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

कुलरंजन मुखर्जी

प्रकाशक—

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती

प्राकृतिक चिकित्सालय

११४/२बी और सी, हाजरा रोड,

कालीघाट, कलकत्ता-२६

फोन—४७-३१८०

पुस्तक मिलनेके पते

१। डा० नीलकान्त चक्रवर्ती

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४/२बी और सी, हाजरा रोड,

कलकत्ता-२६

फोन—४७-३१८०

२। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

२०३, महात्मा गांधी रोड

कलकत्ता-७

मुद्रक —

पपुलर आर्ट प्रिन्टर्स

३, मुक्ताराम बाबु सेकेण्ड लेन,

कलकत्ता-७

निवेदन

प्राकृतिक चिकित्साको एक तरहकी गृह-चिकित्सा कहा जा सकता है। बिना दवा, बिना अस्त्र व बिना खर्च इस पद्धतिके द्वारा अपनी व अपने परिवारकी चिकित्सा की जा सकती है। इस चिकित्साका प्रधान गुण यही है कि यह बहुत सहज तथा बहुलांशमें निरापद है। दवा ग्रहण करनेसे जैसा किसी विपदकी सम्भावना है, प्राकृतिक चिकित्सामें ऐसी कोई आशंका ही नहीं, ऐसा कहा जा सकता है।

इसलिये प्राकृतिक चिकित्सा जनसाधारणकी चिकित्सा है। महात्मा गांधीने इसी कारणसे इस चिकित्साको सारे देशमें चालू करनेकी कोशिश की थी।

कोई कोई समझते हैं कि वर्तमान समयमें विभिन्न जीवाणु-नाशक दवा (antibiotics) का आविष्कार होनेके कारण अब और दूसरी चिकित्साकी जरूरत नहीं। किन्तु जिस अवस्थाके ऊपर विभिन्न जीवाणु वृद्धि पाते हैं, किसीभी दवासे वह दूर नहीं होता तथा एक जीवाणुको मार डालनेपर उसकी जगह दूसरे जीवाणु आकर खड़े होते हैं। इसके अलावा इङ्गलैंडके चिरस्मरणीय डा० थामस सोडनहाम कहते थे कि हर नये रोग रोगी के शरीरमें स्वास्थ्यको वापस लानेके लिए प्रकृतकी चेष्टा छोड़कर और कुछ है ही नहीं। जब विषैली दवाओंके द्वारा बार-बार प्रकृतिकी इस चेष्टा को व्यर्थ किया जाता है तब रोग पुराना आकार ग्रहण करता है। इसलिये पश्चिमी जगत आज हृद्रोग, उन्माद रोग वातव्याधि, ब्लड प्रेसर तथा कैन्सर आदिसे ध्वंस हो रहा है।

किन्तु प्राकृतिक चिकित्साके द्वारा रोगको दबाया नहीं जाता। जिस अवस्था के ऊपर विभिन्न जीवाणु वृद्धि पाते हैं तथा जिस अवस्थाके लिये विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं उस ही देहसे निकालकर सब रोग आरोग्य करनेकी चेष्टा की जाती है। इसलिये यह दमनमूलक (Suppressive) न होकर अपनयनमूलक (eliminative) होती है। इसके अलावा यदि ठीक-ठीक ढंगसे चिकित्सा हो तो इसके द्वारा तथाकथित दवाके तरह ही जल्दीसे जल्दी रोग आरोग्य किया जा सकता है।

वर्तमान समयमें भारतवर्षके बहुत जगह पर प्राकृतिक चिकित्सालय खुला है। पर सभी जगहपर ही आधुनिक पद्धतिसे चिकित्सा होती है यह नहीं कहा जा सकता। पहले ढाल तलवारसे लड़ाई होती थी। अब आणविक अस्त्रोंसे लड़ाई होती है। पहले लड़ाईका जो उद्देश्य था अब भी वही है किन्तु अब लड़ाईके लिये आणविक अस्त्र चाहिये। प्राकृतिक उपायसे रोगके साथ लड़ाई करनेके लिये भी अब नये नये अस्त्रों का आविष्कार हुआ है। आधुनिक गवेषणाके अस्त्रागारसे इन सब अस्त्रोंको चुनकर जनसाधारणके हाथोंमें देनेके लिये ही यह पुस्तक लिखी है।

इन पद्धतियोंके पीछे पृथ्वीके बड़े-बड़े डाक्टरोंका समर्थन है। किन्तु प्रधानतः अपनी जिन्दगीके दीर्घ अनुभवोंको निचोड़कर ही यह पुस्तक लिखी गई है।

मैंने दीर्घ समयके लिये यही साधना की है कि किन किन विशेष उपचारोंके द्वारा किस तरहसे भिन्न-भिन्न रोग आरोग्य किया जा सकता है; जैसाकि सर्दीमें छातीको लपेट, दांतके दर्दमें गरम ठंढी कुल्ली तथ कटा घावमें जलपट्टी आदिको प्राकृतिक चिकित्साको अचूक उपचार (specific) कहा जा सकता है। ऐसा प्रायः सभी रोगोंके बारेमें अपने अनुभवोंसे प्राप्त सत्यको इस पुस्तकमें संयोजित करनेकी चेष्टाकी है।

हमारी पुस्तकें हिन्दीमें अनुभव होनेके बाद सारे भारतवर्षमें चल रही है। अब हमारी पुस्तकोंका अंग्रेजीमें अनुवाद कर रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि अंग्रेजीमें परिवर्तित होने पर मेरा निवेदन सारी दुनियामें ग्रहीत होगा।

वर्तमान समयमें पृथ्वीके सभी देशोंमें प्राकृतिक चिकित्साका प्रचार वृद्धि प्राप्त हुआ है। सत्यमेव जयते। जो सत्य है उसकी जय अवश्य ही होगी।

प्राकृतिक चिकित्सालय
११४/२ बी, हाजरा रोड, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

श्री कुलरञ्जन मुखर्जी

स्व० कुलरञ्जन मुखर्जी

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ट
सप्तम अध्याय—		

अध्याय	विषय	पृष्ठ

दैनन्दिन रोगों की
प्राकृतिक चिकित्सा

प्रथम अध्याय

रोग व उसका प्रतिकार

हमलोगोंको जो कोई भी रोग क्यों न हो, शरीरमें संचित विभिन्न विकार, दूषित पदार्थ व विष (waste matter, morbid meterials and poisons) ही उनका मूल कारण है। पहलेसे ही शरीर उन समस्त पदार्थों द्वारा भाराक्रांत रहने पर समय-समय विभिन्न प्रकार के जीवाणु देहके भीतर वृद्धि पाते हैं एवं वे विभिन्न श्रेणीका विष उत्पन्न करके शरीरमें विषका बोझ बढ़ाते हैं। जब देह अथवा देहके विभिन्न यंत्र उनके द्वारा आक्रान्त होते हैं तब प्रकृति विभिन्न पद्धति अवलम्बन करके उन सबोंको नष्ट अथवा देहसे बाहर कर देना चाहती है। भीतर व बाहरके शत्रुओंके इन आक्रमण, एवं प्रकृतिकी आत्मरक्षा व प्रत्याक्रमण मूलक ये जो दाव-पेंच होते हैं, उसीका नाम रोग है।

साधारण अवस्थामें प्रकृति मल, मूत्र, पसीना व साँस के द्वारा देहके विकार को बाहर करके तथा देहके यंत्रों द्वारा उन सबोंका नष्ट करके

शरीरको स्वस्थ रखती है। रोग होने पर भी प्रकृतिके ठीक उन्हीं सब रास्तोंका अनुसरण करके ही शरीरको हम रोगमुक्त कर सकते हैं। जिस रास्ते व जिस पद्धति से प्रकृति देहके इस मल विकार विष व जीवाणुको प्रतिक्षण बाहर कर एवं देहके भीतर नष्ट कर देहको स्वस्थ रखती है, ठीक उसी प्रणालीका अनुसरण करके देहको रोगमुक्त करने की जो पद्धति है, उसीका नाम प्राकृतिक चिकित्सा है।

हमारा पेडू ही देहका प्रधान कूड़ा घर है। देहके दूषित संचयका यही प्रधान स्थान है। इसलिये सभी रोगमें पहले ही कोष्ठको साफ कर लेना आवश्यक है।

शरीरके दूर-दूर हिस्सोंमें भी बहुत-सा मैल जमा होकर शरीरके लिये विपज्जनक हो जाता हैं। देहके भीतर सर्वदा ही प्रायः सभी रोगोंके जीवाणु रहते हैं। कोई जीवाणु ही हठात् आक्रमण कर देहके भीतर वृद्धि नहीं कर सकती यदि पहले से ही देहके भीतर उनके लिये जमीन तैयार न हो। शरीरमें संचित विकार ही वह जमीन तैयार कर सकती हैं। इसलिये कोष्ठ साफ कर ही, ताप-स्नान (hot bath) प्रभृति लेकर या दूसरी तरह से शरीरके लोमकूपोंको खोल देना आवश्यक है एवं प्रचुर जलपान कर मूत्रस्रोतको साफ रखना जरूरी है।

शरीरमें जिस अवांछित संचयके फलस्वरूप विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं, इसी सहज व सरल पद्धति द्वारा हम उसे बाहर कर दे सकते हैं।

साथ-साथ शरीरके विभिन्न यंत्रोंको उद्दीप्त कर लेना भी आवश्यक है। कारण हमारा देह एक सक्रिय यंत्र है। इसके भीतर ही आत्मरक्षा और रोग आरोग्य करने की सारी व्यवस्था है। इसी व्यवस्थाका नाम हैं रोग प्रतिरोध क्षमता (vital resistance ।)

शरीरमें अत्यधिक विषाक्त पदार्थ संचित होनेपर उनके विषक्रिया द्वारा वे समस्त यंत्र दुर्बल हो जाते हैं एवं शरीरकी रोग-प्रतिरोध क्षमता नष्ट हो जाती है। उसे छोड़कर रोगके समय शरीरके भीतर जो विषकी

धारा निकलती है, वह देहके सभी यंत्रोंको न्यूनाधिक अवसन्न कर डालती है।

इसलिये आभ्यन्तरिक देहकी सफाईके साथ-साथ देहकी आत्मरक्षा व अपनयनमूलक यंत्रोंको चंगा करना ही चिकित्साका दूसरा अंग है।

वस्तुतः प्राकृतिक चिकित्सा बहुत कुछ दो पहियेवाली गाड़ीके समान है। इसका एक पहिया अपनयनमूलक है और दूसरा उद्दीपनमूलक (stimulative)।

जब देहको विकारमुक्त करने के साथ-साथ देहके प्रधान यंत्रोंको चंगा कर लिया जाता है, तब किसी रोगका रहना कठिन हो जाता है। इसलिये देहकी साधारण चिकित्सा (general treatment) द्वारा ही अधिकांश रोग आरोग्य किया जा सकता है।

वास्तवमें शरीरमें विष संचयका नाम ही रोग है और उससे देहको मुक्त करना ही रोगकी चिकित्सा है।

इस कारण रोगके विभिन्न आकार ग्रहण करनेपर भी उसे एक ही रोग कहा जाता है एवं उनके चिकित्सा की मूलनीति भी एक ही है।

तथापि रोगकी विशेष अवस्था की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। विभिन्न रोग देहके भीतर विभिन्न भावोंसे प्रकाश पाते हैं एवं देहके भीतर विभिन्न अवस्था उत्पन्न कर देते हैं। इसलिये प्रत्येक रोगकी प्रकृतिके अनुसार विभिन्न रूपोंसे शरीरको विकारमुक्त व संजीवित कर लेना ही आवश्यक है।

प्राकृतिक चिकित्सामें कोई औषधि व्यवहार करने की जरूरत नहीं होती। साधारणतः जल, मिट्टी, उत्ताप, वायु, प्रकाश, हवा, सूर्यकी किरणें, मालिश, व्यायाम, आसन, प्राणायाम, पथ्य, उपवास व विश्राम प्रभृति द्वारा ही समस्त रोगोंकी चिकित्सा होती है। किन्तु जल व मिट्टी प्रभृतिको औषध समझना भ्रमपूर्ण है। इनके द्वारा शरीर विकारमुक्त व चंगा हो जाता है, इस कारण ही रोग आरोग्य हो जाता है।

औषधके विषको शरीरमें घुसाकर जो लाभ पानेकी चेष्टा होती है,

हम उन सबोंकी प्राप्त कर सकते हैं। इन सबोंके विज्ञानसम्मत प्रयोगके द्वारा औषधके द्वारा किसी रोगको दबाकर रक्खा जाता है, किन्तु रोगको दबा देनेपर ही रोगका मूल कारण नष्ट नहीं होता है। इस कारण औषध एक रोग आरोग्य करता है, किन्तु उससे और एक रोग उत्पन्न होता है। जब प्राकृतिक चिकित्साके द्वारा रोगका मूल कारण ही शरीरसे विदा लेता है तब केवल रोग ही आरोग्य होता है ऐसा नहीं, देहके विकारशून्य होनेके फलस्वरूप स्वास्थ्य ही उन्नत हो जाता है एवं शीघ्र कोई नया रोग होना भी कठिन होता है।

द्वितीय अध्याय

बुखार

[१]

हमलोगोंका शरीर जब बहुत अधिक बुरी वस्तुओंसे भर जाता है या जब किसी वजहसे खून जहरीला हो जाता है, तब किसी-किसी हालतमें प्रकृति शरीरकी गर्मीको बढ़ाकर इस रोगके विषको जला देने (oxidise) की कोशिश करती है और तरह-तरहके खास-खास उपायों द्वारा शरीरके विभिन्न दरवाजोंसे उन्हें बाहर निकालनेकी चेष्टा करती है। प्रकृतिकी इसी खास कोशिशका नाम ही बुखार है।

वर्तमान समयमें ज्वरको कोई रोग नहीं गिना जाता है। शरीरकी विभिन्न रुग्ण अवस्थाओं का यह एक लक्षण है ऐसा मान लिया जाता है। इसलिए ज्वर बोलनेसे कुछ नहीं समझा जाता है। जिस कारणसे ज्वर पैदा होता है उसीको रोग कहा जाता है। इसलिये वर्तमान समयमें ज्वरके बदलेमें ज्वरके कारणके अनुसार ज्वरका विभिन्न नाम लिया जाता है।

ज्वरके समय विभिन्न रोगोंके लक्षण उपस्थित होते हैं। साधारणतया जाड़ा और कँपकँपीके साथ बुखार आता है। सभी समय कँपकँपी नहीं आती। शीत भी कभी कम मालूम होती है कभी अधिक। जबतक इस तरह ठंढ और कँपकँपी रहती है उसे बुखार की शीतल अवस्था (cold stage) कहते हैं। इसके बाद बुखार जब खूब जोरसे चढ़ जाता है और बुखारकी गर्मीसे शरीर जलने लगता है उस समय उसको ज्वरकी गरम अवस्था (hot stage) कहते हैं। इसके अलावा बुखारके वक्त आदमीको कमजोरी, सुस्ती, उल्टी, अनिद्रा, शिर-दर्द, गन्दा श्वास-प्रश्वास, हृदस्पन्दन, बकबकी और बेहोशीकी नींद

आदि रोगके लक्षण दिखायी देते हैं।

इस अवस्थाको दूर करनेके लिये आप ही आप शरीरके भीतर विभिन्न चेष्टाएँ होती हैं। भगवानने हमलोगोंके शरीरको ऐसा विचित्र बनाया है कि, जभी हमलोगोंके खूनसे अधिक विष फैलने लगता है तभी वह देहके ताप उत्पन्न करनेवाले यंत्रोंको (thermogenic centres) उत्तेजित करके शरीरके भीतर अत्यधिक गरमी उत्पन्न कर देता है। इस गरम अवस्थामें शरीरके भीतर कोई भी रोगका जीवाणु अधिक बढ़ नहीं पाता और तेज गरमीमें बहुत-से कीड़े खुद जल जाते हैं। रोगके जहरको निकालनेके लिये भी प्रकृति बहुत तरहसे कोशिश करती है। पहले ही वह पेटको साफ कर लेना चाहती है। इसलिये बुखारके शुरूमें प्रायः हो कय होती है या जी मिचलाने लगता है। रोगके विषके कारण स्नायु केन्द्र (vomiting centre) के उत्तेजित हो जानेसे अपने आप कय होती है। अधिक गरमीसे शरीरका जो जहर जलता है, प्रकृति उसे सांस छोड़नेकी हवाके साथ बाहर निकालती है। इसी कारण बुखारके समय सांसें बहुत बदबूदार निकलती हैं। हृदय भी शरीरके भीतरसे बिगड़े हुए खूनको लाकर उसे शुद्ध करनेके लिये जल्दी-जल्दी फेफड़ेमें पहुँचाता है और शरीरको साफ करनेके लिये फिरसे उसे पम्प करके सारे शरीरमें भेज देता है। इसीलिए बुखारके समय दिलकी धुकधुकी बढ़ जाती है। नाड़ी भी तेज चलकर हृदयकी इसी परेशानीको बताती है। फेफड़ोंको भी शरीरकी गरमी और हृदयकी तेजीके साथ अपनी चाल मिलाकर शरीरको शुद्ध करनेके लिये बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसीलिये बुखारके समय सांस गहरी और तेज चलने लगती है। प्रकृति काफी जहर पेशाबके साथ निकाल देती है। इसीसे बुखारके रोगीका पेशाब गंदा और बहुत बदबूदार होता है। रोगी के शरीरसे भी एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है। इन सभी बातोंसे प्रमाणित हो जाता है कि प्रकृति अपना घर साफ कर रही है। अन्तमें जब पसीना बहुत चलता है

तब हमलोग समझते हैं कि प्रकृतिकी जीत हुई। इन्हीं सब तरह-तरह के उपायोंसे प्रकृति जब देहके भीतर इकट्ठे जहरको बाहर निकाल फेंकने में कामयाब हो जाती है, तब बुखार आप ही आप छूट जाता है।

इसलिये बुखार यद्यपि दुश्मन के भेष में आता है तो भी इसे दुश्मन नहीं मानना चाहिये। Fever is not in itself harmful—बुखार स्वयं देहके लिये क्षतिकारक नहीं है। (Hugh G. Garland, M. D., F.R.C.P....Medicine, P. 106, London, 1953) एवं वर्तमान समय में इसे प्रकृतिकी एक आत्मरक्षामूलक व्यवस्था (natural defensive mechanism) जैसा गिना जाता है (Hobart A. Reimann. M. D,--Treatment in General Medicine, Vol· 1, p. 3. Philadelphia, 1948)। वस्तुतः संक्रामक रोगमें यदि ज्वर न रहे तब उसे एक गुरुतर लक्षण समझा जाता है [R. N. Chopra, B. Mukherjee and I. C. Chopra—A Treatise on Tropical Therapeutics, p. 211, Calcutta, 1953

[२]

इस कारण जोर करके ज्वरको कभी बन्द नहीं करना चाहिये क्योंकि ज्वर बन्द करनेसे ही ज्वरका कारण नष्ट नहीं होता। कुछ दिन तक वह दबा रहता है, इसके बाद ही वह फिर पुराने ज्वर एवं कभी-कभी अजीर्ण, चर्मरोग, हृदय की दुर्बलता एवं मस्तिष्क के रोग के आकार में लौट आता है। इसीलिये एक डाक्टर ने कहा है ज्वर दबा देनेवाली जितनी दवाइयाँ हैं उनसे जितना लाभ होता है उससे अधिक हानि होती है (Frederick W. Price. M. D. F. R. C. S—A Text-book of the Practice of Medicine, pp. 1—10)।

किसी-किसीका कहना है कि जीवाणुओंके आक्रमणसे ही ज्वर होता

है। अतः जीवाणुको मार डालने से ही ज्वर चला जाता है किन्तु देहकी जिस दोषयुक्त अवस्थाके ऊपर विभिन्न जीवाणु वृद्धि पाता है, किसी भी दवासे वह नहीं जाता एवं एक जीवाणु मार डालनेके बाद उसके स्थानपर दूसरे जीवाणु खड़े हो जाते हैं।

इसलिये प्रकृति ज्वर उत्पन्न कर जिस अवस्थाको नष्ट करना चाहती है उसे दूर करना ही या भीतरसे शरीर धो डालना ही ज्वरकी प्रधान चिकित्सा है।

यह उद्देश्य विशेष रूपसे साधन किया जाय पेट साफ करके, नींबूके रसके साथ ढेरसा पानी पीकर, दिनमें तीन बार शिरको धोनेके बाद भींगी तौलियासे समूचे शरीरको पोंछकर एवं पेडूको ठंढा रखकर। इससे एक तरफ तो शरीरके भीतरकी खराब चीजें, मल और मूत्रके साथ बाहर निकल जाती हैं, दूसरी तरफ तौलिया स्नानके फलस्वरूप सब रोम -कूप खुल जाते हैं और शरीरको आत्मरक्षा करनेके यंत्र सब सतेज हो जाते हैं। इसलिये बुखार छुड़ानेके लिये बहुत बार तो और भी कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं होती।

बुखार चाहे किसी वजहसे पैदा हुआ हो, पहले ही देर न लगाकर पेटको साफ कर लेना उचित है।

इसलिये बुखारमें पहले हमेशा एक बार डूस देकर रोगीके पेटको साफ कर देना चाहिये। यदि रोगीको शीत और कँपकँपी हो तो डूसमें गरम पानी का व्यवहार करना चाहिये। और यदि रोगीका शरीर जलता हो और उसे ठंड तथा कँपकँपी न हो, तो ऐसा पानी व्यवहार करना चाहिये जो न अधिक गरम हो और न अधिक ठंढा। डूसके पानीमें हमेशा एक नीबूका रस निचोर देना चाहिये। यह आँत की मल निःसारक क्षमता को बढ़ाता है तथा जल्दीसे कोष्ठ साफ करता है (Sir William Howard Hay, M. D. — Health via Food, p 219)। किन्तु रोगीको यदि कड़ी कब्जियतकी शिकायत हो तब डूसके पानीमें

थोड़ा शुद्ध मधु मिलाकर देना चाहिये। इससे पेट निश्चय ही साफ हो जाता है।

बुखार होते ही इस तरह डूस देने से बहुत बार तो बुखारकी कमर ही टूट जाती है। जबतक ज्वर आरोग्य न हो तबतक रोज रोगी को एक डूस देना कर्त्तव्य है।

यदि रोगीको शीत और कँपकँपी देकर ज्वर शुरु हो जाय तब डूसके बाद उसे २० से ३० मिनट के लिये उष्ण पादस्नान (hot foot bath) देना उचित है। इससे शीत और कँपकँपी अति शीघ्र मिट जाती और बहुत अवस्थाओं में पसीना आकर ज्वर चला जाता है। इसके बाद उसका सारा शरीर गुनगुने पानीमें भिगोए हुए गमछे से पोछ देना चाहिये।

गीले गमछेसे शरीर पोंछनेसे काफी गन्दा मैल भीगे गमछेके साथ उतर आता है। इसलिये हर बार रोगी का शरीर पोंछनेके बाद ही गमछे को अच्छी तरहसे धो लेना चाहिये।

बुखारमें रोगीको बहुत-सा पानी पानेको देना चाहिये। उसे जितने समयतक शीत और कँपकँपी रहे, आध-आध घंटे पर एक बार एक ग्लास गरम जल पीनेको देना उचित है। इससे जल्दी ही जाड़ा चला जाता है और बुखार भी तेज नहीं हो पाता। इसके बाद जब बुखारकी गरम हालत आ जाय, तब रोगीको बार-बार एकसे दो घंटेपर एक ग्लास ठंढे पानीमें नीबूका रस निचोड़कर पिलाना चाहिये।

सभी बुखारोंमें रोगीके पेटको खास तरहसे ठंढा रखने की जरूरत है। इसलिये बुखारकी गरम हालत आनेके बाद ही उसके पेडू को भींगे हुए गमछेसे बार-बार पोंछकर ठंढा करना चाहिये। इससे भी अच्छा हो यदि रोगीके पेडूके उपर एक गीली तौलिया रखकर, गरम होनेके बाद ही उसे हटा पुनः ठंढा पानीमें डुबोकर बार-बार बदल दिया जाय। यह भी दिनमें कमसे कम तीन बार दस से तीस मिनट तक करना जरूरी है।

रोगीका शीत और कँपकँपी चले जाने पर, बुखार अगर बहुत बढ़ गया हो; या उसके पेटमें कोई रोग हो तब उसके पेडू पर बालूदार गीली मिट्टी

की पुलटिसका इस्तेमाल करना जरूरी है। मिट्टीकी पुलटिस आध इञ्च मोठी होनी चाहिये और समूचे पेड़ूके ऊपर और नीचे का हिस्सा उससे ढका हुआ रहना चाहिये। मिट्टीकी पुलटिसके प्रयोगसे पेट अच्छा रहता है, आंतकी सड़न (intestinal putrefaction) दूर होती है और पेटमें आसानीसे साफ हो जाता है। दूसरे छोटी आंत साफ नहीं हो पाती, किन्तु मिट्टी की पुलटिस मलको ढकेलकर नीचे ले आती है। बहुत बार तो मिट्टीकी पुलटिसके इस्तेमालसे ही पेट खूब अच्छी तरह साफ हो जाता है। इन सब कारणोंसे मिट्टीकी पुलटिसके इस्तेमालसे बुखार आसानी से छूट जाता है और खराब बुखार भी थोड़े ही दिन

उष्ण पादस्नान (hot font–bath)

रहने पाता है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक जूस्टने इसकी बड़ी तारीफ करते हुए कहा है कि, बुखारको कम करनेके लिये मिट्टीकी ठंढी पुलटिससे बढ़कर और कोई दूसरी चीज नहीं है (Return to Nature, P. 125)। मिट्टीकी पुलटिसका पूरा-पूरा फायदा उठानेके लिये, जबतक बुखार न छूटे तबतक; हर रोज इसका इस्तेमाल करना चाहिये।

तेज बुखारमें रोगीको हर रोज हिप-बाथ देना भी जरूरी है। यह भी आंतको शुद्ध करता है और पेट को अच्छा रखता है। इससे विशेष लाभ यह है कि यह स्नायुओं (nerves) को शान्त करके शरीरसे बीमारीके

जहरको बाहर करनेमें शरीरके यंत्रोंको काफी ताकत पहुंचाता है। इसलिये हिप-बाथ बुखारके लिये एक जबरदस्त हथियार है। एक प्राकृतिक चिकित्सकका कहना है कि जिस तरह किसीको कान पकड़कर घरसे बाहर निकाल दिया जाता है, उसी तरह हम हिप-बाथके द्वारा बुखारको भी शरीरसे बाहर निकाल दे सकते हैं। बुखारके समय रोगीको दिनमें दो बार दससे तीस मिनटतक ठण्डे पानीमें हिप-बाथ करना चाहिये। इस स्नानके समय रोगीका गलेतक समूचा शरीर कम्बलसे ढककर रखना चाहिये। किन्तु यदि रोगीको हिप-बाथ देना सम्भव न हो, तो उसके पेडूपर दिनभर में कई बार मिट्टीकी पुलटिस या पानीकी
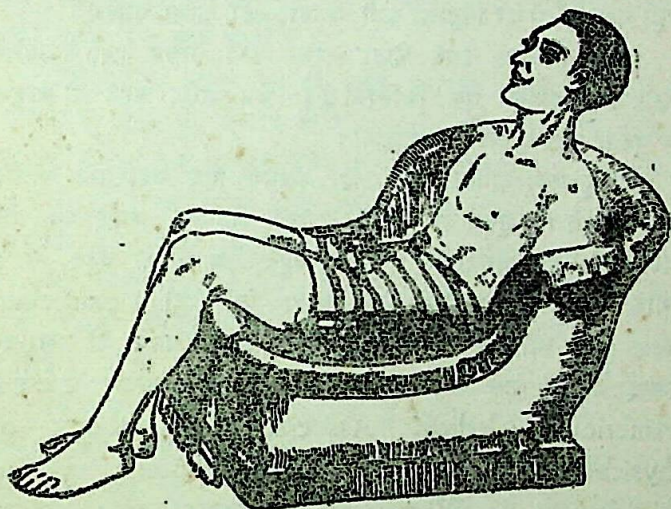
हिप-बाथ (hip-bath)

पट्टी गरम होने पर बार-बार बदलकर चढ़ानी चाहिये। बुखारके शुरू ही ये सब इन्तजाम करके रोगीके पेटको साफ कर देनेसे बुखार कभी भी भयंकर नहीं हो पाता। परन्तु इसके बाद भी, जिससे कि रोगीका पेट साफ रहे इसका ख्याल रखा जाना जरूरी है। तब बुखारमें हर

रोज एक बार डूस, एक बार मिट्टीकी पट्टी और दिनमें एक बार हिप-बाथ देना आवश्यक है।

लेकिन दवासे जैसे बुखार दबा दिया जाता है, मिट्टी और हिप-बाथके अधिक प्रयोगसे भी उसी प्रकार बुखार दब जाता है। इसलिये बुखारमें डूस तथा तौलिया-स्नान आदि हल्के इलाजसे शरीरकी सफाई पर ही ज्यादा ध्यान देना उचित है और साधारण बुखारमें मिट्टी तथा हिप-बाथ का पानी बहुत ठण्डा नहीं हो इसपर ध्यान देना चाहिये। यह बहुत जरूरी है कि पेडूका मिट्टी गरम हो जाय। मिट्टी गरम नहीं होनेसे शरीरकी सफाई नहीं होती बल्कि रोग दब जाता है, इसलिए मिट्टी गरम न हो तो मिट्टीका कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये।

बुखार मिटानेके लिये चेष्टा करना कभी उचित नहीं है क्योंकि बुखार ही प्रकृतिकी एक चिकित्सा है। जब शरीर साफ हो जायगा तब बुखार आप से आप चला जायगा।

तेज बुखारमें रोगीका शिर ठण्डा रखनेके लिये ज्यादातर कोशिश होनी चाहिये। शुरूसे ही रोगीके शिरको दिनभरमें, कमसे कम तीन चार बार धो देना जरूरी है। बुखार बहुत तेज हो तो बहुत देरतक रोगीके शिरपर ठंढे पानीकी धार अथवा ठंढी पट्टी (cold compress) का इस्तेमाल करना उचित है। ज्वरके समय जो शिर-दर्द दिखाई देता है उसे कम करनेके लिये यह पट्टी अत्यन्त फलप्रद है (American Medical Association—Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 176, Philadelphia, 1950)। एक बड़ी सी तौलियाको तहकर और उसे ठण्डे पानी या बर्फके पानीमें भिगोकर उससे शिरके चारों ओर ओर गर्दनको भी ढककर चार-पाँच मिनटोंपर, यानी इसकी ठण्डक जब कम होने लगे, तब इसे बदलते रहना चाहिये। यह बुखारकी बहुत-सी गरमीको खींच लेता है। इसी वजह से शिरपर शीतल जलकी पट्टी चढ़ानेसे बुखार शीघ्र कम होने लगता है, बड़बड़ी दूर या बन्द हो जाती है, शिरका दर्द

शिरका घूमना और शिरमें खूनका दबाव कम हो जाता है जिससे रोगीको आसानीसे नींद आ जाती है। ज्वर बहुत अधिक होनेसे ठंढी पट्टीके ऊपर ठंढा पानी या बर्फका पानी डाला जा सकता है, या बर्फका थैला (ice bag) रखा जा सकता है। किन्तु खाली शिरपर कभी बर्फका थैला रखना नहीं चाहिये। शिरपर कभी बर्फ रखनेकी जरूरत होनेसे शिरको पहले धोकर, फिर उसपर ठंढी पट्टी रखकर, उसके ऊपर बर्फके थैलेको रखना चाहिये अथवा तौलियाके तहमें बर्फका चुरा भी रख दे सकते हैं. कई बुखारमें इससे बहुत फायदा होता है। किन्तु खाली शिरपर बर्फ रखनेसे फायदेके बदले नुकसान ही ज्यादा होता है। कारण यह है कि बर्फ गरमीको खींचती नहीं है किन्तु उसे एक जगहपर इकट्ठी कर रोगीको मौत बुला लाती है।

रोगीको ज्वर अधिक हो तो उसके शरीरको बार-बार भींगी हुई तौलियासे पोंछने की जरूरत होती है। तेज बुखारमें रोगीके शरीरकी गरमीको दो-एक बार कम कर देनेसे ही काम नहीं चलता। जिस समय ही बुखार बढ़े, उसी समय उसके शरीरको बार-बार पोंछकर बुखारकी गरमीको कम करना जरूरी है। बुखार बहुत अधिक बढ़ी गया हो तो हर घण्टा रोगीके शरीरको इस तरहसे पोंछ दिया जा सकता है। रोगी अगर कमजोर हो तो बहुत होशियारीके साथ उसके शरीरको पोंछना चाहिये।

एक आयल क्लाथके (oil cloth) टुकड़ेके ऊपर चादर बिछाकर उसपर रोगीको गलेतक कम्बलसे ढकी हुई हालत में लिटाकर पहले रोगीका शिर, मुँह और गर्दन ठंढे पानीसे अच्छी तरह धो दिया जाता है। उसके बाद रोगीके एक-एक अंगको बारी-बारीसे उघारकर, उसे ठंढे पानी-में भींगी हुई तौलियासे ५ सेकेण्डके लिये पोंछकर, फिर इसको खाली हाथसे ५ सेकेंडतक रगड़कर, तब ५ से १० सेकेण्डतक दूसरी सूखी हुई तौलियासे उस स्थानको पोंछकर, अन्तमें उस अंगको कम्बलसे ढक देना चाहिये। इसके बाद दूसरे अंगको इसी तरीकेसे पोंछना चाहिये। पहले

रोगीके एक हाथ, फिर दूसरे हाथ, उसके बाद पेड़ू, छाती, पैर और जांघके ऊपरी भागको और सबके अन्तमें पीठ और पैरकी पिछली तरफ इसी तरह पोंछना पड़ता है। रोगी जितने ठंढे जलका अभ्यासी हो जाय, उससे उतना ही अधिक ठंढा जल काममें लाना चाहिये (५०° तक)। तौलियासे स्नान कराते समय रोगीकी उरु-सन्धि और लिंगके ऊपरी भागको भींगी तौलिया द्वारा जिसमें अच्छी तरह धोया जा सके, ऐसा इन्तजाम करना चाहिये।

जब शरीर की गरमी बहुत बढ़ती हो, तब रोगीकी रीढ़को ठंढे पानी या बर्फके पानीमें भींगी हुई तौलिया लेकर पोंछनेसे भी गर्मी जल्दी कम हो जाती है।

तेज बुखारमें रोगीको भींगी चादरकी ठण्ढी लपेट (cooling wet-sheet pack) का प्रयोग करना चाहिये। यह बहुत फलप्रद है तथा आजकल अत्यन्त व्यापक रूप से अस्पतालोंमें इसका व्यवहार हो रहा है (R. N. Chopra, B. Mukherjee and I. C. Chopra—A Treatise on Tropical Therapeutics, p. 74, Calcutta, 1950)। जब ही रोगी अनिद्रासे कष्ट पाता है और यन्त्रणाके कारण छटपटाता है तब ही इस पैकसे रोगी शान्त हो जाता है। इससे रोगीके शरीरकी गरमी इच्छानुसार किसी डिग्री तक कम कर दी जा सकती है (इस्तेमालका तरीका आखिरी अध्यायमें देखिये)। किन्तु रोगीके बुखार को कम करनेके लिये जितने भी प्रकारके वैज्ञानिक स्नानके तरीके प्रचलित हैं, उनमें घर्षण-स्नान (cold friction) से बढ़कर और कोई नहीं है। यदि रोगीको दिनमें दो बार इसका व्यवहार कराया जाय तो रोगीकी बेचैनी और उसके साथका कष्ट कम हो जाता है, जिससे अच्छी नींद आने लगती है और बुखार फिर स्थायी रूपसे उतर जाता है। बुखारके रोगीके शरीरमें घर्षण-स्नान करते समय हमेशा उसके पैरोंपर गरम पानीका एक थैला और उसके शिरपर भींगी हुई तौलिया रखनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सब

प्रकारके ठण्डा-स्नानके बाद ही ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि शरीरका चमड़ा लाल, गरम तथा गीला रहे; क्योंकि इसी अवस्थामें शरीरका ताप आसानीसे निकल सकता है (Hobart A. Reimann, M. D.—Treatment in General Medicine, Vol. 4, P. 468, Philadelphia, 1950) ।
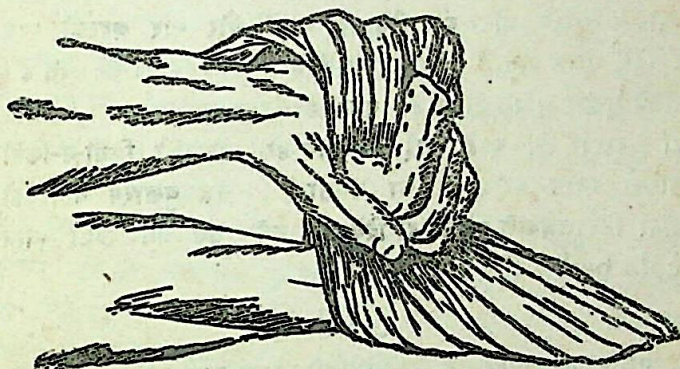
घर्षण-स्नान (cold friction)

लेकिन एक बात याद रखना जरूरी है कि रोगीके शरीरकी गरमी कभी एक बारमें दो डिग्रीसे अधिक उतारनेकी कोशीश न की जाय और यदि तेज बुखार हो तो ऐसा करना चाहिये कि उसको बुखार १०१° से कभी नीचे न लाया जाय । कारण fever is an attempt on the part of nature to burn up morbid material —शरीरमें इकट्ठे जहरको जला देनेके लिये प्रकृतिकी कोशिशसे ही बुखार होता है (Otto Juettner, M. D., Ph. D—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 152) ।

इन सब तरह-तरहके उपायों द्वारा रोगीके शरीरकी गरमीको इस प्रकार वशमें रखना होगा, जिससे वह कोई आफत न खड़ी कर सके ।

पसीना निकलनेवाले स्नानका व्यवहार कराकर बीमारके शरीरसे

काफी खराब चीजें बाहर कर जिस तरह बुखार छुड़ाया जाता है, ठण्डके इस्तेमालसे भी ठीक यही सब फायदे पाये जा सकते हैं। ठण्डे पानीके व्यवहारसे पहले चमड़ा यद्यपि कुछ सिकुड़ता है परन्तु उसके कारण ही रोमकूप फैलकर खुल जाते हैं जिससे उसी खुले दरवाजेके रास्ते शरीरका बहुत-सा जहर निकल जाता है और बुखार कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त ठण्डे पानीके व्यवहारसे बीमारके शरीरके सभी यन्त्र तेज हो जाते हैं और वे शरीरके भीतर बीमारीके सब कोड़ों और सारे जहरको ध्वंस कर देनेमें सफल होते हैं या उन्हें शरीरसे निकाल बाहर कर देते हैं। इसलिये बुखार अधिक होनेसे ही बीमारको स्नान कराया जाय यह बात नहीं। बुखार हो, चाहे कोई भी रोग हो, बीमारको किसी-न-किसी प्रकारका स्नान कराया ही जा सकता हैं। तेज बुखारमें बीमारको पसीना निकालनेवाले स्नान नहीं दिये जा सकते। उस समय ठण्डा स्नान (cold bath) ही उसे अच्छा करते हैं।

[४]

बुखार शुरू होनेपर यह देखनेके लिये ठहरना कभी उचित नहीं है कि बुखार क्या ढंग पकड़ता है। बुखारके शुरूमें ही बीमारके शरीरसे जहरको साफ करने की जोरदार कोशिश की जाय तो उससे बुखारकी ताकत कम हो जाती है, उसका भोगकाल बहुत-बहुत अंशोंमें सीमाबद्ध हो जाता है और बूखारसे एकाएक कोई भयंकर लक्षण पैदा नहीं हो सकता।

बुखारकी पहली हालतमें, जब रोगी के शरीरमें काफी ताकत रहती है, वही समय खूब जमकर इलाज करनेका है। कई दिन बाद जब रोगी कमजोर हो जाता है, तब तो उसे हल्का इलाज करना उचित है। जब रोगीके शरीरमें कँपकँपी या जाड़ा हो, तभी उसे पैर-स्नान आदि पसीनां लानेवाला उपाय करना चाहिये। छटपटीके साथ जब बुखारकी चरम हालत आ जाय, तब तो उसे कभी ताप-स्नान नहीं देना चाहिये। फर रोगीका शरीर जब ठण्डा हो या उसे शीत या कँपकँपी लग रही हो,

तब उस समय उसके शरीरमें कभी ठंढा पानी छुलाना नहीं चाहिये। जब शरीर गर्म और सूखा हुआ हो तो वही सबसे अच्छा समय ठंढे पानीके इस्तेमालका है। रोगीको जब पसीना छूट रहा हो, तब भी उसके शरीरपर ठंढे जलका इस्तेमाल करके पसीना को बंद नहीं करना चाहिये क्योंकि पसीना होनेसे ही बुखार उतरता है।

शीतल अवस्थामें रोगीको लिहाफ, कम्बल आदि ऊनी कपड़ोंसे गर्दनतक ढाके रखना पड़ता है, परन्तु रोगीका शरीर गर्म होते ही उसे तकलीफ देकर ऊनी कपड़े आदिसे ढाककर नहीं रखना चाहिये। केवल उतना ही कपड़ा उसके शरीरपर रहना चाहिये जितनेसे वह आरामसे रह सकता हो।

बुखारके रोगीका घर काफी हवादार होना चाहिये। उसका कमरा खूब ठंडा और सूखा हुआ होना आवश्यक है। बुखारके रोगीको गर्म घरमें रखनेसे उसके शरीरकी गर्मीके काफी बढ़ जानेकी सम्भावना रहती है (Macfadden's Encyclopaedia of Physical Culture, PP. 2054—2056) और बुखार छुटनेमें बहुत देर लगती है। बुखारके रोगीको ज्यादा गरम इलाज करनेसे भी उसका बुखार हमेशा ही बढ़ता है।

बुखार छूट जानेपर भी बुखारके रोगीको कुछ दिनोंतक बहुत सावधानी रखनी चाहिये। पूरे तौरसे अच्छा न हो जानेतक अधिक खा लेना, अधिक परिश्रम करना, असमय खान-पान करना और सोना बिलकुल ही छोड़ देना उचित है। जिससे दोनों समय पेट अच्छी तरह साफ हो जाया करें इसपर ध्यान रखना विशेष आवश्यक है। इसलिये बुखार अच्छा हो जानेके बाद भी कुछ दिनतक स्नानके पहले दस मिनटके लिये कमर-स्नान लेना और रातमें गीली कमर-पट्टी (wet girdle) बांधनी चाहिये। कमजोर रोगीको तों गीली कमर-पट्टी के बदले पेडू की ढकी हुइ पट्टी ही बांधनी चाहिये। पेट साफ करनेका सीधा-सादा कायदा यह है कि, बुखार तो मिट्टीकी

पुलटिस और न रहे तो पेडूपर ढकी हुई पट्टीका इस्तेमाल करना चाहिये। इस उपायसे रोगीकी भूख भी साथ ही साथ बढ़ती है।

बुखारके इलाजका यह तरीका सभ्य जगतमें सब जगह, थोड़ा या बहुत, प्रचलित है। आजकल इलाजकी जो अच्छी-अच्छी किताबें निकली हैं उनमें ऐसी किताबें कम ही होंगी जिनमें इलाजके ढंग से हिसाबसे पानीकी इलाजको थोड़ी भी तजवीज न दी गयी हो। एक प्रसिद्ध डाक्टर (Alfred Martinet, M. D.) ने अपनी किताबमें लिखा है—बुखार दूर करनेवाले जितने इलाज और औषधियाँ हैं उनमें पानीका इलाज सबसे अच्छा है और, इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि रोगीके कीड़ोंके आक्रमण (infection) को रोकनेमें इसके बराबर और कोई नहीं हैं (Clinical Therapeutics, P. 874)।

[१]

रोगीके खानेपर परहेज रखना भी एक खास इलाज है। बुखारके समय शरीरके सभी हिस्से खराब चीजोंको निकालनेके काममें लगे रहते हैं। स्वाभाविक तौरसे पाकस्थली और आंत हमारे खाद्य-द्रव्योंमें से रस शोषण कर लेते हैं। परन्तु प्रबल ज्वरके समय रस सोखनेके बदले ये शरीरकी नालीमें जहर ही उगला करती हैं। इसी कारणसे उस समय रोगीकी भूख भी गायब हो जाती है। इस हालतमें रोगीको जोर करके खिलोनेसे प्रकृतिको हटाव (elimination) के कामसे फिरकर, ग्रहण (assimilation) के काममें लगना पड़ता है। इस कारणसे वह ठीक-ठीक हजम भी नहीं हो पाता। हजम हो जानेपर भी शरीरके कोष आदि, इस समय एक ऐसी विषयुक्त अर्ध-चेतन अवस्थामें रहते है कि उनके द्वारपर खाद्य पहुँचा देनेपर भी वे उसे पूरा-पूरा ले नहीं सकते। इसलिये इस घड़ी रोगोंको जो भी खाना दिया जाता है, वह उसके काम न आकर उसके शरीरके भारको ही बढ़ाता है (Henry Lindlahr, M. D,—The Practice

of Nature-cure, pp. 41—44, Poona, 1954)। इसलिये बुखारके पहले दो-तीन रोज रोगीको कुछ भी नहीं खाने देना चाहिये। थोड़े समय रहनेवाले बुखारमें जैसे छोटी माता (measles) आदिमें ही रोगीको सात दिन उपवास कराने से भी कोई नुकसान नहीं होता (Hugh G. Garland, M. D., F. R. C. P., and William Phillips M. D. F. R. C. P.—Medicine, P. 875, London. 1953)। बल्कि इससे ज्यादा लाभ होता है। जबतक उसे स्वाभाविक भूख न लगे तबतक उसे कुछ भी खानेको देना नहीं चाहिये। परन्तु नीबूका रस मिलाकर पानी खूब पीनेको देना चाहिये। रोगी जितना पी सके उतना पानी उसे पिलाना चाहिये। बुखारमें पूरे जवान आदमीको हर रोज ढाई सेरतक पानी पिलाना चाहिये। हर एक घंटेके बाद आधा ग्लास से एक ग्लास तक पानी पीना अच्छा होता है। पानी शरीरके भीतरके बहुत-से कीड़े, कीड़ोंका जहर और विजातीय पदार्थ अपने साथ बाहर ले जाता है। इस कारण पानी पीना ही बुखारकी एक बढ़िया दवा है। जिस समय जाड़ा और कँपकँपी हो उस समय गरम पानी ही पीना चाहिये, परन्तु ठंढको हालत खतम हो जानेपर जब गर्म हालत आ जाय अर्थात् जब रोगी बुखारके कारण बहुत छटपट करना शुरू करे, उस वक्त हमेशा ठण्डा पानी ही पीनेको देना चाहिये।

बुखारके समय ठंढा पानी पिलाकर हम रोगीकी नाड़ीकी चाल १० से १५ बार तक कम कर सकते हैं (J. H. Kellogg, M. D Rational Hydrotherapy, P. 109)। परन्तु जब रोगीको पसीना चल रहा हो उस समय ठंढा पानी कभी न देना चाहिये और बर्फका पानी तो भूलकर भी नहीं। रोगी के पानीमे नीबू का रस हमेशा मिला देना चाहिये। हर रोज पानीके साथ उसको कमसे कम पांच नीबूका रस आवश्यक है। दो-तीन दिन बाद उसको पानीके साथ कमला नीबू या बिजौड़ा नीबूका रस मिला कर दिया जाना चाहिये।

एक ग्लास पानीमें एक कमला नीबूका रस दिया जाय। नीबू, कमला नीबू और बिजौड़ा नीबू आदि अम्ल जातिके फलोंके रससे रोगीको बहुत लाभ होता है। हमलोगोंके शरीरके भीतर जो सब रोगके जहर पैदा होते हैं वे सभी खट्टी (acid) जतिकी चीजें हैं। नीबू आदि खट्टी जातिके फलोंका रस यद्यपि स्वादमें खट्टा मालूम होता है, तो भी पचनेपर वह क्षारकी जातिकी चीज बन जाता है (James S. Mc Lester, M. D.—Nutrition and Diet, P. 230) और खूनके खट्टेपनके जहरको नष्ट करता है। इसलिये सिर्फ बुखार ही नहीं, ज्यादातर रोगोंमें खट्टी जातिका फल एक तरहकी दवाका काम करता है। रोगी खानेके लिये बेचैन हो तो उसे शर्बती नीबू, सफेद जामुन, गुलाबजामुन, मिश्रीकंद, खीरा आदि फलोंका रस भी दिया जा सकता है। उसके बाद शुरूकी तेजी का समय कट जानेपर रोगीको पहले बताये गये जलमय पदार्थोंके साथ घोल या मट्ठा दिया जाय। इसके दो-एक दिन बाद और पथ्योंके साथ उबाली हुई शाक-सब्जी और तरकारीका रस (soup) रोगीको देना चाहिये। पालकके शाक, धनियाकी पत्ती, परवल, झिंगुनी और गाजर वगैरहको पानीमें उबालकर उसका पानी रोगीको देना अच्छा है। ज्वरके समय रसपूर्ण पथ्य खाते-खाते रोगी ऊब जाय तो उसे सफेद जामुन, मिश्रीकंद और नाशपाती वगैरह दी जा सकती है। मगर रोगीको यह बता देना होगा कि फलको चबाकर वह सिर्फ उसका रस घोंटे और सीठी फेंक दे।

मामूली तरहसे बुखारमें साबूदाना, आरारोट और बार्ली वगैरह दी जाती है। लेकिन रोगी इन ढीली चीजोंको कभी चबाकर नहीं खाता। और न चबाकर खानेसे खाद्यके श्वेतसार (starch) ठीकसे नहीं पचते। इसके अलावे फलोंके रस आदिको हम अपनयनमूलक (eliminative) और साबूदाना आदिको शरीरका भार बढानेवाले भोजन (clogging food) कह सकते हैं। बुखारके समय चीनी, मिश्री खाना भी उचित नहीं है।। ये तो भार बढानेवाली चीजें हैं ही,

उसपर भी चीनी और मिश्री मुँह या पेटमें जाकर हजम नहीं होती, बहुत देरपर छोटी आंतमें पहुँचनेपर पचता है। जो-जो भोजन पचनेमें इतना ज्यादा वक्त लेते हैं, उनको बुखारमें कभी इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। किन्तु रोगीको इस समय चीनी, मिश्रीके बदले काफी पानी मिलाकर मधु या तरल गुड़ दिया जा सकता है। बुखारके समय रोगीको दूध भी न दिया जाय तो अच्छा है। महर्षि सुश्रुतने कहा है कि, चढ़ते बुखारमें दूध खानेसे मौत भी हो सकती है। (सुश्रुत संहिता, उत्तरस्थानम् ३९।५९)। लेकिन अगर जरूरत हो तो बुखारके रोगीको दूधके एवजमें छेनाका पानी दिया जा सकता है। इससे दूधके बहुत-से लाभ मिल जाते हैं और उसे पचाने तथा उसके बाद उसे शरीरके काममें लगानेके लिये प्रकृतिको बहुत अधिक परेशान होना नहीं पड़ता। परन्तु यदि संभव हो तो बुखार पूरा-पूरा न छूटने तक रोगीको सिर्फ पानीके साथ नीबू, कमला नीबू और मौसमी आदिके रसपर रखना उचित है। केवल बुखार ही नहीं, किसी भी कड़े नये रोगमें ही रोगीको इसी पथ्यपर रखनेकी कोशिश करना उचित है।

बुखारमें या किसी दूसरी बीमारीमें भी रोगीको कम खिलाकर रखनेसे वह कमजोर हो जायगा और बीमारीके साथ लड़नेमें असमर्थ हो जायगा, ऐसा सोचना एकदम भूल है। बल्कि रोगके समय रोगीको अधिक खिलानेसे शरीरमें जहरके इकट्ठे होनेके कारण रोगी और कमजोर हो जाता है। उसे नाममात्रका खाना देकर रखनेसे, रोगीको ही हमलोग शरीरको साफ करनेके एक औजारके रूपमें बदल देते हैं। क्योंकि सभी बीमारियां ही शरीरको साफ करनेके लिये प्रकृतिकी कोशिश है। हर नये रोगमें ही शरीरकी अपनयनमूलक (eliminative) ताकत बढ़ती है। उस समय कम खाकर रहनेसे प्रकृति अपनी पूरी ताकत शरीरको धोनेके काममें लगा पाती है। इसके कारण बुखार आदि सभी बीमारियां बहुत कम समयमें आराम हो जाती हैं और रोग छूट जानेपर शरीर पहलेकी तुलनामें बहुत अच्छा हो जाता है।

बुखार छूट जाने पर भी रोगीको और दो दिनोंतक बुखारका पथ्य ही देना चाहिये क्योंकि बुखार छूट जानेके बाद भी उसके अपनयनका काम शरीरके भीतर चलता रहता है और उस समय अधिक या कठिनाईसे पचनेवाले खाद्य खा लेनेसे बुखार फिर पलटकर आ सकता है। बुखार छूटनेके दो दिन बाद रोगीको भातका मांड़ या लावाका मांड़ या सूजीकी रोटी आदि दी जा सकती है। साथ ही साथ उसे फलोंका रस या ज्यादा रसीले फल वगैरह देना ही उचित है। उसके बाद उसे पुराने चावल का भात, नरम तरकारियां, दूध और मट्ठा आदि दिये जा सकते हैं। तो भी पहले-पहल रातमें रसपूर्ण भोजन ही देना चाहिये। इसी तरह धीरे-धीरे पहले रसपूर्ण, तब नरम और उसके बाद ठोस खाद्य (solid food) और पहले थोड़े भोजनके बाद पूरा भोजन लेनेकी रोगीको आदत डालनी चाहिये। एक छोटे वाक्यमें आयुर्वेदने भी यही उपदेश दिया है, 'ज्वरादौ लङ्घयेत पथ्यं ज्वरान्ते लघु-भोजनम्' अर्थात् बुखारके शुरूमें उपवास और उसके बाद हल्का भोजन लेना चाहिये।

इनफ्लूएंजा

[Influenza]

इनफ्लूएंजा एक दैनन्दिन बीमारी है। इसलिये लोग इसे बहुत मामूली बीमारी समझते हैं। किन्तु इसको जितना मामूली समझा जाता है, असलमें यह उतना आसान नहीं है। सन् १९१९ ई० में सिर्फ छः महीनेमें इस बीमारीसे भारतमें ५० लाख आदमी मरे थे और सारी दुनिया में इस साल बारह महीनेसे भी कम समयमें प्रायः १० करोड़ आदमी इस रोगके शिकार हुए थे (Milton J. Rosenan—Preventive Medicine & Hygiene P. 241)। यह खुद तो बहुत मारक बीमारी नहीं है, लेकिन यह

हृदय, खून और नस-नाड़ियों (nerves) पर जो बुरा असर डालती है और दूसरे-दूसरे जो लक्षण पैदा करती है, वे ही बहुत मारक होते है। शरीरके भीतर जितने कमजोर हिस्से है, उन्हें खोज-खोजकर उनपर हमला करना इनफ्लूएंजाका स्वभाव है। इसका जहर विशेषकर सांस लेनेके यंत्रों पर आक्रमण करता है। प्रायः ही इसके फलस्वरूप निमोनियाका आविर्भाव होता है (Harold S. Diehl, M. A., M. D.—Text-Book of Healthful Living, p. 307, London, 1953)। जिसे पुराने सर्दीकी शिकायत होती है, इनफ्लूएंजा होनेपर उसकी सर्दी खांसी बहुत बढ़ जाती है। कभी-कभी यह गुर्देकी (kidney) सूजन और आंख, कान तथा कण्ठके रोग पैदा करता है। कभी-कभी इस रोगसे अतिसार, पेचिश, डिपथीरिया एवं टाइफायड आदि बीमारियां भी हो जाती है। कभी-कभी इनफ्लूएंजाके साथ सांस लेनेमें तकलीफ, बदहोशी की नींद (coma), बकबकी, नाक, मुँह या पैखानेके रास्तेसे खूनका निकलना इत्यादि कठिन लक्षण दिखायी पड़ते हैं। साधारणतया ३ दिन तक रोगका भोगकाल रहता है। किन्तु रोग छूट जानेपर भी आदमी बहुत धीरे-धीरे अच्छा होता है। शुरूसे ही अगर इसका इलाज अच्छी तरह नहीं किया गया तो बार-बार इसका हमला हो सकता है या इसीसे राज-यक्ष्मा, पागलपन या हार्ट फेल हो जानेकी भी नौबत आ सकती है।

प्रायः इस रोगका आगमन एकाएक होता है। बुखार शुरू होनेके पहले थोड़ा-थोड़ा जाड़ा-सा लगता है। बुखारके साथ-साथ जोरोंका शिर दर्द, आँख, हाथ, पैर और रीढ़का दर्द, और नाक बहना शुरू हो जाता है। शरीर मानो टूट पड़नेके समान हो जाता है। आंखें लाल-लाल और डबडबाई हुई हो जाती हैं। खांसी, छींक, गलेमें दर्द एव कभी-कभी आवाजका बैठ जाना, सांस लेनेमें तकलीफ, बेचैनी, नींद न आना, कय अथवा कय करनेकी प्रवृत्ति, कब्जियत, कभी पतला दस्त, पेटमें दर्द और कभी-कभी टाइफायड रोगका लक्षण आकर मौजूद हो जाता

है। बुखार मामूली तरहसे १०३° तक जाता है। बीमारी सख्त हो जाय तो १०५° तक हो सकता है।

इनफ्लूएंजा एक तरहकी छूतवाली बीमारी है। बहुत मामूली अनुकूल अवस्थामें भी यह बढ़ना शुरू करती है। परन्तु जबरदस्त छूतकी बीमारी होनेपर भी और अत्यन्त व्यापक रूपसे इसका प्रकाश होनेपर भी सभी आदमी इसके चपेट में नहीं आ जाते। जिसके शरीरमें पहलेसे ही काफी दूषित पदार्थोंका ढेर होता है और इस कारण जिसकी जीवनी-शक्ति और रोगसे लड़नेकी ताकत अत्यन्त कम पड़ जाती है, वही साधारणतः इस रोगके चपेटमें पड़ता है। अनिद्रा और ठण्ढ लग जाने आदिके कारण भी इस रोगका आक्रमण होता है। किन्तु ये सभी इस रोगके असली कारण नहीं हैं। ये तो उसके बढ़ानेवाले कारण (exciting cause) हैं। पहलेसे ही, शरीरके भीतर अनुकूल हालत रहनेसे इन सब बढ़ानेवाले कारणों से इनफ्लूएंजा की बढ़ती होती है। इसलिये शरीरसे जहरको दूर करना ही दूसरे दूसरे बुखारों या रोगोंकी तरह इनफ्लूएंजाका भी खास इलाज है।

इस रोगको दबा देनेके लिये रोगी अनेक प्रकार की औषधि लेता है। किन्तु आजतक इस रोगकी कोई वैज्ञानिक दवा (specific) आविष्कार नहीं हुई। एलोपैथिक इलाजकी रायसे क्वीनाइन या एन्टीमनी आदि दवा मलेरिया अथवा कालाज्वरके कीड़ों को मारकर बुखार अच्छा कर देते हैं। किन्तु जहाँ बुखारकी कोई दवा ही नहीं बनी, वहाँपर दवा देना एलोपैथिक इलाजके तरीके और उसकी नीतिके भी विरुद्ध है (Alfred Martinet, M. D.—Clinical Therapeutics, pp, 871—2) कारण शरीरकी जिस खराबीको दूर करनेके लिये प्रकृति बुखार पैदा करती है, बुखार की दवाएं उस मूल कारणपर आक्रमण न करके, घरको साफ करनेके लिये प्रकृति जो कोशिश करती रहती है, उसको नष्ट करती है। इससे रोगका असली कारण तो शरीरके भीतर ही रह जाता है और पीछे वही दूसरी-दूसरी सख्त बीमारियोंके रूपमें आता है।

लेकिन प्राकृतिक चिकित्सामें रोगको दबानेकी कोशिश कभी भी नहीं की जाती। किसी भी प्रकारके रोग होते ही देह को सर्व प्रकारसे रोगमुक्त करनेकी व्यवस्थाकी जाती है। जब शरीरमें संचित विष और गन्दगी शरीरसे विदा होती है तो रोगके वृद्धिप्राप्त जीवाणु भी देहसे बाहर निकल जाते हैं तथा उनके रोग उत्पन्न करने की क्षमता ही नष्ट हो जाती है। फलतः स्वयं ही सभी रोग आरोग्यलाभ करते है।

छातीकी लपेट (chest pack)

इस बीमारीका खास इलाज है छातीकी लपेट। बुखार और सर्दी जैसे ही मालूम हो, रोगीको नीबूके रसके साथ गरम पानीका एक डूस देकर एक घन्टेके लिये छाती की लपेटका इस्तेमाल करनेसे इनफ्लूएंजा रोग करीब-करीब हमेशा ही छूट जाता है। छातीकी लपेटसे रोगीका सिकुड़ा हुआ चमड़ा फैल जाता है। उस समय प्रकृति रोमकूपोंके रास्तेसे जिस तरह बहुत-सा जहर बाहर निकाल देती है, उसी तरह शरीरके जहरको निकालनेका यह रास्ता भी खुलता है। इसीसे छातीकी लपेटसे बुखार कम होता है। यदि छातीकी लपेटसे भी बुखार कम न हो, और नाकका बहना जारी रहे तब रोगीके शिरको दिनमें तीन बार धोकर उसके समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना उचित है और फिर दूसरे दिन भी एक घन्टेके लिये छातीकी लपेट बांध देनी चाहिये।

इनफ्लूएंजा से शरीरका कोई भी हिस्सा आक्रान्त हो सकता है।

किन्तु रोग शुरू होते ही ये सब उपाय किये जायँ तो शरीर शुद्ध हो जानेके कारण कभी बुरे उत्पात खड़े नहीं हो पाते और रोग अंकुरित होते ही नष्ट हो जाता है। परन्तु रोगीका शरीर यदि पहलेसे ही ज्यादा खराब हो और रोग अगर कठिन हो तो रोगीको एक दिनके बाद हर दूसरे दिन एक घंटेके लिये गीली चादरकी लपेट देना उचित है। लेकिन जब बुखार सबसे कम हो तभी इसका इस्तेमाल करना चाहिये। इस्तेमालके बाद गरम जलमें भिगोई हुई तौलियासे उसके समूचे शरीरको पोंछ देना आवश्यक है। किन्तु साधारणतया छातीकी लपेट ही यथेष्ट होती है।

इस अवस्थामें रोगीको तौलिया-स्नान करानेके पहले एक घन्टेके लिये दिनमें दो बार उसको पेर की पट्टी देना आवश्यक है। रोगीके शरीरमें तरह-तरहके उपसर्ग उठ जानेपर इलाज शुरू करनेमें सभी उपसर्गोंपर दृष्टि रखकर इलाज चलाना जरूरी है।

रोगीको पहलेसे ही बिछौनेपर रहकर पूर्ण विश्राम लेना चाहिये। बुखार यदि साधारण हो तो भी बुखार घट जानेके बाद धरपर रहकर सात दिनोंतक पूर्ण विश्राम लेना चाहिये (Michael G. Wohl, M. D. F. A. C. P.—Internal Medicine, P. 58, Philadelphia, 1955)। यदि बुखारमें जटिलता हो तो एक सप्ताहसे लेकर दस दिनतक विश्राम लेना चाहिये। कई स्थलोंपर ऐसा देखा जाता है कि बुखार छूटनेके साथ-ही-साथ जो जल्दी से काम-काज शुरू कर देते हैं, उन लोगोंमें से बहुतको न्यूमोनियाके साथ यह रोग फिर लौट आता है (Hugh G. Garland, M. D., F. R. C. P.—Medicine, P. 1813, London, 1953)। पथ्य आदिकी और सारी बातें साधारण बुखारके रोगीके अनुसार ही है। इस रोगके निवारणके लिये बहुत अवस्थाओंमें टीका लिया जाता है। किन्तु, विभिन्न श्रेणीके जीवाणु विभिन्न प्रकारका इनफ्लूएन्जा पैदा करते हैं। अतः कोई एक टीका लेनेसे ही काम चल जाता है ऐसी बात नहीं;

यदि ठीक-ठीक टीका लिया भी जाय तो उसका फल उत्पन्न होनेमें सात दिन लग जाता है और वह फल दो तो मास बाद ही निलुप्त हो जाता है (John S. Richardson, M. D., F. R. C. P.—The Practice of Medicine, P. 65, London, 1956)। इसलिये टिकाके संकटमें न पड़कर देशमें इनफ्लुएन्जा का आविर्भाव होते ही कोष्ठ साफ करनेके बाद दो-एक दिन गीली चादरकी लपेट या भापस्नान लेना उचित है। इस समय नीबूके रसके साथ ढेरसा पानी पीना चाहिये। इस जातिके रोगोंमें कमला नीबू बहुत फायदा करता है। काफी कमला नीबू खानेसे इनफ्लूएंजा नहीं हो पाता और बहुत बार तो छूट भी जाता है। इसके अलावे इनफ्लूएंजासे जो न्यूमोनिया होनेका डर रहता है वह भी नहीं रह जाता।

सन्निपात ज्वर

(Typhoid fever)

[१)

अंग्रेजीमें जिसे टायफाइड कहते हैं, हिन्दी में उसे सन्निपात ज्वर कहा जाता है। छोटी आंतपर आक्रमन करनेवाला यह एक तरहका ज्वर है। छोटी आंतके निचले भागपर ही इस रोगका विशेषकर आक्रमन होता है और इसी स्थानपर नाड़ीकी दीवालमें सूजन पैदा हो जाती है। इस रोगका भोगकाल मामूली तौरसे तीन सप्ताह होता है। किन्तु गलत इलाज और बदपरहेजीसे बुखार ६ महीनेतक भी स्थायी रह सकता है।

दूसरे बुखारोंकी तरह ही सान्निपातिक ज्वरकी भी पहली हालत खुब साफ नहीं होती। पहली अवस्थामें मामूली तरहसे शिर-दर्द, कमजोरी, नींदकी कमी, कब्जियत, कमरमें दर्द, भूखकी कमी और रातमें प्रायः बुखार-सा हुआ रहता है। कई दिनोंतक यही हालत रहनेके बाद शरीरमें जाड़ा-सा लगकर बुखार चलता है। साधारणतः सुबहके समय

बुखार कम होता है और शामको अधिक, किन्तु रोज बुखार बढ़ता जाता है। प्रायः रोज ही एक दो डिगरी बुखार बढ़ता रहता है और पहला सप्ताह खतम होते न होते बुखार १०३° बढ़कर १०५° तक जा पहुंचता है। रोगीकी जीभके बीचका हिस्सा सफेद लेपसे ढक जाता है और जीभका अगला हिस्सा और दो बगलके किनारे लाल-लाल और साफ दिखायी पड़ते हैं। नाड़ीकी गति १०० से १२० तक हो जाती है। रोगके छठे दिन रोगीके शरीरमें लाल-लाल मसूरीके बराबर एक तरहकी फुंसियां निकल आती हैं। ये फुंसियां संख्यामें अधिक नहीं होतीं किन्तु प्रायः पेड़ू, छाती और पीठमें निकलती हैं। फूंसिया चार-पांच दिनोंतक रहती हैं, उसके बाद गायब हो जाती हैं। रोगके और अन्य लक्षणोंके साथ पहले सप्ताहमें ही कभी-कभी रोगीके पेटमें दाहिनी तरफ दर्द, पेटमें गुड़गुड़ाहट, पेट फूलना, हल्दीके रंगका दस्त, समय-असमय ककपकी और कभी-कभी नाकसे खून गिरना एवं कान बहरे हो जाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। बुखार आनेके पहले बुखारसा लगना, देहकी गर्मीका बेठिकाने कम-बेशी होना, मैली-मैली जीभ और पेड़ूकी दाहिनी तरफ निचले कोनेमें दर्द आदि सन्निपात ज्वरके प्रायः अचूक लक्षण हैं।

दूसरे हफ्तेके पहले दिन अर्थात् आठवें दिन ही बुखार सबसे तेज हो जाता है—जो कि प्रायः १०३° से १०५° तक होता है किन्तु ज्वरमें स्थिरता नहीं रहती। कभी यह १०१° पर रहता है, कभी १०५° हो जाता हैं। सुबहमें साधारण तौरसे बुखार १०२° तक रहता है। प्यास, सूखी हुई जीभ, शिरमें बहुत दर्द आदि लक्षण पहलेकी तरह ही होते हैं। इस अवस्थामें रोगीके पेड़ूकी गड़बड़ी प्रायः बढ़ने ही लगती है। कभी-कभी तो रोगीको दिनभरमें २५ बार तक दस्त होते हैं। मलका रंग प्रायः सब्ज और फेन भरा हुआ होता है। रोगीके पेटमें बाई रहती है और वह गड़बड़ करता है। नाड़ी बहुत कमजोर और क्षीण चलने लगती है। सप्ताह के अन्दर खांसी आदि

उत्पात दिखायी देने लगते हैं। तेज बुखार होनेके कारण अक्सर फेफड़े आदिमें खूनकी बहुतायत हो जाता है। इससे रोगीको ब्रंकाइटिस और न्यूमोनिया भी हो सकता है। रोगकी ऐसी हालत बहुत भयंकर होती है।

तीसरे सप्ताहमें भी रोगीको १०३° से १०५° तक बुखार होता है। रोग अगर खराबीकी तरफ जा रहा हो तो बेहोशीकी नींद, अनजानमें पेशाब-पाखाना हो जाना, लगातार दस्त, आंतसे खून निकलना इधर-उधर हाथ-पैर मारना, आदि चिह्न प्रकट होते हैं। कभी-कभी आंतमें छेद होकर पेटकी झिल्लीकी सूजन (peritonitis) हो जाती है। परन्तु यदि रोग सुधारकी तरफ आ रहा हो तो अच्छी चिकित्सा होनेपर दूसरे सप्ताहके खतम होते-होते, सत्रहवें अठारहवें दिन बुखार और अन्य दूसरे उपद्रव कम होने लगते हैं। सुबहमें बुखार अक्सर १००° तक रहता है. दोपहरके बाद १०१° होता है। इस तरह होते-होते २२ वें दिन बुखार उतर जाता है। साथ ही साथ जीभ साफ हो जाती है, दस्त, खांसी और खूनका निकलना कम हो जाता है, रोगीको भूख लगने लगती है और उसके शरीरमें कुछ-कुछ ताकत आने लगती है। यदि तीसरे सप्ताहमें बुखार न छूटे तो चौथे सप्ताहमें भी तीसरे सप्ताहकी ही हालत रहती है और बुखार विषम रहता है। लेकिन ज्यादातर तीन सप्ताहमें ही रोगी आराम हो जाता है।

एक तरहके कीड़े (bacillus typhosus) के कारण टाइफायड बुखार पैदा होता है। किन्तु यह कीड़ा शरीरमें घुसते ही बुखार पैदा कर दे ऐसा नहीं है। जिसकी पचानेकी ताकत अच्छी होती है, टाइफायडके कीड़े निगल जानेपर भी उसे कुछ खराबी नहीं होती। हाजमाकी आग उन्हें जला देती है। हमारी आंतके भीतर टाइफायडके कीड़े बहुत दिनोंतक रहते हैं लेकिन उससे टाइफायडका हमला नहीं होता। शरीरके भीतर इकट्ठे विकार और जहर वगैरह जब शरीरके भीतर इनकी वृद्धिके लिये अनुकूल अवस्थाकी सृष्टि करते हैं, तभी टाइफायडके कीड़े आंतके भीतर सूजन पैदा करते हैं और शरीरके भीतर

बढ़ने लगते हैं

इसलिये शरीरको विकारसे साफ करना और रोग रोकनेको उसकी ताकतको बढ़ानेके साथ-साथ, पेटको स्वस्थ करना ही टाइफायड ज्वरका खास इलाज है।

[२]

इस उद्देश्य साधनके लिये पहले ही नीबूके रसके साथ गुनगुने पानीसे एक डूस देकर रोगीका कोष्ठ साफ कर लेना उचित है। यदि रोगीको जाड़ा-सा लग रहा हो तो पहली बार गरम पानीसे डूस देनेके बाद उसे एक बार पादस्नान देकर बिछावनपर लिटा देना चाहिये।

इसके बाद जब उसका जाड़ा कम हो जाय तब उसका शिर दिनमें तीन-चार बार धोकर भींगे गमछेसे उसके सारे शरीरको पोंछ देना चाहिये। प्रातःकाल नींदसे जगनेपर और रातमें सोनेके पहले इस तरह करना पूर्ण आवश्यक है। यदि रोगीका बुखार १०३° या १०४° हो तब हर एक घंटेपर रोगीको तौलिया स्नानका प्रयोग कराया जा सकता है।

किन्तु इससे भी अच्छा यह होता है कि रोगीको दिनमें आधे घंटेके लिये ठंढा मालिशका इस्तेमाल कराया जाय। पर पेटके ऊपर इस मालिशको खूब हलके हाथों चलाना जरूरी है। रोगीका बुखार अगर बहुत बढ़ गया हो तो उसको भींगी चादरका ठंढा पैक अवश्य ही देना चाहिये। कभी-कभी टाइफायडका बुखार १०७° या उससे भी अधिक हो जाता है। इस समय भींगी चादरका ठंढा पैक (cooling wet-sheet pack) इस्तेमाल करके बुखारको कम किया जा सकता है और रोगीका जान बचायी जा सकती है तथा इसके द्वारा रोगीके शरीरकी गर्मीको जितना भी चाहे उतनी डिगरीपर लाया जा सकता है। किन्तु रोगीके शरीरकी गरमीको कभी एक साथ बहुत अधिक कम करना उचित नहीं है।

इन सब ठंढे स्नान आदिके अलावे, रोगीका ज्वर १०२° से ऊपर

उठते ही लगातार उसके शिरपर डूशकी नली आदिसे ठंडा पानी छोड़ा जा सकता है। किन्तु शिरपर पानी डालनेसे बिछावन न भींग जाय; इस बातका बहुत ध्यान रखना आवश्यक है।

टाइफायड पेटका ही रोग है। इसलिये जभी पहचानमें आ जाय कि रोग टाइफाइड है, उसी समयसे पेड़ूके उपर अधिक ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। रोगके शुरूसे ही उसके पेड़ूको १५ से ३० मिनटोंतक भींगे गमछेसे दिनभरमें तीन बार ठंडा कर देना चाहिये। गमछेको पेटके ऊपर न छोड़कर उससे धीरे धीरे पेटको पोंछकर उसकी गर्मीको खींच लेना चाहिये यह काम रोगके प्रारम्भसे लेकर बुखार छूट जानेतक करना चाहिये। इनसे पेट साफ और दोषमुक्त हो जाता है, पेड़ूको बीमारीको मारनेकी ताकत बढ़ती है और बीमारी कभी बढ़ नहीं पाती।

किन्तु रोगीका बुखार बहुत अधिक हो तो भींगे गमछेके बदलेमें मिट्टीकी पुलटिस दिनमें दो बार एक-एक घंटेके लिये प्रयोग करना चाहिये। इसके अलावे मिट्टीकी पुलटिस रातभर पेटपर बाँधकर रखना जरूरी है। लेकिन, रोगीकी छातीमें अगर दोष हो तो मिट्टीकी पुलटिसके बदले भींगा गमछा ही इस्तेमाल करना उचित है और आधे घंटेके लिये पेटको ठंडा न करके केवल सातसे दस मिनटोंके लिये ही ठंडा कर लेना आवश्यक है। इसके अलावे रोगीको अगर कोई ठंडा स्नान देना हो तो इस हालतमें उसके पैरोंपर एक गरम पानीका थैला या बोतल रखना आवश्यक है। रोगीको यदि जाड़ा लग रहा हो या उसके पैर ठंडे हों तो भी उसके पैरोंपर गरम थैला हमेंशा रखकर पेटपर भींगा हुआ गमछा रखना या कोई दूसरा ठंडा स्नान व्यवहार करना चाहिये। रोगीके पैरपर गरम बेग रखकर उसके शरीरपर ठंडक प्रयोग करनेसे उसका कभी नुकसान नहीं होता और उसे बहुत आराम भी मिलता है। लेकिन बहुत समयके लिये पैरोंपर गरम थैलीका इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

रोगीके पेटपर ठंडक प्रयोग करनेके साथ-साथ रोज दोनों शाम

उसके पेटपर ठंढा-गरम सेंक (alternate compress) का इस्तेमाल करना जरूरी है। रोगोके पेटको पहले अच्छी तरहसे ठंढा करके तब एक मिनटके लिये हलका सेंक देना उचित है। एक ही बारमें ऐसा तीन वार करना चाहिये। बुखारको हालतमें रोगोको गरम-ठंढा देते हुए ठंढसे शुरू करके ठंढेपर हो खतम करना चाहिये। पेडू सेंकते समय उसको दाहिना तरफ यानी जहांपर इस रोगमें दर्द मालूम होता है वहांपर जरूर सेंक होना चाहिये और वह स्थान छूट न जाय इसका ख्याल रखना जरूरी है। नियमसे इसके इस्तेमाल करनेसे पेट साफ रहता है, पेटका दर्द कम हो जाता है, आंतको सूजन कम हो जाता है, यदि वहां घाव हो गया हो तो वह सूख जाता है और पेटको सभी गड़बड़ो मिट जाती है। परन्तु शरीरको गर्मी जब सबसे कम हो, उसी समय इसका इस्तेमाल होना चाहिये। आंतसे खून निकलता हो तो कुछ दिनोंके लिये इसे बंद कर रखना ही उचित है।

पेडके इन सारे इलाजोंमें मामूली तरहसे पेटको साफ रखनेके सम्बन्धमें कोई फिक्र ही करनी नहीं पड़ती। तो भी उसका पेट साफ हो जानेपर जबतक बुखार न छूटे तबतक गुनगुना पानीमें नीबूका रस निचोड़कर रोज डूस देना आवश्यक है। अगर रोगीको दस्तके लक्षण दिखाई दें तो भी डूस बन्द करना नहीं चाहिये। क्योंकि बड़ी आंतके भीतर जो जहर आकर इकट्ठा होता है, वही आँतकी दीवालमें उत्तेजना भरकर बार-बार टट्टीकी जरूरत पैदा करता है। डूससे इन सभी कूड़ोंको साफ कर देनेसे कभी-कभी तो शीघ्र ही दस्त बन्द हो जाता है। उसके अलावे शरीरके भीतर जो अपनेको बचानेका इन्तजाम है, उसको चंगा कर देनेके लिये, बड़ी आंतको विषमुक्त करनेसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है (J. H. Kellogg, M. D.—New Dietetics, p. 991, Battle Creek, Washington, 1928)।

इन सभी इलाजोंके साथ-साथ रोगीके पैरोंपर, अलग-अलग,

दिनमें दो बार एक घंटेके लिये पैरकी पट्टीका प्रयोग करना उचित है। रोगीका बुखार यदि बहुत अधिक हो, तब ४५ मिनटोंके लिये ही इसे करना चाहिये। कोई भी ठंडा स्नान देनेके एक घंटा पहले इसका प्रयोग करना आवश्यक है और इसको खोलनेके बाद ही तौलिया स्नान या ठंडे गमछेकी मालिश आदि देना जरूरी है। कारण यह है कि पैरकी पट्टीसे शरीर जो कुछ गरम होता है, तौलिया-स्नान आदिसे वह दूर हो जाता है।

इस पट्टीके प्रयोगसे, सूजनकी जगहसे बिगड़ा हुआ खून नीचे उतर जाता है और उस जगहपर जहां खूनकी बहुतायत होती है वह हट जाती है। इसलिये यह रोगीको आराम करनेमें बहुत सहायता देती है। इसके चालू रखनेसे रोगीकी छातीपर या शरीरके किसी भी ऊपरी हिस्सेमें कोई तकलीफ नहीं होती और मौजूद हो तो कम हो जाती है। आंतके भीतर घाव हो जानेसे पेटके ऊपर मिट्टीकी पुलटिसके साथ इसे दिनभरमें दो तीन बार करें तो घाव सूख जाता है। रोगीकी आंतसे खून निकलता हो तो भी इससे उसमें बहुत लाभ होता है। इस हालतमें पेटपर बार-बार मिट्टीकी पुलटिस देकर हर दो घंटेके बाद पैरकी पट्टीका प्रयोग करना उचित है

पैरकी पट्टी देते समय हमेशा यह देख लेना चाहिये कि रोगीका पैर गरम है या नहीं। यदि उसका पैर गरम न हो तो जाँघकी चारों ओर पट्टी देनी जरूरी है।

पर उसका पैर हमेशा गरम रखना आवश्यक है। साधारणतया बहुत-से बुखारोंमें बुखार चढ़नेसे पहले ही रोगीके पैर ठंडे हो जाते हैं। परन्तु जभी पैर ठंढा हो उसी वक्त गरम पानीका थैला आदि देकर यदि दोनों पैरोंको गरम कर लिया जाय तो बुखार अधिक नहीं बढ़ने पाता। किन्तु उसके पैरोंके बीच हमेशा गरम पानीकी थैली रखी रहनी भी उचित नहीं है। ऐसा होनेसे उलटे बुखार बढ़ेगा। मामूली तौरसे बुखारके रोगीके शरीरमें कुछ अधिक गरमीका इस्तेमाल

करनेसे ही बुखार बढ़ता है। इसलिये बुखारके समयको छोड़कर और दूसरे समय उसके दोनों पैरोंको हलके हाथोंसे रगड़कर या उनमें मोजा पहनाकर उन्हें गरम रखना चाहिये। यदि पैर बहुत ठंडा रहता हो तो दिनमें शीतल स्नान देनेके कुछ पहले पांच-छः मिनटोंके लिये रोगीको सुलाये रखकर उसे गरम पैरस्नान दिया जाय। किन्तु इन स्नानोंके समय किसी खास जरूरतके बिना रोगीको बिछावनसे उठाना नहीं चाहिये। इस बीमारीमें शुरूसे ही रोगीको बिछावन पकड़ा देना आवश्यक है और मामूली बातोंमें कभी उसे उसपरसे उठाना नहीं चाहिये। रोगीको उठने-बैठने देना भी ठीक नहीं है। रोगीको पैखाना पेशाबके समय 'मलाधार' (bed pan) और मूत्राधार (urinal) का इस्तेमाल करना जरूरी है। यदि आँतसे खून आता हो तो रोगीको जरा भी हिलना-डुलना नहीं चाहिये।

आजकल टायफायडके जीवाणुओंको ध्वंस करनेके लिये नई-नई औषधियोंका आविष्कार हुआ है। इन औषधियोंके द्वारा रोगके जीवाणु सहज ही नष्ट हो जाते हैं एवं कई स्थलोंपर ज्वर अति शीघ्र ही बन्द हो जाता है। लेकिन देहकी जिस दोषयुक्त अवस्थापर जीवाणु वृद्धि पाते हैं, बुखार बन्द हो जानेपर भी वह रह ही जाती है तथा वही फिर रोगके पुनराक्रमणका कारण बन जाती है अथवा अन्य नये रोगोंके लिये जमीन तैयार कर देती है। इसलिये इस ज्वरमें औषधिका व्यवहार करनेपर भी अपनयनमूलक प्राकृतिक चिकित्सा चालू रखना उचित है।

[३]

इस बीमारीमें शुरूसे ही रोगीको नीबूका रस डालकर ढेरसा पानी पीनेको देना जरूरी है। डाक्टर केलागने कहा है, "अगर रोगीको हर घंटेमें डेढ़ पाव पानी पिलाया जाय और वह पानी अगर शरीरसे बाहर हो जाय, तब और कुछ न करनेपर भी केवल इस उपायसे ही टायफायड बुखार दूर हो सकता है। रोगीकी अगर ऐसी हालत

हो जाय कि वह पानी भी नहीं निगल सके तो भी उसके शरीरमें पानी पहुँचाना होगा। इस हालतमें डूसके सहारे पैखानेके रास्तेसे खूब धीरे-धीरे पानी चढ़ाना आवश्यक है। इतना धीरे-धीरे पानी छोड़ना चाहिये कि एक सेकेण्डमें एक घूंटसे ज्यादा पानी न जाय। रसपूर्ण भोजन लेकर रोगीको दिन-रातमें कम-से-कम तीन चार सेर पानी मिल जाना चाहिये। यदि रोगीको हर दिन तीन सेरतक पानी पिलाया जाय, तो टायफायडके रोगीको जो सब लक्षण मामूली तौरसे दिखाई देते हैं वे सब शीघ्र अदृश्य हो जायें। बहुत-सा पानी पीनेसे माथाका भारीपन, छटपटी, बकबकी आदि तुरन्त दूर हो जाते हैं। परन्तु रोगीको कभी पेट अफराकर पानी नहीं पिलाना चाहिये। हर बार थोड़ा-थोड़ा करके वह बहुत बार पानी पी सकता है। ठंडी हालतके बाद उसे हमेशा ठण्डा पानी ही देना चाहिये, पर उसे कभी बर्फका पानी देना उचित नहीं है।

टायफायडके रोगीके पथ्यका चुनाव करनेमें बहुत सतर्कता अवलम्बन करना चाहिये। बीमारीके शुरूमें पहले डेढ़-दो दिनोंतक तो केवल पानीमें नीबूका रस निचोड़कर देना उचित है। उसके बाद मौसमी और काला जामुन वगैरह हलके फलोंका रस पानीके साथ मिलाकर दो-दो तीन-तीन घंटेपर उसे तीन औंस करके देना चाहिये। टायफायडके रोगीके लिये मट्ठा भी बड़ा अच्छा पथ्य है। परन्तु मट्ठा खूब पतला होना चाहिये। रोगीको डाबका पानी भी दिया जा सकता है, किन्तु उसके फेफड़ेमें यदि कोई खराबी हो तो डाब या मट्ठा उसे कभी नहीं देना चाहिये। इस हालतमें रोगीको मट्ठेके बदले छेनाका पानी दिया जा सकता है। इसके अलावे सभी बुखारके रोगियोंको पानीके साथ शहद दिया जा सकता है।

रोगीको केवल इन्हीं सब चीजोंपर ही रखना अच्छा है और इन सब पथ्योंके अलावा और कुछ देना ठीक नहीं। इन सब रसपूर्ण और हलके पथ्योंपर रखनेसे प्रकृति आसानीके साथ शरीरके भीतर जमे हुए जहरोंको शरीरसे बाहर निकाल देनेमें सफल हो जाती है और थोड़े ही

दिनोंमें रोगी अच्छा हो जाता है।

परन्तु रोगीको ज्यादा खिलानेसे या कड़ी वस्तु खिलानेसे उसका रोग सदा ही बढ़ता है और वह बहुत दिनों तक स्थायी रहता है। सन्निपात के रोगीको खूब थोड़ा-थोड़ा करके बार-बार खिलाना चाहिये। यदि रोगीका पेट ठीक हो तब उसे अधिकांश पानीसे मिला हुआ फलोंका रस पिलाना चाहिये। पेट खराब हो तो छेनाका पानी और मट्ठाके ऊपर ही जोर देना जरूरी है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा करनेसे उसका पेट खराब होना असम्भव है।

संक्षेपमें सन्निपात बुखारमें सबसे अधिक लाभ तब होता है, जब रोगीको शुरूसे ही केवल पानीके साथ नीबू और मौसमीके ऊपर रखा जाय। डा० हे ने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि उनकी प्राकृतिक चिकित्साके अस्पतालमें बहुत वर्षोंसे नई बीमारियोंवाले रोगियोंको केवल नीबूके रसके साथ पानी छोड़कर और कुछ भी खानेको नहीं दिया जाता है। इससे बीमारीमें किसी भी पेचीदगी (complication) की शिकायत कभी नहीं हुई। सन्निपात बुखारमें देखा गया है कि इसीसे दो-तीन हफ्तोंमें बुखार उतर जाता है और मामूली तौरसे दवावाले इलाजोंसे रोगी दो-तीन महीनों तक जैसा कमजोर रहता है, वैसा इस उपायमें कुछ भी नहीं होता। प्रायः रोगी, बीमारी अच्छी हो जानेके सप्ताह दो सप्ताह बाद हो काम करने योग्य हो जाता है (William Howard Hay, M. D.—Health via Food)।

बुखार छूट जानेपर भी खूब सतर्कतासे रोगीको पथ्य देना चाहिये। यहां तक कि १२ दिनोंतक तो रोगीको कभी-कभी कड़ी चीज खानेको देनी ही नहीं चाहिये। कभी-कभी बुखार छूट जानेपर भी उसे थोड़ा-थोड़ा बुखार रहता है। इसलिये बुखार जबतक पूरा न चला जाय, और शरीरकी गरमी मामूली न हो जाय, तबतक रोगीको ठोस खाना देना उचित नहीं है। उस हालतमें छेनाका पानी, पानीके साथ कमला नीबू, बिजोरा नीबू, मौसम्बी आदि फलोंका रस, घोल या मट्ठा आदि दिया जा

सकता है। बारह दिनोंके बाद, दो-तीन दिनोंतक करीब १० बजे सूजीकी रोटी,. मट्ठा, तरकारीका रस और रातमें दूध, बार्ली या साबूदाना देना उचित है। इसके बाद सात दिनोंतक एक शाम पुराने चावलका भात और परवल, घिउरा, कद्दू, नरम बैगन, नेनुआ आदि तरकारी और दूसरे शाम सूजीकी रोटी या सिझाये हुए आटेकी रोटी देनी चाहिये। परन्तु इस समय भी नमक और थोड़ी हल्दी छोड़कर सभी तरहके मसालोंसे परहेज रखना उचित है और तरकारीको घी या तेलसे छौंकना न चाहिये।

बुखार छूट जानेपर पन्द्रह दिनोंतक रोगीको दिनमें एक बार हिप-बाथ और रातभरके लिये भींगी कमर-पट्टीका व्यवहार करना चाहिये। इससे धीरे-धीरे पेट बिलकुल अच्छा हो जाता है। जब देशमें टायफायडका प्रादुर्भाव होता है तब भी प्रतिदिन हिप-बाथ आदि लेना ही इसकी प्रधान प्रतिषेधक चिकित्सा है।

वर्तमान समयमें टायफायडको रोकनेके लिये टायफायडका टीका लिया जाता है। किन्तु टीका लेनेसे ही रोग नहीं होगा, ऐसी कोई बात नहीं। कुछ दिन पहले बृटिश सेनाके २३९ नाविकोंमेंसे ८० नाविकोंको टायफायड हुआ था। इनमेंसे सभीको प्रत्येक तीन वर्षपर टीका दिया गया था तथा अधिकांश रोगियोंको ही छः महीनेके अन्दर टीका लगाया गया था (Hobart A. Reimann, M. D.—Treatment in General Practice, Vol. 1, p. 171, Philadelphia, 1948)। टायफायडका टीका उनकी रक्षा नहीं कर सका। वास्तवमें टायफायडके आक्रमणसे रक्षा पानेका प्रधान उपाय ही है पेट तथा साथ साथ सारे शरीरको विशुद्ध कर लेना। यदि पेटकी लपेट, हिप-बाथ और गीली चादरकी लपेट आदि कुछ रोज ग्रहण किया जाय तब केवल टायफायड ही नहीं सभी संक्रामक व्याधियोंसे आत्मरक्षा की जा सकती है। यदि पेटके भीतर रोग-जीवाणुके वृद्धि पानेकी अनुकूल अवस्था न हो तो रोग किसी हालतमें भी पैदा नहीं हो सकता।

मलेरिया

(Maleria)

मलेरिया एक इटालियन भाषाका शब्द है। इस भाषामें 'मेला' शब्दका अर्थ है खराब और 'एरिया' शब्दका अर्थ है हवा; अर्थात् खराब हवाके द्वारा जो बुखार उत्पन्न होता है उसीको मलेरिया कहते हैं। अब यह शब्द संसारके प्रायः सभी सभ्य देशोंमें प्रचलित हो गया है (Encyclopaedia Medica, Vol. VIII, p. 564)।

मलेरियाके सूक्ष्म जीवाणु एनोफिलिस जातिके मच्छरों द्वारा एक मनुष्यके शरीरसे दूसरेके शरीरमें पहुंचाये जाते हैं। ये जीवाणु शरीरके खूनके कणोंपर अक्रामण करके उन्हें नष्ठ करते हैं। इसीसे मलेरिया बुखारके रोगीके शरीरमें खून नहीं होता। परन्तु मलेरियाके कीड़ोंके शरीरमें घुसते ही आदमी बीमार पड़ जाये, ऐसा नहीं होता। जिनका शरीर सबल और दोषशून्य रहता है, मलेरियाके कीड़ोंको ढोनेवाले मच्छरोंके काटनेपर भी उन्हें कुछ नहीं होता। बहुत-से आदमी मलेरियाके इलाकोंमें रहते हैं, पर उन्हें मलेरिया नहीं होता। मलेरियाका असली कारण इस शब्दके भीतर ही छिपा हुआ है। कुछ दिनतक बदबू और जहरीली हवाके लगनेके कारण जब खून कमजोर पड़ जाता है और शरीरके भीतर बहुत-से विजातीय द्रव्य जमा हो जाते हैं, तभी मलेरियाके कीड़े शरीरके ऊपर अपना असर बढ़ानेमें कामयाब होते हैं।

मलेरिया गरम देशोंका रोग है। मामूली तौरसे वर्षा होनेपर जमीनसे जो गैस उठती है, सांसके साथ शरीरके भीतर जाकर खूनको जहरीला बना देती है। शरीरके भीतर रोग बढ़नेके लायक जमीनके पैदा होनेसे ही मलेरियाके कीड़े शरीरका अनिष्ट कर सकते हैं।

मलेरियाके रोगीको हमेशा बुखार नहीं रहता। परन्तु अत्यधिक इन्द्रिय सेवा, अधिक गर्म या ठंढी हवाके झोंके लेना और दूसरे-दूसरे

रोगोंके हमलेके समय भी मलेरियाके कीड़े शरीरके भीतर अपना प्रभाव बढ़ाते हैं और तब रोगीको बुखार होने लगता है। आखीरमें इसीसे सिद्ध होता है कि मलेरियाका कीड़ा तभी शरीरमें बढ़ सकता है जब शरीर दुर्बल हो जाता है।

यह नहीं है कि केवल खराब गैसके कारण ही खून खराब हो जाता है, स्वास्थ्यके साथ बहुत अन्याय और अन्य प्रकारके अनियम करनेसे शरीरके भीतर बहुत अधिक परिमाणमें दूषित पदार्थोंका संग्रह होनेसे भी खूनकी कणिकाएं अत्यन्त दुर्बल हो जाती हैं, जिनसे मलेरियाके कीड़े उनपर आसानीसे आक्रमण करते हैं।

मलेरियाके कीड़ेके कारण ही बुखार होता हो यह भी नहीं है। ये कीड़े शरीरमें जो विष पैदा करते हैं उसको जलानेके लिये प्रकृति बुखार पैदा करती है। विभिन्न जातिके मच्छरोंके काटनेके कारण विभिन्न लोगोंमें यह रोग विभिन्न ढंगसे आता है और उसीके अनुसार उसके नाम भी विभिन्न हैं। कभी इसीको सविराम (intermittent), कभी अल्पविराम (remittent) और कभी घातक मलेरिया (malignant malaria) के नामसे पुकारते हैं।

मलेरियाके कीड़ोंको मारनेके लिये कई प्रकारकी दवाओंका इस्तेमाल किया जाता है; लेकिन जिस हालतने शरीरके भीतर मलेरियाके कीड़ोंको बढ़ना आसान कर दिया है, उस हालतके दूर हुए बिना क्विनाइन आदि कोई भी दवा रोगीकी सच्ची भलाई नहीं कर सकती। इसलिये क्विनाइनका इतना प्रचार होते हुएभी सम्पूर्ण पृथ्वीमें प्रतिवर्ष ३००,०००,००० लोगोंको मलेरिया होता है (Leon J. Warshaw, M. D.—Malaria, p. 4, New York, 1949) तथा प्रतिवर्ष करीब २० लाख आदमी भारतमें मलेरियाकी बीमारीसे मर जाते हैं (Sir Philip H. Mausone Bahr, M. A. M.D., F.R.C.P.—Manson's Tropical Diseases, p. 31, London, 1954)। हमारी सरकार लाखों रुपये क्विनाइन खरीदनेमें खर्च करती

है। यदि ये रुपये देश तथा जनसाधारणकी अवस्थाको दूर करनेके उपायमें खर्च किये जाते तब शायद क्विनाइन खरीदनेकी आवश्यकता ही नहीं होती।

सविराम मलेरिया बुखार

[Intermittent Malarial Fever]

[१]

एक बार बुखार छूटकर जब वह फिर-फिरकर बार-बार हुआ करे तब उसे सविराम मलेरिया बुखार कहा जाता है। ज्वरका ठहराव अलग-अलग रोगियोंमें अलग-अलग होता है। कभी तो यह दिन-रातके भीतर दो बार आता है, कभी एक बार, कभी-कभी एक दिन बाद देकर और कभी–कभी तो दो-दो दिन बाद देकर आता है। चौबीस घंटेके भीतर यदि बुखार दो बार चढ़े उतरे तब उसे द्वैकालीन ज्वर कहते हैं। अगर रोज एक बार चढ़े उतरे तब उसे 'एकाहिक' या 'दैनिक ज्वर' (quotidian fever) कहा जाता है, एक दिन बीच देकर आनेवाले बुखारको 'द्वाहिक' (tertian fever) और दो दिन बाद देकर आनेवालेको 'त्र्याहिक' (quartan fever) कहा जा सकता है।

इस बुखारकी तीन अवस्थाएँ होती हैं, पहली 'शीतल अवस्था' (cold stage), इसके बाद 'गरम अवस्था' (hot stage) और अन्तमें 'पसीनेकी अवस्था' (sweating stage)। जाड़ा और कँपकँपीके साथ बुखारकी पहली अवस्था आती है। रोगीके दाँत कटकट करके बजने लगते हैं और वह बहुत-सा ओढ़ना चाहता है। कभी-कभी कय या कयकी इच्छा होती है। प्यास, शरीरमें दर्द और खांसी होती है। यह अवस्था दो–चार मिनटोंसे लेकर तीन-चार घंटोंतक रहती है। शीतल अवस्थामें शरीरकी गरमी १०६° तक होती है। इसके बाद

गरम अवस्था आती है। इस समय मुँह तमतमा उठता है, शिरका दर्द बढ़ जाता है, छटपटी, प्यास, सांस लेने छोड़नेमें तकलीफ आदि लक्षण प्रकट होते है, शरीरको गरमी १०१° से लेकर १०७° तक हो सकती है। शरीरका जलना शुरू होनेके साथ ही साथ शीतल अवस्था शेष हो जाती है। यह अवस्था आधे घंटेसे लेकर १२ घटोंतक ठहर सकती है। इसके बाद पसीनेकी अवस्था आती है। इस अवस्थामें खूब पसीना होकर रोगीका बुखार उतर जाता है और शरीरकी गरमी ९६° या उससे भी कम हो जाती है। उस समय सभी लक्षण शेष हो जाते हैं। रोगी सो जाता है और फिर बुखार आनेतक अच्छा मालूम होता हैं। सविराम ज्वर साधारण तौरसे निश्चत समयपर ही आता है, किन्तु, कभी कभी यह नियम टूट भी जाता है। यदि बुखार समय टालकर आये तो रोगीके लिये अच्छा है, समयसे पहले ही आ जाय तो समझना चाहिये बीमारी कड़ी हो रही है। यदि सविराम ज्वर एक ज्वरमें (remittent fever) बदल जाये, बुखार यदि दिनमें दो बार करके आवे या सुबहमें आ जाया करे तो समझना होगा कि बीमारी कड़ी हो रही है।

[२]

सविराम ज्वरके एक बार छूटकर फिर दूसरी बार शुरू होनेके बीचका जो समय है वही इस रोगके इलाजके लिये बढ़िया अवसर है।

सबसे पहले जल्दीसे रोगीके पेटको साफ कर लेना उचित है। इसके लिये गरम पानीमें नीबूका रस डालकर डूस देना आवश्यक है। भींगी कमर-पट्टीका भी इस्तेमाल किया जा सकता है। परन्तु मलेरियाके रोगीके पेड़ू पर कभी मिट्टीवाली पुलटिस चढ़ानी नहीं चाहिये। कारण यह है कि मलेरिया बुखारका स्वभाव हो यही है कि वह सर्दीसे बढ़ता है।

पेट साफ करके बुखार आनेके पहले ही एक बार भींगी चादरका पैक (wet-sheet pack) इस्तेमाल करना चाहिये। इस

समय रोगीके शरीरकी दोनों ओर कम्बलके नीचे गरम पानीके बोतल या थैला सजाकर रख देना जरूरी है। इससे पसीनेके साथ रोगीके शरीरका बहुत-सा जहर शरीरसे बाहर निकल जाता है। ठीक समयपर कम्बल हटाकर गरम जलमें भींगी हुई तौलियासे रोगीके सारे शरीरको घसकर तेज हाथोंसे साफ कर देना चाहिये। इस समय घरके दरवाजों और खिड़कियोंको बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद रोगीके पैरपर गरम पानीका थैला रखकर उसको आधे घंटेके लिये ठंढी मालिशका (cold friction) इस्तेमाल कराना चाहिये। या इसके बदले रोगीकी अवस्थाके अनुसार दससे पन्द्रह मिनटतक एक बार स्टीम-बाथ देकर उसके बाद उसकी ठंढी मालिश दी जा सकती है। घर्षण-स्नान बुखारके लिये रामबाण है। लेकिन यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि बुखार आरंभ होनेके कमसे कम दो घंटे पहले घर्षणस्नान समाप्त हो। बुखार चढ़नेसे पहले कभी भी घर्षण-स्नानका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि घर्षण-स्नान करना संभव न हो, तब उसे तौलिया-स्नान कराना ही ठीक है। इसके बाद गलेतक कम्बलसे ढककर रोगीको सुला रखना चाहिये।
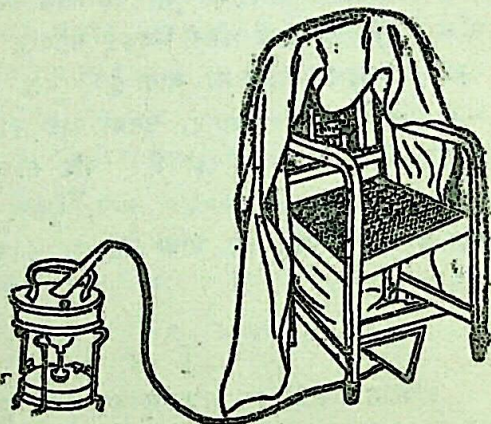
बाष्प-स्नान (steam bath)

दूसरे दिन फिर बुखार चढ़नेसे पूर्व पहले दिनके समान ही चिकित्सा करना चाहिये।

इन सब सफाईमूलक (eliminative) इलाज करके, शिकारी

जैसे शिकारके इंतजारीमें बैठ जाता है, उसी तरह, पाला बुखारके आसरेमें, गरम पानीकी एक बाल्टी, गरम पानीकी थैली (hot water bag) और लिहाफ तथा कम्बल आदि लेकर तैयार होकर बैठ जाना चाहिये। इस समय जल्दी-जल्दीसे रोगीके शरीरको गरमीका नाप लेना चाहिये। जैसे ही गरमी बढ़ती हुई मालूम हो तभी समझना चाहिये कि जाड़ा और कँपकँपी आने ही वाले हैं। बस जाड़ा आनेके पहले ही एक बार गरम पैर-स्नान (hot foot-bath) देकर रोगीको पसीना आने देना चाहिये। इस वक्त रोगीके दोनों पैरोंको घुटनेतक बाल्टी भरे पानीमें डुबा रखना आवश्यक है और उसी समय उसे नीबूका रस दिया हुआ एक ग्लास गरम पानी भी पिलाना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीरसे जल्दी पसीना छूटने लगता है।
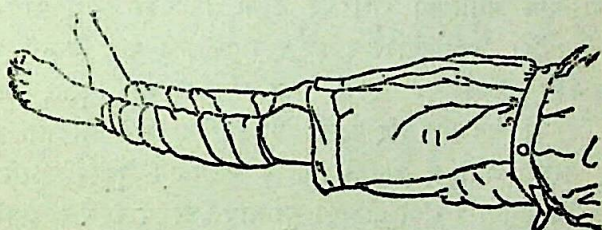
पैरके पैक (foot pack)

साधारण तौरसे २० मिनटतक गरम फूट-बाथका इस्तेमाल ही काफी हो जाता है। इसके बाद रोगीके दोनों पैरोंमें अलग-अलग पैरके पैक देकर और उनके ऊपर गरम पानीका थैला रखकर, गलेतक लिहाफ और कम्बल ओढ़ाकर उसे सुला देना चाहिये। सौमें ९० संख्यामें ऐसा करनेसे रोगीका जाड़ा और कँपकँपी जो तुरंत ही आनेवाली थी पसीनाकी धारामें बदलकर गायब हो जाती है। परन्तु इस समय खूब होशियारी रखनी जरूरी है कि रोगीका शरीर बहुत अधिक गरम न हो जाने पावे। रोगीको इस तरह इस ढंगसे ढका रखना चाहिये कि ऊपरके कपड़े उसे आराम दें और पसीना उसके शरीरसे टोपा-टोप

निकलता रहे। रोगीके पसीना छूटते ही एक सूखे हुए कपड़ेसे उसके शरीरको बार-बार पोंछते रहना चाहिये।

साधारण तौरसे इस हालतमें रोगीको दो घंटेतक रखा जाता है। रोगीको इससे आराम मालूम पड़ता हो तो इससे अधिक समय तक भी रख सकते हैं। इसके बाद जब समझ लिया जाय कि जाड़ा और कँपकँपी अब आनेवाली नहीं हैं, तब रोगीको बिना उघारे एक-एक करके गरम पानीकी थैली और ऊपरका ओढ़ाया हुआ कम्बल आदि हटा लेना चाहिये। इस समय रोगीके शरीरको जरा-सा भी उघारनेसे या ठंढा पानी पिलानेसे या ठंढा पानी शरीरमें छुआनेसे, तुरन्त जाड़ा और कँपकँपी लौट आ सकती है। इसलिये इन चीजोंसे खूब होशियार रहना चाहिये।

पारीवाले मलेरियामें पारी बंद करना ही सबसे बड़ा काम है। पहले ही पसीना निकलनेवाला इलाज करके बुखारकी पारी आनेसे पहले ही पसीनेके रास्ते वह हटा देनेपर, फिर कँपकँपी और बुखार करीब-करीब नहीं ही आते और यदि पहले दो-एक दिन आये भी तो बहुत हलकी तरहसे आते हैं इसलिये पारीके मलेरियामें मुकर्रर तारीखोंपर दो-एक दिन इसी तरह रोगी को गरम फूट-बाथ देकर पैरका पैक इस्तेमाल करना चाहिये। पर बुखारकी हालतमें यदि इलाज शुरू करना पड़े तो यह खूब अच्छी तरह देख लेना चाहिये कि बुखार बढ़ने न पावे।

मलेरियामें शरीरकी गरमी टाइफायड बुखारसे भी अधिक होती है। इसलिये इसकी ठंडी अवस्था बीत जानेपर, बुखार जिस समय अधिक हो उस समय कुछ मिनटोंके बाद ही, रोगीको कुछ-कुछ गुनगुना पानीमें तौलिया-स्नान कराना आवश्यक है। इस समय रोगीके शिरको बार-बार ठंढे पानीसे धुलाकर, ठंढे या बर्फके पानीमें भिगोये हुए गमछेसे उसका शिर ढक देना चाहिये। गरम अवस्थामें रोज कम-से-कम दो बार रोगीको तौलिया-स्नान कराना उचित है। इस समय रोगीको नीबूका रस डालकर बहुत-सा गुनगुना पानी भी पिलाना उचित है। परन्तु

पारीवाले मलेरियामें बुखारकी ठंढी अवस्थामें, बुखार तेज होने के तुरन्त बाद ही उसके शरीरको ठंढा करनेका इन्तजाम होना नहीं चाहिये। ऐसा होनेसे जाड़ा और कँपकँपी फिर लौट आ सकती है।

गरम अवस्थाके बाद जब रोगी पसीनेवाली हालतमें आ जाय, तब सूखे कपड़ेसे उसका पसीना पोंछते रहना चाहिये। पसीना निकलना जब बन्द हो जाय तब, गुनगुने पानीसे उसका शरीर पोंछ देना उचित है। पसीना होनेके समय भूल कर भी ठंढा पानी इस्तेमाल करना उचित नहीं।

अगर खाना खानेके बाद ही रोगीको बुखार आ जाय, तब वह बुखार साधारण तौरसे अधिक समय टिकनेवाला होता है। इसलिये इस हालतमें गुनगुना पानी पीकर (गरम पानी नहीं) कय कर देना ही अच्छा है।

बुखार जब न रहे तो सुबहके समय रोगीके पेड़ू और शामको उसके यकृत (liver) पर गरम-ठंढाका इस्तेमाल करना चाहिये। प्रातः कालके समय पेट पर गरम-ठंढेका इस्तेमाल करके, तब गरम पानीमें नीबूका रस निचोड़कर डुश देना उचित है। इसके अलावे रात-दिन रोगीको भींगी कमर-पट्टीका इस्तेमाल करना चाहिये। भींगी कमर–पट्टी को दिनमें हर दो–दो घंटे पर बदलकर रातके समय उसे रात भरके लिये चढ़ा छोर देना चाहिये। परन्तु बुखारमें यह कमर-पट्टी देना कभी उचित नहीं है। शरीरकी बीमारीसे लड़नेकी ताकतको बढ़ानेके लिये हर रोज जब बुखार न हो उस समय, बहुत थोड़े समय के लिये रोगी को ठंढे पानी का बाथ देने की जरूरत है। किन्तु ऐसे समय बहुत होशियारीके साथ रोगीके शरीरमें ठण्डे जलका प्रयोग करना चाहिये। मलेरिया बुखार जब तक अच्छी तरह छुटजाय और छुट जाने पर भी तीन-चार दिनोंतक रोगी ठण्डे पानीसे कभी पूर्ण स्नान न करे। इस समय दिनमें तीन बार उसके शिरको ठण्डे पानीसे धोकर उसका बाकी शरीर भींगे गमछेसे ही पोंछ देना उचिता है। सबेरे नींद से उठने पर, दोपहरमें और रातमें सोनेसे थोड़ा पहले रोगीको इसी तरह तौलिया-स्नान करा देना ठीक है।

रोगीको हर रोज एक बार कमर स्नान लेना भी जरूरी है।

परन्तु मलेरिया बुखारकी शीतल अवस्था (cold stage) में कभी यह नहीं लिया जाय। बूखारके उतर जानेपर और रोगके छूट जाने पर हो रोज ऐसा करना चाहिये। बुखार अच्छा हो जानेके बाद भी नियम के साथ यदि इसे किया जात तो बुखारके फिर लौटने की आशंका नहीं रहती। इसके अलावे संभव हो तो रोगीको रोज एक बार गरम पैर-स्नान या धूप-स्नान देकर गलेतक कंबल लपेटकर आधे घंटे-

सूखी मालिश (dry friction)

तक ठंढा मालिश इस्तेमाल कराना चाहिये। इस समय पैरोंपर गरम पानीकी थैली या बोतल रखना जरूरी है। इन सभी बाथोंके समय रोगीके शरीरमें हवा न लगे, इस ओर खूब खयाल रखना चाहिये। इसलिये स्नानके बाद शरीर पोंछकर गले तक समूचे शरीरको कम्बलमें लपेटकर रखना जरूरी है।

इस इलाजको ठीक-ठीक करनेसे पारीवाला मलेरिया बुखार यथासंभव बहुत जल्दी ही अच्छा हो जाता है। बहुतोंकी यह धारणा है कि मलेरिया बुखार बिना क्विनाइनके या दवाके अच्छा नहीं हो सकता। यह खयाल

बिलकुल गलत है। मलेरिया बुखार प्राकृतिक चिकित्सासे, किनाइन या और किसी भी दवाकी अपेक्षा अधिक जल्दी अच्छा होता है और यह रोग को दबाकर नहीं, बल्कि जिसके कारण मलेरिया बुखार बढ़ता है उसको बाहर कर ही; शरीर से बीमारीको भगा देती है। इसलिये बुखार छूट जानेके बाद भी यह इलाज और कुछ दिनोंतक चलाते रहना चाहिये। ऐसा होनेसे मलेरिया फिर लौटकर नहीं आ सकता और न वह पुराने बुखारमें बदल सकता है। इसीसे अच्छे हो जानेके बाद भी कुछ दिनोंतक नीबूके रसके साथ बहुत पानी पीना, पेट और लीवरपर गरम-ठंढा लेना, हिप-बाथ और नहानेके पहले धूप-स्नान और उसके बाद सूखी मालिश और सप्ताहमें एक दिन भींगी चादर का पैक और एक दिन १० से १५ मिनटतक स्टीम-बाथ लेना जरूरी है। बुखार छूट जानेके बाद दो से चार सप्ताहोंतक यह नियम जारी रखना चाहिये।

बुखार छूट जाने पर कई बातोंको रोगीको सावधानी रखनी चाहिये। पहले तो, जैसे हो कब्जियत को दूर ही रखना चाहिये। एक दिन भी टट्टी साफ न हो तो समझना होगा कि बुखार आनेवाला है। उस समय बिना देरी लगाये गरम पानीका डूस लेकर पेटको साफ कर लेना आवश्यक है। परन्तु रोज हिप-बाथ और भींगी कमर-पट्टीके व्यवहारसे और काफी फल खानेसे कब्जियत हो ही नहीं सकती।

रोगीके शरीरमें कभी सर्दी असर न करे इस बातको देखते रहना जरूरी है। इसलिये कभी ठंढा लग जानेपर तुरन्त ही गरम फूट-बाथ देकर उस ठंढको नष्ट कर देना चाहिये। इसके बाद यह खयाल रखना चाहिये कि जिससे अधिक मिहनत या और किसी कारण शरीरमें थकान न आने पावे।

रोगीको ठंढी जमीन और गढ़ेके पासवाले मकानको छोड़ देना चाहिये। रातमें सदा उसे मच्छरदानीके भीतर सोना जरूरी है।

[३]

मलेरियामें साधारण बुखारके अनुसार ही पथ्य दिया जाता है। परन्तु बूखार छूट जानेके दो-चार दिन वादसे उसे ऐसा पथ्य देना चाहिये, जिससे उसके शरीरके खूनकी कमी दूर हो। इसलिये रोज दोनों शाम उसे पालकके शाकका कच्चा रस देना लाभदायक है। मांसा हारी रोगोको कुछ दिनोंतक बीच-बीचमें खसीके यकृत (liver) का सूप देना अच्छा है। संसारमें खून बनानेवाला खाना इससे बढ़कर और दूसरा नहीं है। इस तत्वके आविष्कार करनेके लिये दो डाक्टरोंने (Dr. G. H. Whipple एवं W. B. Menphy) नोवेल पुरस्कार प्राप्त किया है। इसके बाद रोज रोगोको ढेरसा फल, फलका रस, तरकारीका रस और पानोके साथ तोन-चार नीबूका रस देना उचित है। रोगीको थोड़े दिनों तक बर्फ, दही और डाबके पानीसे परहेज रखना चाहिये।

स्वल्प विराम मलेरिया

(Remittent Malarial Fever)

कोई-कोई मलेरिया ज्वर बिल्कुल चला नहीं जाता। सिर्फ थोड़ी देर तकके लिये शरीरकी गरमो कम हो जाती है और फिर वहीसे बुखार बढ़ना शुरु हो जाता है। इसको स्वल्प विराम ज्वर कहते हैं।

इस बीमारीमें बुखारके पहले हमेशा शरीरमें जाड़ा लगता है। उसके बाद बुखार शुरु हो जाता है। मामूली तौरसे रोगीको सिर दर्द, कब्जियत, भूख को कमी और शरीरमें पीड़ा रहती है। रोगोको जीभ पर पपरी पड़ी रहतो है और पेशाब लाल होता है। बुखार १०१° से लेकर १०६° तक होता है। कभो-कभो रोगीको उलटो होतो हैं। कभी-कभी इसी के साथ कमला, अतिसार आदि बोमारीयाँ उमड़ आतो है। इस रोगका भोगकाल साधारण तोरसे दो सप्ताह है। परन्तु इलाजमें गड़बड़ी होनेसे एक महीने तक भी बुखार रह जाता है या कभी

पारीवाले बुखार या सन्निपात मियादी बुखार में परिणत हो जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि गलतीसे स्वल्प विराम बुखारको सान्निपातिक (typhoid) बुखार समझ लिया जाता है। परन्तु इस बीमारीमें उलटी होती है और पाकस्थली (stomach) में दर्द भी रहता है और सान्निपातिक बुखारमें यह सब नहीं होते। फिर इस बीमारीमें सबेरे पहर ही बुखार सबसे तेज होता है। सान्निपातिक बुखारमें इससे विपरीत अवस्था रहती है। इस बुखारमें पारीवाले बुखारकी तरह शीतल, गर्म और पसीनेवाली अवस्थाएँ नहीं होतीं। इसके अलावे और सब लक्षण उसी बुखारके रहते हैं।

दूसरे-दूसरे बुखारोंके इलाजकी तरह ही इस बुखारमें भी रोगीके पेटको पहले साफ कर लेना जरूरी है। परन्तु मलेरियाके रोगीके पेड़ूपर कभी गीली मिट्टी चढ़ाना नहीं चाहिये। दूसरे उपयोगसे पेड़ूको साफ करके, उसके बाद एक घंटेके लिये रोगीको एक बार भींगी चादरका पैक देना, इस बीमारीको सबसे अच्छी दवा है। बहुत-से केसोंमें केवल ऐसा करनेसे ही रोग आराम हो जाता है। बुखार जिस समय सबसे कम हो उसी वक्त इसका इस्तेमाल करना ठीक है। या इसके बदले गरम पैरका स्नान या वाष्प-स्नान लिया जा सकता है। पसीना चलनेवाले नहानके खतम होने पर रोगीको ठंढी मालीश देना जरूरी है। यदि यह न हो सके, तो रोगीको तौलिया-स्नान तो जरूर करना चाहिये। तेज बुखारके समय रोगीको हर घण्टेमें ठंढे पानीसे एक बार तौलिया-स्नान कराना जरूरी है। इस समय रोगीके पैर पर गरम पानीका थैला रखना आवश्यक है। बुखार खुब तेज हो तो उसके लिये भींगी चादरका ठंडा पेक (cooling wet-sheet pack) प्रयोग किया जा सकता है। इससे बुखार तुरंत उतरेगा और रोगीको ऐसा मालूम होगा मानो उसे कुछ हुआ ही नहीं। तेज बुखारमे रोगीके पेट पर दिनमें तीन बार भींगा गमछा आधे घंटेके लिये रखना भी जरूरी है। इस उपायसे पेट, लीवर और पिलही खूब ठीक रहती है। उसे दिनमें दो बार हिप-बाथ

भी दिया जा सकता है। इस समय दोनों पैरोंको गरम पानीमें डुबा रखना जरूरी है। रोगीके शरीरपर ठंढे पानीके प्रयोगके समय खास तरहसे देखना जरूरी है कि उसे हवाका झोंका न लगने पावे। उसे कमी देरतक ठंढे पानीसे नहाने नहीं देना चाहिये। पहली हालतमें जिस समय रोगीका शरीर सिहर उठता है, उस समय उसे गरम पानी पीनेको देना चाहिये। इस हालतके खतम हो जानेके बाद उसे पीनेके लिये हमेशा ठंढा पानी ही देना जरूरी है। पथ्य, पानी तथा मामूली उपाय और इलाज सब दूसरे-दूसरे बुखारके इलाजों की तरह ही। कमला और अतिसार आदि कठीन गड़बड़ियों (complication) के लिये इन सभी रोगोंके इलाजका तरीका करना चाहिये।

सविराम मलेरिया बुखार जिस तरह आसानीसे अच्छा हो जाता है, स्वल्प विराम बुखार उतनी आसानीसे नहीं जाती। इसलिये इस तरहके रोगोंके लिये अधिक सतर्कतासे इलाज करना जरूरी है।

वात ज्वर या नया गठिया

[Acute Rheumatism]

[१]

नया गठिया बड़ी तकलीफ देनेवाली बीमारी है। एकाएक कुछ जाड़ा-सा लगकर रोगका हमला, उसके बाद बुखार—बुखार शुरूमें ही १०४° से १०५° तक—कमी-कमी इससे भी अधिक, एक या एकसे अधिक जोड़ोंमें दर्द, सूजन और फुलाव, मामूली तरहसे घुटना, पिंडली, हाथका कूल्हा या केहुनी और स्कंधपर अधिक आक्रमण, धीरे-धीरे दर्दकी बढ़ती, मामूली तरह अंग हिलाने-डुलानेसे ही दर्दकी वृद्धि, कब्जियत, शिर दर्द गंदली जीभ, भूख गायब, थोड़ा और कमी-कमी सुर्ख रंग का पेशाब, सांस का जल्दी-जल्दी चलना, तेज प्यास और रातमें बीमारीका बढ़ना आदि इस नये गठिया रोगकी मामूली पहचान है। समय-समय पर रोग एक जोड़ छोड़कर दूसरे पर आक्रमण करता है। इस रोगमें मृत्यु-संख्या

नगण्य है और प्रधान-प्रधान जो उपसर्ग हैं वे १४ दिनमें कम हो जाते हैं किन्तु रोगी आरोग्यलाभ नहीं करता। प्रायः यह रोग बार-बार लौट आता है और हार्टको विकल बना देता है।

हार्टके कपाटका जो रोग होता है। (valvular disease of the heart) उसका ९० प्रतिशत रोग नये गठियासे उत्पन्न होता है (W. S. C. Copeman, M. D., F.R.C.S., and R. M. Mason, M.R.C.P.—Rheumatism, P. 12. London. 1954) साधारणतया शैशवमें ही इस रोगका आक्रमण होता है। दीर्घकाल तक वह शरीरके भीतर रहता है और अन्तमें विभिन्न प्रकारसे शरीरमें प्रकाश पाता है (Howard F. Conn, M. D.—Current Therapy, p. 55, London, 1954)।

यह रोग क्यों होता है, डाक्टरी शास्त्रमें इसका कुछ पता नहीं मिलता। The cause of theumatic fever is unknown-नये गठियाका कारण कोई नहीं जानता (Sir Stanley Davidson, M. D., F. R. C. P.—The Principles and Practice of Medicine, p. 149, London, 1946)। इसलिये इसका कोई अव्यर्थ औषधि (specific) नहीं है Hobert A. Reimann, M. D.—Treatment in General Medicine, p. 689, Philadelphia, 1948) किन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि इस रोगमें सभी औषधिका व्यवहार करते हैं। इससे रोग तो मिटता नहीं बल्कि औषधिके विषसे रोगीकी अवस्था खराब ही होती है। एक डाक्टर (Findlay) ने शैशवमें नये गठियासे आक्रान्त हुए ७०० रोगियोंके सम्बन्ध अनुसन्धान किया था। उसमेंसे केवल एक-तृतीयांशको हृद्रोगसे मुक्ति मिला और शेष आधा रोगियोंका रोगाक्रान्त होनेसे दस वर्षके भीतर प्राणान्त हुआ था और अवशिष्ट रोगी हृद्रोगसे पंगु (cardiac criples) होकर किसी तरहसे जीवित थे (D. M.

Dunlop, M. D., F. R. C. P., and others—Text. book of Medical Treament, p., 605; Edinburgh, 1949)।

इसलिये इस रोगके शुरुमें ही घरकी तमाम औषधियोंकी निकटवर्ती किसी कूड़ाघरमें फेंककर अविलम्ब देहकी आभ्यन्तरिक सफाईमूलक चिकित्सा करना उचित है। प्राकृतिक चिकित्सामें रोगका कारण नहीं जाननेपर भी चिकित्सा चल सकती है। इस चिकित्सामें किस जीवाणुसे रोग हुआ है यह निर्णय करना ही बड़ी बात नहीं। देहकी किस अवस्थामें विभिन्न रोग-जीवाणुका आक्रमण संभव होता है यह जान लेना ही प्रधान बात है। प्राकृतिक चिकित्सामें साधारणतया किसी रोगकी चिकित्सा नहीं होती, शरीरकी चिकित्सा होती है। क्योंकि देहमें संचित हुआ विभिन्न कूड़ा ही सब रोगोंका मूल कारण है। जब प्रकृतिके विभिन्न मार्गोंसे उसे बाहर कर दिया जाय और शरीरके भीतर ध्वंस करनेकी व्यवस्था की जाय तब उसके ऊपर वृद्धि प्राप्त जीवाणुकी अनिष्ट करनेकी ताकत भी नष्ट हो जाती है।

[२]

दूसरे-दूसरे ज्वरोंकी जो चिकित्सा है वांत ज्वरकी भी चिकित्सा मूलतः वही है। दूसरे ज्वरोंकी चिकित्साकी तरह ही इसकी चिकित्सा में भी सबसे पहले नीबूका रस निचोड़े हुए पानीका एक डूस देना उचित है और जबतक बीमारी अच्छी न हो जाय यह डूस चलता रहना चाहिये। इस रोगमें रोगीको हमेंशा गरम पानीका डूस देना आवश्यक है।

पहली बार ही डूस देनेके बाद रोगीको आधे घण्टेके लिए एक बार गरम पेर-स्नान देना चाहिये। रोगीके पैर जितना गरम पानी सह सकें पानी उतनाही गरम होना उचित है। दोनों पैरोंको भी बहुत अंशतक गरम पानीमें डुबाकर रखना चाहिये। इस समय रोगीके समूचें शरीरमें गले तक कम्बल लपेटकर रखना उचित है। यानी उसे ऐसे रखना चाहिये कि उसको पसीना आने लगे। पसीना होनेसे बुखार

और दर्द कम हो जाता है। रोगीको खूब पसीना आने लगे तो एक सूखी हुई तौलियासे उसे बराबर पोंछ देना चाहिये। परन्तु स्नान कराते समय उसके शिर पर एक भींगा हुआ गमछा रखकर उसे ठंढा रखना चाहिये। दस मिनटके बाद एक दूसरे गमछेको भिगोकर और उसका पानी अच्छी तरह निचोड़कर उसको तह करके रोगीके हार्टपर रखना जरूरी है। स्नान शेष हो जानेपर हार्टके ऊपरके स्थानमें घर्षणकर उसे गरम कर देना जरूरी है और गरम पानीमें भींगे हुए एक गमछेसे उसका सारा शरीर जल्दी-जल्दी पोंछकर कम्बलमें लिपटे हुए ही उसे बिछावनपर लिटा देना उचित है।

रोगीका बुखार जबतक न छूटे तबतक उसे एक शाम यही पैर-स्नान देना और दूसरी शाम एक भींगी चादरके पैकका प्रयोग करना चाहिये। लेकिन इस रोगीको यह पैक एक खास तरीकेसे इस्तेमाल करना जरूरी है। ठंढे पानीसे भींगी हुई चादरके बदले रोगीको गरम जलमें डुबाकर निचोड़े हुए पतले अलवानपर सुलाकर यह पैक दिया जाता है। अलवानके बाद पहले कम्बलके चारों ओर कई गरम पानीसे भरी हुई बोतलें और थैले रखकर उसके ऊपरसे और दो कम्बलोंसे रोगीको अच्छी तरह ढक देना पड़ता है। इस समय एक बड़े भींगी हुई तौलियासे रोगीका माथा और गला लपेट देना जरूरी है और कलेजेके ऊपर, कम्बलके नीचे एक भींगा हुआ गमछा रखना भी आवश्यक है। रोगीको कम-से-कम एक घंटेके लिये इस पैकमें रखना जरूरी है। रोगीका शरीर यदि मजबूत हो तब उसको दो घंटेके लिये भी इस पैकमें रखा जा सकता है। या रोगीके शरीरमें अधिक मांस हो तो उसको पसीना देकर जबतक बुखार न कम हो जाय और उसका दर्द न कम हो जाय, तबतक उसे पैकके भीतर रखना चाहिये। गठियाकी बीमारीमें दर्द दूर करके और बुखार उतारनेका यही सबसे अच्छा उपाय है। इस उपाय से पसीनेके साथ रोगीके शरीरका बहुत-सा जहर बाहर निकल जानेसे ही बुखार कम हो जाता है। अमेरिकाके बहुतसे अस्तपतालोंमें गठिया

रोगके इलाजके लिये यही तरीका इस्तेमाल किया जाता है (J. H. Kellogg, M. D.—The Home-book of Modern Medicine, pp. 1180—84)। पैकका काम खतम हो जानेपर रोगीको एकाएक उसमेंसे बाहर नहीं निकलने देना चाहिए। उसको कभी उघारना भी नहीं चाहिये। पैकसे निकालकर उसे कम्बलके नीचे सुला उसके एकके बाद दूसरे अंगोंको निकाल निकालकर भींगी तौलिया से पोंछना चाहिये।

बुखार जबतक न छूटे रोगी को रोज इसी तरह एक बार गरम पैर-स्नान और एक बार भींगी चादरका गरम पैक इस्तेमाल करना आवश्यक है। रोगी यदि कमजोर हो, तब एक दिन गरम पैर-स्नान इस्तेमाल करके दूसरे दिन भींगी चादरका गरम पैक इस्तेमाल कराया जा सकता है। साधारण तौरसे तीन-चार दिन ऐसा करनेसे गठिया छूट जाता है।

दूसरे बुखारोंकी तरह, इसके बुखारमें भी रोगीके शरीरको भींगे गमछेसे पोंछना जरूरी है। परन्तु इस रोगमें रोगीको ठंडक एकदम बरदास्त नहीं होता। इसलिये इस रोगमें रोगीके शरीरमें इस तरीकेसे ठंढकका इस्तेमाल करना उचित है कि उसके शरीरमें ठंढक भी न लगे और ठंढकके इस्तेमालका पूरा-पूरा उद्दीपन उसे होवे। इस मतलबसे रोगीके शरीरको एक खास तरीकेसे स्पंज करना ठीक है। पहले एक अंगको खूब गरम जलमें भींगी और निचोड़ी हुई तौलियासे पोंछकर, तब ठंढे जलमें भींगी हुई तौलियासे उसे कई बार पोंछना चाहिये। पीछे एक सूखी हुई दूसरी तौलियासे इस स्थानको अच्छी तरह पोंछकर और फिर सूखे हाथसे रगड़कर उस अंगकी गरमीको फिरसे लौटा लाना चाहिये। इसके बाद इस अंगको कम्बलसे ढककर तब दूसरे अंगको लेना उचित है। इस तरह एकके बाद दूसरा इस हिसाबसे रोगीके सभी अंगोंको पोंछ देना चाहिये अथवा होशियारीके साथ रोगीको घर्षण-स्नान इस्तेमाल कराया जा सकता है। किसी एक अंगमें नीचेके हिस्सेमें गरम थैली

दो-चार सेकेंड के लिये लगाकर तब उस जगह ठंढो मालिशका इस्तेमाल किया जाता है। फिर गरम थैलेको वहांसे हटाकर इस अंगके ऊपरवाले हिस्सेपर रखा जाता है। उसके बाद गरम थैलेको वहाँसे हटाकर
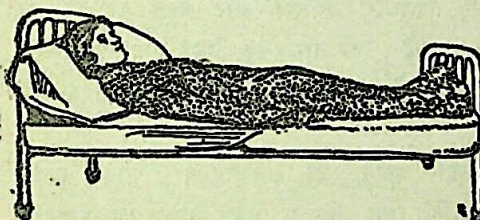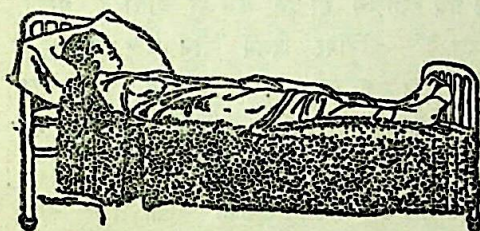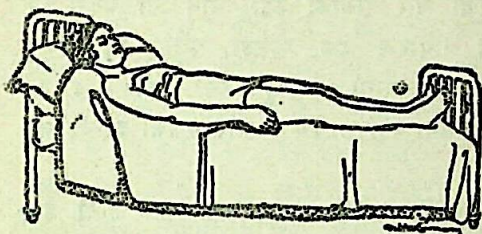
दूसरे अंगके नीचे उसे रखकर उस अंगपर घर्षण-स्नान इस्तेमाल किया जाता है। इस ढगसे तमाम शरीरमें घर्षण किया जा सकता है। परन्तु रोगोको यदि तकलीफ हो तो केवल पैरोंपर ही गरम पानीका थैला रखकर तौलिया-स्नान करना चाहिये। यद्यपि इस बुखारमें होशियारीके साथ ठंढा बाद देना उचित है, तोभी गरम थैलेका इस्तेमाल भी इस तरह करना चाहिये कि उसका भींगी चादर की लपेट (wet-sheet pack) शरीर बहुत अधिक गरम न हो जाये ; ठंढे प्रयोगके कारण रोगीको जिसमें तकलीफ न हो, केवल इतना ही कर देना काफी है।

परन्तु रोगोका बुखार यदि बहुत अधिक बढ़ जाय तब बार-बार बदल-बदलकर रोगीको भींगो चादरको ठंढो लपेट (cooling wet-sheet pack) का इस्तेमाल करना जरूरी है (Frederick

W. Price, M. D., F. R. C. P.—A Text-book of the Practice of Medicine, P. 323, London, 1947)। ऐसा न होने से भारी कठिनाई पैदा हो जाती है।

किसी भी तरह दिनमें दो बार रोगीको ठंढा बाथ देना जरूरी है। ऐसा होनेसे रोग कभी भी बीमारके दिल, फेफड़ा, प्लूरा या मेनिंग (menings) में फैलने नहीं पाता। परन्तु किसी भी तरह ठंढे बाथसे रोगीको ठंढा लगने देना नहीं चाहिये। इससे उसका दर्द बढ़नेका बहुत डर रहता है।

गठियामें जोड़ोंके दर्दसे रोगीको बहुत तकलीफ होती है। साधारण तौरसे ऊपर कहे गये इलाजसे ही दर्द कम हो जाता है। परन्तु इस रोगका खास इलाज यह है,—जोड़ोंपर दिनमें तीन बार तापबहुल गरम-ठंढा (५ मिनट गरम और एक मिनट ठंढा) इस्तेमाल करके और आखिरमें ठंढा न देकर, समूचे अंगको नीचेसे ऊपरकी ओर इस तरह रगड़ देना जिससे खूनकी रफ्तार नीचेसे ऊपरकी ओर हो। यह पांच मिनटतक करना चाहिये। सेंक देनेके समय सेंकको काफ़ी तौरसे गरम रखना जरूरी है। इस तरह दिनभरमें दो बार और बहुत दर्द हो तो तीन बार तक किया जा सकता है। हर बार रगड़ देनेके बाद एक घंटेके लिये एक ढकी हुई लपेट इस ढगसे प्रयोग करनी चाहिये जिसकी भीतरमें तापका संचार हो।

इस बीमारीमें रोगीको शुरुसे ही बिछावनपर सोये रहकर पूरा-पूरा आराम करना चाहिये तथा जबतक सब रोग-लक्षण अन्तर्हित न हों, तबतक विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है (W. S. C. Copeman. M.D., F.R.C.P., and R. M, Mason, M.R.C.P.—Rheumatism, p. 12, London, 1954)। रोगकी नयी अवस्थामें रोगीको कम से कम डेढ़ महीना तक शय्यामें रहकर विश्राम लेना उचित है। बीमारीकी तेजीकी हालतमें जोड़ोंको भी कभी हिलाना-डुलाना नहीं चाहिये। इसलिये पैखाना, पेशाबके लिये बेड-पैन

वगैरह देना उचित है। बीमारीसे छुटकारा पा लेनेके तुरन्त बाद ही रोगीका उठकर बैठ जाना या चलने-फिरने लगना भी उचित नहीं है। इस बीमारीके आखीरमें दिल बहुत कमजोर हो जाता है और इसलिये तुरंत ही मामूली मिहनत करनेसे भी, ऐसा कि उठकर बैठनेसे भी हमेशाके लिये दिलकी कोइ न कोई बीमारी हो जाना सम्भव होता है। लेकिन बुखार और जोड़ोंकी सूज छुट् जानेपर बिछावनपर पड़े-पड़े ही रोगीको हाथ-पांव फैलाना आवश्यक है। किन्तु ज्वर रहनेपर कभी संधि संचालन करना उचित नहीं हैं। असमयमें हो संधि भंग करनेकी चेष्टाकरने से विकलांगता उपस्थित हो सकती है (Otto Glasser, Ph. D.—Medical Physics, p. 1238, Chicago, 1951)। अच्छे हो जाने पर भी ठंढ लगना, गीले घरमें रहना, भींगे कपड़े पहनना, रातमें जगना, अधिक सोना, अधिक परिश्रम करना, जबतब खाना, दिनमें सोना और अधिक भोजनका परित्याग करना भी उचित है।

रोगीका पेट सदा खास तौरसे साफ रहना चाहिये। इसके लिये कुछ दिन तक रातभर ढका हुआ पेट की पट्टीको इस्तेमाल करना उचित है। अच्छे हो जानेपर रोगीको कसरत करनेको आदत डालनी चाहिये, सुबह या शामको रोज एक-दो मील टहलना बहुत जरूरी है, कसरत भी करे तो उसे थक जानेके पहले आराम ले लेना चाहिये। हर दिन थोड़ा-सा पसीना निकाल लेना रोगीके लिये बहुत जरूरी है। इसके लिये नहाने से पहले हर रोज उसे धूप-स्नान लेना उचित है। इसके अलावे थोड़े समय तक हर पन्द्रहवें दिन और उसके दूसरे महीने में एक महीने पर एक दिन १५ से २० मिनटों तक भाप-स्नान लेना उचित है। दुनियामें अभीतक ऐसी कोई औषधि आविष्कृत नहीं हुई, जिससे यह रोग आरोग्य हो। इसलिये इस रोग में वृथा कभीभी औषधियोंके पीछे नही दौड़ना चाहिये।

[३]

शुरू से ही रोगीके लिये नीबूके रसके साथ बहुत-सा पानी पीना जरूरी

है। जब बुखार ज्यादा रहे तब उसे हर रोज कम-से-कम ६ पांइट जल देना कर्तव्य है (The British Encyclopaedia of Medical Practice, p. 141, Vol. 2, London, 1950)। शुरु शुरुमें गरम पानी तथा उसके बाद गुनगुना पानी पीना चाहिये। पहले रोगीको जितने दिनतक हो सके केवल पानी पीकर उपवास करना आवश्यक है। जितने अधिक दिनों तक रोगी उपवास कर सकेगा, उतना ही जल्दी वह अच्छा भी होगा। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि केवल पानी पर रह जानेसे ही रोगके सारे लक्षण मिट गये हैं। और वह न भी हो, तो भी उपवाससे रोगका जोर कम हो जाता है इसमें तो कोई सन्देह हीं नहीं। उपवास तोड़ने पर बुखार और सूजन कम न होने तक पानीके साथ नारंगी, बिजोरा नीबू और अनन्नास वगैरह फलों का रस, छेने का पानी और हरे शाकका सूप आदि रसपूर्ण पथ्य तीन-तीन घन्टोंपर खूब थोड़ा-थोड़ा करके खिलाना उचित है। रोगीको ठीक समयसे खाना देना जरूरी है। बुखार और तकलीफ छूट जाने पर ऊपरके लिखे पथ्यके साथ धीरे-धीरे भातका मांड़, धानके लावाका मांड़ दूध, तरह-तरह के रसयुक्त फल और उसके बाद अच्छे हो जानेपर (during convalescence) दूध, भात, हरी शाक-सब्जियां आदि देना ही उचित है। अच्छे हो जानेपर खाने-पीनेके मामलेमें खूब होशियारी रखना जरूरी है। प्रतिदिन थोड़ा फल अवश्य खाना चाहिये। नारंगी, नींबू, बिजोरा नीबू, खजूर, सेव, अंगूर, बेल, किशमिश, खरबूजा, अनन्नास आदि फल ही उसके लिये अच्छे हैं। तरकारियोंमें परवल, नरम बैगन, कद्दू, सैम, नेनुआ, कच्चा पपीता, सहजन की डांठ और फूल, गाजर, धनिया की पत्ती और दूसरी हरी शाक-सब्जी इस रोगमें लाभदायक हैं। रोगी के लिये लहसुन बहुत फलप्रद है। क्रमशः आदत लगाकर रोज एक कच्चा लहसुन खाना उचित है। परन्तु इन सभी रोगोंमें लोगोंको शाक-सब्जीका भोजन ही करना अच्छा है। रोगीके लिये मधु भी बहुत लाभदायक है। प्रतिदिन मझले चम्मच के दो चम्मच मधु पानीके साथ या दूधके साथ

ग्रहण करना चाहिये। गठियामें शहदको एक दवा ही माना जाता है (Bodog :F. Beck, M. D.—Honey and Your Health, p. 137, New York, 1946)। सभी तरह के मांस रोगीको जहरकी तरह छोड़ देना चाहिये। चाय, काफी, कोको और शराब भी खासकर छोड़ना जरूरी है। दही, डाबका पानी, वर्फ और आइसक्रीम भी उसे छोड़ देना आवश्यक है। दोपहरको पुराने चावलका भात और रातको चक्कीकी पीसी हुई आंटेकी रोटी उसे खाना चाहिये। गठियावाले रोगीके लिये क्षारवाली चीजें (alkaline) खासकर लाभकारी हैं। इसलिये रोगीको जहाँतक हो सके खट्टा फल, फल का रस, सिझी हुई तरकारी या उसका सलाद खाना चाहिये। शाक-तरकारियाँ क्षारधर्मी हैं। यथेष्ठ परिमाण में शाक-तरकारियाँ ग्रहण करनेसे शरीरमें क्षारका संचय होता है और वह दूसरे अम्लधर्मी खाद्योंका अम्ल नष्ट करता है (Von Clunic Harvey, M. D.—Food Hygiene, p. 36, London, 1946)। यदि रोगी का वजन ज्यादा रहे तो उसे घटा कर स्वाभाविक कर लेना बहुत जरूरी है। यह याद रखना चाहिये कि ३५ वर्ष के बाद ज्यादा वजन स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये प्रधान विघ्न है (U. S A. Department of Agriculture)। रोगीको एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन रात में केवल पानी पीकर उपवास करना आवश्यक है। उसे हर रोज ४ से १० ग्लासतक पानी नीबूका रस डालकर पीना चाहिये। कम-से-कम उसे हर रोज ४ नीबू खाना जरूरी है।

तृतीय अध्याय

सांस लेनेके यंत्रोंकी बीमारी

जुकाम

[१]

कफ निकलनेका दूसरा नाम ही जुकाम है। मामूली तौरपर जी खराब होना, शिर-दर्द, शिर भारी, बार-बार छींक, नाक से पानीके समान नेटा निकलना और शरीर की गरमीके साथ सर्दी प्रकट होती है। साथ-ही-साथ आखें लाल रंगकी हो उठती हैं और सांस गरम निकलती है। बादमें जाड़ा-सा या कभी-कभी कँपकँपी-सी भी मालूम हो सकती हैं। नाड़ी भी तेज चलने लगती है और सूखी खांसी, भूख की कमी, समूचे शरीर में दर्द आदि चिह्न मौजूद होते हैं। इसके साथ प्रायः ही कब्जियत लगी ही रहती है। नाकमें खून की अधिकतासे उसकी सूराख बन्द हो जाती है और मुँह से सांस लेनी पड़ती है। नाक के सूंघने की ताकत और जीभ की स्वाद पहचानने की ताकत बहुत कुछ कम हो जाती है। बहुत बार आवाज बैठ जाती है और आदमी नाक से बोलने लगता है। दूसरे या तीसरे दिन से बलगम गाढ़ा होने लगता है और यदि कोई इलाज नहीं किया गया तो पांच-सात दिनोंतक नाक से बलगम निकलता रहता है। किसी-किसीको सर्दीके कारण से पेट चलना और दूसरे प्रकार के पेट की गड़बड़ी भी हो जाती है।

मामूली तौर से, ठंढा लगकर ही जुकाम होता है। गरम जगह से एकाएक ठंढी जगह में चले जाने, बहुत देरतक ठंढी हवा के लगने, पानी में भींगने, बहुत देर तक भींगे कपड़े पहने रहने, एकाएक पसीना रोकने, या इसी तरह के और किसी कारण से ठंढा लग जाने से ही

लोग सर्दीको बुला लेते हैं। ठंढ लगनेसे शरीरके रोओंके दरवाजे बन्द हो जाते हैं। उस समय प्रकृति इन रोमकूपके द्वारोंसे जो जहर निकालती है वह बाहर नहीं हो पाता। हमलोगोंके रोओंकी ओरसे प्रतिदिन आधे सेरसे एक सेर तक तरह-तरहके खराब पदार्थ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पसीनेके रूप में शरीरसे निकलते हैं (W. D. Halliburton—Handbook of Physiology, p. 606)। जब ठंढा लगनेके कारण यह जहर शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता, तब प्रकृति सांस लेनेकी नाली या नाककी झिल्लीमें खूनकी अधिकता या फुलावट पैदा करती है और इस प्रकार कफके रूपमें ये जहर खूनके जलीय अंशके साथ बाहर निकल जाते हैं। इसीका प्रचलित नाम सर्दी है। परन्तु जरा-सी ठंड लग जानेसे ही सर्दी हो जाय ऐसा नहीं है। यदि शरीर चंगा हो और हमलोगोंकी आंत और गुर्दा (kidney) ताकतवर हो तब, ठंढ लग जानेके कारणसे जो दूषित पदार्थ हमारे शरीरमें इकट्ठे होते हैं शरीर इन सभी रास्तोंसे उन्हें बाहर कर देती है और प्रकृतिको जुकाम पैदा करनेकी जरूरत नहीं होती। परन्तु शरीर जब तरह-तरहके कूड़ेके भारसे दबा हुआ हो, अधिक परिश्रमके कारण जब गुर्दा और आंत दुर्बल हो जाती है और अपने कामके अलावे चमड़ेके भी कामको करने से लाचार हो जाती हैं, तभी केवल हमलोगोंको सर्दी लगती है।

इस हिसाबसे जुकामके लिये ठण्ढ लग जानेको दोष देना बेकार है। शरीरके भीतरके तरह-तरहके कूड़े और जहरीले पदार्थ ही सर्दीके लिये जिम्मेदार हैं। ठण्ढ लगाना तो एक बहाना है। इसीसे ठण्ढ लग जानेसे ही सर्दी नहीं हो जाती। अधिक परिश्रम, अनिद्रा, भीड़-भाड़में जाना, भींगे घरमें रहना, सांसके साथ धूल, धुआं और बदबूदार गैसका ग्रहण करना आदि बहुत-से कारणोंसे सर्दी हो जाती है।

सर्दीमें विभिन्न कीड़े देखे जाते हैं, परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि बहुत बार हमलोग सांसके साथ सर्दीके कीड़ोंको शरीरके भीतर ले लेते हैं। परन्तु तो भी हमपर सर्दीका हमला नहीं होता।

फिर सर्दीके कीड़े हमलोगोंके नीरोग रहनेपर भी हमारी नाक आदिके भीतर रहते हैं। परन्तु इससे हमलोगोंको जरा भी नुकसान नहीं होता। जब शरीरमें बहुत-से दूषित पदार्थ इकट्ठे हो जाते है तभी पहलेसे शरीरके भीतर जो कीड़े रहते हैं वे भीतर-ही-भीतर बढ़ते हैं या बाहरसे भीतर पहुंचकर आसानीसे बढ़ने लगते हैं। इसलिये जैसे ठण्ढा लगना ही सर्दी हो जानेका कारण नहीं है, वैसे ही कीड़े भी सर्दीके असली कारण नहीं है। शरीरमें इकट्ठा दूषित विजातीय पदार्थ ही सर्दीके वास्तविक कारण हैं। सचमुच शरीरको शुद्ध कर लेनेका यह प्रकृतिका एक उपाय है। शरीरमें जब बहुत अधिक दूषित पदार्थोंका जमाव हो जाता है। तब प्रकृति तरह-तरहके उपायोंसे उसे साफ कर देना चाहती है। जब बलगमके रूपमें प्रकृति उसे निकालनेको कोशिश करती है तब हमलोग उसे जुकाम कहते है। सर्दीके समय जो छींक आती है और नेटा निकलता है, वह यही सिद्ध करता है कि प्रकृति घर साफ कर रही है।

इसलिये कफ-नाशक कोई दवा खाकर नेटाको निकालनेसे कभी रोकना नहीं चाहिये। घरमें मैला जमा हो जानेपर घरकी मोरीको बन्द कर देना जैसा खराब है, सर्दी लगनेपर प्रकृतिकी कोशिशसे पैदा हुआ नेटाके इस बहावको बन्द कर देना भी वैसा ही है। कफ मारनेवाली दवाएँ खाकर, हो सकता है कि सर्दीको जोर कर दबा दिया जा सके, परन्तु इससे बीमारीकी जड़ दूर नहीं होती। दवाके जोरसे कुछ दिनतक वह चपी रह जाय, यह हो सकता है, पर इसके बाद जो आसान था वही मुश्किल होकर या और दूसरी तरह सौगुना भयानक होकर, किसी मुश्किल रोगमें बदलकर फिर दिखाई देता है।

परन्तु इसी कारण सर्दीको छोड़ देना नहीं चाहिये। सर्दीको मामूली तौरसे जैसा मामूली रोग समझा जाता है, सचमुच वह वैसा मामूली नहीं है। यह आता है बहुत आसानीसे, परन्तु बहुत जल्दी ही चला नहीं जाता। सर्दीका यदि तुरन्त इलाज नहीं किया जाय तो करीब-

करीब हमेशा यह उस अंगको रुग्ण बनाकर जाता है जिस अंगमें हमला हुआ था। चाहे जिस अंगपर सर्दीका हमला हो एक बार सर्दीमें पड़ जानेके बाद उस अंगमें फिर सर्दी हो जानेका डर लगा ही रहता है। परन्तु इससे भी अधिक डरनेकी बात इसमें है कि सर्दी किसी रोगके हिसाबसे न आकर और ही किसी मुश्किल रोगके उपसर्गकी तरह आता है। बहुत बार यह न्यूमोनिया, प्लूरिसी, यक्ष्मा, गठिया या पुरानी सर्दीका अग्रदूत बनकर आता है।

[२]

इसलिये ठंड लग जानेपर कुछ ऐसा करना चाहिये, जिससे यह टूट जाय। इस विशेष उद्देश्यकी पूर्ति होती है गरम पैर-स्नान (hot foot bath) के द्वारा। जभी ठंड लग जाय या ठंड लग जानेके कारण शरीर कुछ अस्वस्थ-सा अनुभव होने लगे और यह समझमें आये कि किसी बीमारीका हमला होनेवाला हैं तभी बिना देर किये २० मिनटके लिये एक बार गरम फुट-बाथ लेना चाहिये (William Bierman, M.D., and Sidney Licht, M.D.,—Physical Medicine in General Practice. p. 36 New York 1952)। फूट-बाथ लेनेके पहले एक ग्लास गरम जल पीना जरूरी है। ऐसा करनेसे जो पसीना चलने लगता है उससे ठंढ टूट जाती है और कोई नई बीमारीका तुरन्त ही होनेवाला हमला रुक जाता है। यदि फूट-बाथ देना संभव न हो तो तुरन्त आग जलाकर दोनों हाथ और दोनों पैर अच्छी तरहसे सेंककर गरम कर लेना उचित हैं। ऐसा करनेसे ठंडसे बिगड़ा हुआ शरीरका हर एक यंत्र फिर ठीक हो जाता है और ठंढ टूट जाती है। इसलिये ठंड लगनेके फलस्वरूप जो कोई बीमारी होनेकी आशंका होती हैं उसका होना असंभव हो जाता हैं।

परन्तु सर्दी जब शुरू हो जाय और नाक बहने लगे तब हाथ-पैर सेंकना उचित नहीं है। सेंकनेसे भी कोई लाभ नहीं होता। उस समय थोड़ी भी देरी न करके एकसे डेढ़ घंटेके लिये एक बार छातीकी लपेट

चढ़ानी चाहिये। कुछ देर तक पट्टी चढ़ी रहनेसे उसके नीचे एक तरहकी गरमी पैदा हो जाती है। इसके फलस्वरूप रोओंके दरवाजे खुल जाते हैं और शरीरकी जहरीली चीजें इसी रास्ते होकर विदा हो जाती हैं। इसके बाद प्रकृतिको दूसरे किसी टेढ़े रास्तेसे सर्दीके विषको बाहर निकालनेकी जरूरत नहीं पड़ती और अपने आप उसकी मौत हो जाती है। इसलिये सर्दीको आराम करनेमें छातीकी पट्टीसे बढ़कर और दूसरा उपाय नहीं है। परन्तु इसके द्वारा केवल सर्दी ही आराम नहीं होता सर्दीका बुखार, इनफ्लूएंजा, ब्रंकाइटिस, न्यूमोनिया और यक्ष्मा आदि रोगोंका भी यही खास इलाज है (F. M. Rossiter, M.D.—The Practical Guide to Health, p. 212)।

छातीकी सहज लपेट

छातीकी लपेट मामूली तौरसे छातीसे लेकर दोनों कंधोंतक फैली हुई होती है। परन्तु बालक, बूढे और कमजोर रोगीको केवल छातीके ऊपर देनेसे भी काम चल जाता है। इसको सहज छातीकी लपेट कहते हैं।

परन्तु सर्दीके समय छाती की लपेट लेनेसे पहले नीबूके रसके साथ गरम पानीका एक बार डूश लेना आवश्यक है। कारण यह है कि बहुत-सी अवस्थाओंमें ठंड न लगकर केवल पेटके गोलमालसे ही सर्दी हो जाती है। यदि एक बार छातीकी पट्टी लेनेसे सर्दी न जाय तब समझना होगा कि पेटमें जरूर खराबी है। तब दो-तीन दिनों तक नीबूके रसके साथ डूश लेकर और सारी रातके लिये भींगी कमरपट्टी बांधकर (wet girdle) दूसरे दिन एक बार और छातीकी लपेट

चढ़ानी चाहिये। परन्तु डूस लेकर छातीपर घंटे भरके लिये सारी लपेट चढ़नेके बाद भी सर्दी न जाय ऐसा शायद ही कभी होता है।

यह सदा याद रखना चाहिये कि खूनका स्रोत विषैला न हो तो कभी सर्दी नहीं हो सकती। इसलिये सर्दी लगते ही शरीरको सभी तरहकी खराबीसे दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये। पहले ही नीबूके रसके साथ ढेरसा पानी पीना जरूरी है। पहले शीत और कँपकँपीके समय गरम पानी पीनेके बाद ऐसा पानी पीना चाहिये जो न गरम हो और न ठंढा। ढेरसा गरम पानी पीकर शरीरका जहर निकाल देनेके बाद शरीर भी बहुत हल्का हो जाता है पानीके साथ हमेशा नीबूका रस लेना चाहिये।

रोगीके शिरको दिनमें तीन बार धोकर उसके समूचे शरीरको ठंढे पानीमें भिगोकर निचोड़े हुए गमछेके द्वारा पोंछ देना भी उचित है। नींदसे उठनेके समय, सोनेके पहले और दोपहरमें ऐसा करना चाहिये। परन्तु रोगीका जाड़ा और कँपकँपीका वेग छूट जाय तभी ऐसा करना उचित है। शरीरपर ठंढे जलके प्रयोगसे थोड़ी देरके लिये एक बार शरीरके चमड़ेके सिकुड़ जानेपर भी, इसके फलस्वरूप रोमकूप फिर खुल जाते हैं। इस प्रतिक्रियाको पूरा करनेके अभिप्रायसे शरीरको भिगानेके बाद समूचे शरीरको अच्छी तरहसे सूखे गमछेसे पोंछ देना चाहिये और फिर बिछावनपर पड़कर ओढ़ना ओढ़ या गरम कपड़े लगाकर शरीरको फिरसे गरम कर लेना चाहिये। शरीरको पोंछ लेनेके बाद हाथोंसे रगड़-रगड़कर गरम कर लिया जाय तो और भी अच्छा हो। रोग आरम्भ होनेके साथ ही रोगीको बिछौनेपर रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिये। यदि सर्दीके साथ ज्वर रहे तब ऐसा करना बाध्यतामूलक है। इससे रोगी बहुत जल्दी आरोग्यलाभ करता है तथा तरह-तरहके नवीन उपसर्ग उपस्थित नहीं हो सकते हैं (Howard F. Conn. M. D.—Current Therapy, p. 8.) London, 1954)। ज्वर आरोग्य होनेके बाद २४ घंटा नहीं टल जानेसे कभी

भी रोगीको कामकाज पर नहीं जाना चाहिये। परन्तु घरमें ऐसी जगहपर रहना चाहिये जहां खुली हवा आती जाती हो। सर्दी दूर हो जानेपर रोगीको जहांतक हो सके बाहरकी खुली हवामें रहना चाहिये या बरामदेमें सोना चाहिये। ऐसा न किया जा सके तो सदा खिड़की और जंगलोंको खोलकर सोना जरूरी है। केवल खुली हवामें रहनेसे ही थोड़े दिनोंमें पुरानी सर्दी अच्छी हो जाती है।

जो पुरानी सर्दीके रोगी हों वे यदि रोज खुली हवामें रहें और सांसकी कसरतका अभ्यास कर लें तो उनको बड़ा लाभ हो। इस कसरतसे केवल फेफड़ा ही मजबूत होता हो यह बात नहीं इससे हवाको जो आक्सीजन मिलती है वह शरीरके भीतर इकट्ठे विकारको ही जलाकर खाक कर देती है। इसलिये सर्दीसे छुटकारा पानेके लिये एक विशेष प्राकृतिक उपाय है (Milton Powell, F. N. C. A—How to Cure Catarrh and Cold, pp. 19-20)।

जिसे बराबर ही सर्दी होती हो उसे कुछ अधिक दिनोंतक इलाज करना चाहिये। पुरानी सर्दी हमेशा शरीरकी बिगड़ी हुई हालतके साथ बनी ही रहती है। ऐसे आदमियोंकी नाक, सांसकी नाली या फेफड़ोंसे कफ निकला करता है। परन्तु शरीरका जहर ही इन सभी कमजोर हिस्सोंसे बाहर निकलता है।

इसलिये पुरानी सर्दीमें शरीरको पहले ही विकारसे छुड़ाना चाहिये। यह उद्देश्य तो कुछ ही दिनोंमें प्राप्त हो जाता है बीच-बीचमें डूस, हिप-बाथ, भींगी कमर-पट्टी, स्टीम-बाथ, भींगी चादरका पैक और छातीकी लपेट आदि लेकर इसके साथ-साथ भोजन-सुधार, उपवास और नीबूके रसके साथ बहुत-सा पानी भी पीना चाहिये।

सहज मामूली कारणसे ही जिसकी नाक बहने लगती में, उन्हें कुछ दिनोंतक नाकके ऊपर गरम-ठंढा लेना उचित है। जब नाक बहती रहे तब तीन-चार दिनोंतक दिनभरमें एक या दो बार करके लेना

चाहिये। दो मिनट गरम सेंक देकर दो मिनट भींगे गमछेसे पोंछकर, एक ही समय तीन बार ऐसा किया जा सकता है।

साधारणतया इन सब उपायोंसे ही सर्दी अच्छी तरहसे छूट जाती है, किन्तु सर्दीको छुड़ानेकी अपेक्षा तो यह है कि सर्दी न हो इसीका उपाय करना। Prevention is better than cure—रोग छुड़ानेकी अपेक्षा रोग न होने पावे वही करना ज्यादा अच्छा है। सर्दी होनेसे पहले प्रायः ंड लगकर यह शुरू होती हैं। सर्दी होना जैसे खराब है ठंड लग जाना भी वैसे ही डरकी बात है।

डा० हेवार्डका कहना है कि आदमीको जितनी बीमारियां होती हैं उनकी आधी ठंढ लगनेके कारणसे ही होती हैं। बहुत अवसरोंपर शिर-दर्द, सर्दी, बुखार, पेट चलना, खूनके दस्त, नाकके घाव, कान पक जाना, रज-निरोध,, कुकुरखांसी, आंख उठना, कब्जियत, आवाजका बैठ जाना, दांतका दर्द, गलेके भीतर घाव, लकवा, बहरापन, सांसकी नालीकी सूजन, न्यूमोनिया, दमा, शोथ, गर्भस्राव, गठिया, विसर्प रोग स्नायुका दर्द, केहुनीकी सूजन, यकृतमें सूजन, बहुसूत्र, प्लूरिसी और यक्ष्मा आदि बीमारियोंको उभाड़नेवाला कारण ठंढ लगना ही है।

जिन लोगोंको मामूली बातोंमें ही ठंढ लग जाती है, उन्हें उस समयके लिये इसको दूर कर निश्चित हो जाना नहीं चाहिये। उन्हें समझना चाहिये कि उनके शरीरके भीतर ऐसी कुछ चीज है जिसके रहनेके कारण ही मामूली बातोंमें भी सर्दी लग जाना संभव होता है। इसलिये बीच-बीचमें स्टीम-बाथ आदि लेकर जल्दी ही शरीरसे खराबियोंको निकालनेका इन्तजाम करना चाहिये।

इसके अलावे उन्हें ऐसा भी उपाय करना चाहिये कि जिससे शरीरमें ठंढा न लगे। शरीरको साफ कर लेनेके बाद, ठंढसे कोई नुकशान न हो ऐसा कर लेना ही सर्दी छुड़ानेका उपाय है।

परन्तु ठंढ लगनेके डरसे हमेशा शरीरको गरम कपड़ेसे ढके

रहना ही ठंडसे आत्मरक्षा करनेका उपाय नहीं है। जो लोग हमेशा गरम कपड़े चढ़ाये रखते हैं, बाहर जानेके समय गलेमें गुलूबन्द लपेटते हैं, हमेशा घरके भीतर ही रहते हैं, ठंड लगनेके डरसे सदा ताजी हवासे बचते चलते हैं, वे ही लोग सर्दीसे अधिक परेशान होते हैं। बहुत आदमी जाड़े भर गरम पानी पीते है और गरम पानीसे नहाते भी हैं। इन आदमियोंकी सर्दी जिन्दगी भर कभी नहीं छूटती। सर्दी न होने पावे इसका उपाय ठंडसे जान बचाना नहीं है, धीरे धीरे शरीरको ठंडक बरदाश्त करनेका अभ्यास डालना है। हमलोंगोके मुँहमें तो हमेशा ठंड लगती है, पर हम उससे डरते नहीं। इसका कारण यही है कि बार-बार ठंढ लग-लगकर वह इतना अभ्यस्त हो गया है कि उसे शीतका अनुभव नहीं होता। अभ्यास डालनेपर समूचे शरीरको भी धीरे-धीरे ऐसा ही बनाया जा सकता है। इसलिये वायु-स्नान (air-bath) करना बहुत लाभदायक हे। ऐसे समय हमेशा सूखी मालिश (dry friction) लेना उचित है।

[३]

सर्दी होनेपर पहले २४ घंटे केवल नीबूके रसके साथ पानी पीना उचित है। उसके बाद फलोंका रस, फल, तरकारी का शोरबा, उबाली हुई तरकारियां और मधुके साथ पानी पीकर रहना चाहिये। पानीके साथ शहद लेनेसे ऊपरकी सांसके यंत्रसे कफ और किसी दवाकी अपेक्षा जल्दीसे निकल जाती है (F. E. B. Bilz—The Natural Method of Healing, p. 644)। कोई रोग होते ही समझना चाहिये कि प्रकृति शरीरके जहरको साफ करनेमें लग गयी है। उस समय दो-एक दिन उपवास रखनेसे या हलका खाना खानेसे, प्रकृति शरीरके जहरको निकाल बाहर करनेका अवसर पा जाती है।

पुरानी सर्दी रहे तो हर रोज भोजनके पश्चात् थोड़ा कॉड लिवर

ऑयल खाना अच्छा है। किन्तु वर्तमान समयमें कॉड लिवर ऑयलसे अधिक हेलीवुड लिवर ऑयलके ऊपर ज्यादा जोर दिया जाता है। इसमें कॉड लिवर आयलसे तीससे तीनसौ गुणा अधिक विटामिन ए रहता है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P., and William Phillips, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 753, London, 1953)। रोगोके लिये विभिन्न मछलियोंका लीवर भी यथेष्ट रूपमें ग्रहण करना कर्तव्य है कॉड लीवर ऑयलमें जितना विटामिन ए है उसका १६० गुणा अधिक है आइडर मछलीके लीवर के तेलमें। हिल्सा आदि मछलोके लीवरके तेलमें भी कॉड लीवर ऑयलसे कई गुणा अधिक विटामिन ए रहता है (Corporation of Calcutta—Food Values of Common Indian Food-stuff, pp. 12-13, Calcutta, 1943)।

कई ऐसी चीजें हैं जो स्वभावसे ही खूब ठंढी होती हैं —जैसे बर्फ, डाबका पानी, दही, कच्ची हल्दी आदि। ये सभी चीजें नई सर्दीमें बिल्कुल छोड़ देनी चाहिये। पुरानी सर्दीमें भी ये चीजें बहुत होशियारीके साथ ही खाई जानी चाहिये।

कुछ लोग जानते हैं कि बर्फका तासीर गरम है, इसलिये बर्फ खानेमें कोई हर्ज नहीं होना चाहिये। परन्तु दुःखकी बात यह है कि सर्दीके रोगियोंकी बीमारीको रोकनेकी ताकत (vital resistance) इतनी कम हो जाती है कि बर्फ पीनेके बाद उनके शरीरमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती अर्थात् शरीरमें फिर गरमी आती ही नहीं। इसलिये बर्फ खानेसे और भी सर्दी बढ़ जाती है।

पुरानी सर्दीमें ऐसा कुछ भी खाना नहीं चाहिये जिससे पेट खराब हो या कब्जियत पैदा हो। इसलिये गरम मसाला, या ज्यादे मसाला, सभी तरहकी भूजी हुई चीजें, हलवाईकी दूकानकी सारी चीजें, पुलाव, मांस, अधिक तेलकी चीजें, घी, मिठाई, खीर, असमयका खाना, जब-

सब खा लेना, जल्दी जल्दी खा लेना, खानेके बाद ही मिहनतके काम करना, या सोना आदि छोड़ देना आवश्यक है। इसके साथ ही धूल, धुआँ सभी तरहकी बदबू, नरम जगहोंमें रहना, रजाई, कम्बल आदि ओढ़कर नाक ढककर सोनेका आदत, भीड़-भाड़की जगह अधिक देर तक रहना आदि छोड़ना चाहिये।

खांसी

[Cough]

[१]

छातीमें हवाके घुसने से कभी-कभी सांसकी नालीका दरवाजा (glottis) बन्द हो जानेके कारण वह हवा भीतर ही रुक जाती है और उसके कारण भीतरमें एक तरहकी बेचैनी पैदा हो जाता है। तब सांसकी नलीका दरवाजा (larynx) खुल जाता है और रुकी हुई हवा आवाज करती हुई बाहर निकलती है। इसीको खाँसी कहते हैं। वास्तवमें खांसी कोई बीमारी नहीं है। यह तो केवल दूसरी बीमारीका लक्षण है। हमारे शरीरपर किसी बाहरी शत्रुने आक्रमण किया है यह बतानेको खांसी प्रकृतिकी एक बोली है। It is one of the cardinal defences of the lungs—यह फेफड़ेकी रक्षामूलक व्यवस्था है (Geoffrey Evans, M.A., F.R.C.P.—Medical Treatment, p. 369, London, 1951) या यह प्रकृतिका danger signal— खतरेकी घंटी है।

जब छातीके भीतर कफ रुक जाता है और वह प्राकृतिक रूपसे बाहर नहीं हो सकता तब प्रकृति खांसी पैदा करके उसे निकालनेकी कोशिश करती है। यदि वह कफ छातीके भीतर रह जाय तब उससे जीवन ही विपन्न हो सकता है। इसीलिये शरीरकी रक्षाके लिये ही प्रकृति खांसी

उत्पन्न करती है। छातीमें कफके रुक जानेसे जो बेचैनी होती है वही बहुत बार खांसी पैदा करती है। जब खांसीके साथ जमा हुआ कफ बाहर निकल जाता है तभी रोगीको बेचैनी दूर होती है और उसे आराम मालूम होता है। इसलिये खांसीको कभी जोर करके बन्द नहीं करना चाहिये। बहुत आदमी विभिन्न औषधियाँ (cough syrup) सेवन करके खांसी दबा देते हैं और ऐसे दब जानेसे बहुत सन्तोष लाभ करते हैं। किंतु इसके बाद एक दिन दीखता है कि पहले जो बहुत सहज था वही दुरारोग्य फेफड़ेके रोगमें परिणत हो गया है (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 3, p. 27. London, 1950)।

खांसी मामूली तरहसे दो तरहकी होती है—प्रत्यक्ष खांसी (direct cough) और अप्रत्यक्ष खांसी (Indirect cough)। छातीके यंत्रोंके कारण जो खांसी होती है उसे प्रत्यक्ष खांसी कहते हैं। प्रत्यक्ष खांसी मामूली तौरसे कंठकी नाली (larynx), सांसकी नाली (bronical tubes), फेफड़ा और फुसफुसके पर्दे (plura) की बीमारी से पैदा होती है और यक्ष्मा, न्यूमोनिया, प्लूरिसी, पुराना ब्रंकाइटिस, दमा और [illegible] मौजूद रहती है। सांसके यंत्रोंको छोड़कर और किसी यंत्रकी बीमारीके कारण खांसी होनेसे उसे अप्रत्यक्ष खांसी कहा जाता है। यह अप्रत्यक्ष खांसी कान, बड़ी धमनी और शिरा (blood vessel), हृदय, पाकस्थली, यकृत, रोढ़, बच्चे दानी या छोटी आँतसे कीड़े, छोटी माता, गठिया, वातव्याधि और स्नायुकी बीमारियोंसे हो सकती है। यदि बिछावनसे उठनेके पहले सवेरेके समय खांसी उठे, तब उसे बहुत भयके साथ देखना चाहिये और खूब जल्दी उसका इलाज करना चाहिये। क्योंकि बहुत बार ऐसी खांसी यक्ष्माके रोगीकी पहली सूचना होती है। जो खांसी हर साल शीतकालमें हो वह प्रायः पुराने ब्रंकाइटिस (chronic bronchitis) से पैदा होती है।

इसलिये एक प्रसिद्ध डाक्टरका कहना है कि, कोई भी मूर्ख खांसीको दबा दे सकता है, परन्तु उससे जो नुकसान होता है उसको छुड़ाना किसी होशियार आदमीका ही काम है। जबतक खांसीमें कुछ निकल जाय तबतक उससे लाभ ही होता है। इसलिये इस तरहकी खाँसीको डाक्टरी भाषामें उपकारी खांसी (useful cough) कहा जाता है। परन्तु जब खाँसीमें कुछ भी न निकले तभी यह शरीरको नुकसान पहुंचानेवाली हो जाती है। उसी समय ऐसी खांसीके कारणको ढूँढकर उसे दूर करना पड़ता है (Alfred Martinet, M.D.—Clinical Therapeutics, p. 823)।

खांसी सदा शरीरको एक विशेष अवस्थाकी प्रतिक्रियाकी (reflex act) उत्तेजनाके कारण होती है। इसलिये इस बीमारीके इलाजमें पहले ही यह तय करना जरूरी है कि किसी विशेष अवस्थाके कारण खांसी हो रही है और उसके अनुसार इसका इलाज करना उचित है।

खांसी को एक स्थानीय बीमारी (local disease) समझना ठीक नहीं है। जब खांसी किसी भी तरह छूटती न हो, तब तो और भी समझना चाहिये कि यह एक स्थानीय बीमारी नहीं है। वास्तवमें यह एक स्थानीय रोग है भी नहीं। और-और रोगोंकी तरह ही यह भी समूचे शरीरकी बीमारी है (constitutional disease) और इसका वास्तविक कारण खूनके भीतर छिपा हुआ होता है। इसीसे जिनको खांसीका रोग है, वह यदि भारी खाना खाये, देरसे खाये, थका हुआ होनेपर आराम करनेके पहले खा ले, अधिक परिश्रम करे, बंद जगहमें रहे और रातसे पूरी नींद न सोये तो उसपर खाँसीका आक्रमण होता है।

इसीसे शरीरके अलग-अलग यंत्रोंके इलाज करनेके साथ-साथ, खाँसीके असली कारणको दूर करनेके लिये, सारे शरीरका इलाज करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही खांसी स्थायी रूपसे छूट सकती है।

[२]

अधिकांश खांसी छातीके दोषसे ही पैदा होती है। जब सूखी खांसी हो तब स्नानके अन्तमें शरीर पोंछनेके बाद ही रोगीका गला, छाती और पीठ खाली सूखे हाथों से रगड़-रगड़कर लाल और गरम कर लेना ही इसका खास इलाज है। केवल इसीसे सूखी खांसी छूट जा सकती है। जो रोगी नहानेसे डरे और केवल भींगे गमछेसे शरीर पोंछ ले, उसे शरीर पोंछनेके बाद ही गला, छाती और पीठको इस तरह रगड़कर गरम कर लेना उचित है। रोगी सबल हो तो स्वयं ही यह काम कर ले सकता है।

कभी-कभी खांसते खांसते आदमी बेदम हो जाता है, कभी-कभी बहुत देरतक जारी रहनेपर भी खांसी बन्द होना नहीं चाहती या कभी-कभी ऐसा होता है कि पल-पलपर खांसी उठती है। इस हालतमें दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे गला, छाती और पीठको मामूली-सा भिगाकर और बादमें रगड़कर लाल और गरम कर देनेसे उसी समय तुरन्त ही सूखी खांसीसे छुटकारा मिलता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि छातीमें कफ थोड़ा या बहुत जमा रहता है परन्तु विना बहुत खांसे यह निकलता नहीं है। इस हालतमें तुरन्त डेढ़ घंटेके लिये एक छातीकी लपेटका प्रयोग करना आवश्यक है। इससे कफ पतला हो जाता है और अपने आप आसानीसे निकलकर खांसीको कम कर देता है। छातीको लपेट इस्तेमाल करनेके पहले यह देखना चाहिये कि छाती गरम है या नहीं। यदि वह गरम नहीं हो तो गरम पानीका थैला या बोतलके द्वारा छाती और पीठको गरम करके उसके बाद. छातीकी लपेट चढ़ानी चाहिये। यदि छातीमें दर्द भी हो तब दर्दकी जगहपर तापबहुल गरम-ठंढेका इस्तेमाल करके उसके बाद छातीकी लपेट बांधनी चाहिये।

इसके अलावे और कई उपाय हैं जो खांसीमें लाभदायक हैं। न

अधिक गरम और न अधिक ठंढा या कुछ-कुछ गरम पानीके नलके नीचे बैठकर छाती और पीठको खाली हाथों रगड़नेसे इसमें बहुत लाभ होता है। माथा धोकर और मुँह बन्द कर दस मिनटोंके लिये नाकसे भाप (steam) लेना भी खांसीमें बहुत लाभदायक होता है। भाफ लेनेके बाद समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ लेना जरूरी है। जब गलेके किसी दोषसे खांसी हो तब गलेके ऊपर गरम-ठंढा लेनेसे खांसी जल्दी कम हो जाती है। गरम-ठंढा एक ही साथ तीन बार और दिनमें दो बार करना चाहिये। गरमसे शुरू करके ठंढे पानीसे खतम करना उचित है। गरम और ठंढा दोनों ही हर बार दो मिनटोंके लिये लेना चाहिये। खांसी रोकनेके लिये सबसे आवश्यक है इच्छा-शक्तिका प्रयोग करना। बहुत-से लोग गलेमें मामूली सुरसुरी मालूम होते ही एक बार खांस लेंगे। इससे आभ्यन्तर यंत्रोंके भीतर खांसनेका एक अभ्यास-सा हो जाता है। स्वकल्प-भावनासे इस अभ्यासको जय करना चाहिये। कई दिनोंतक इस तरह खांसीको दबानेकी कोशिश की जाय तो खांसीका वेग कम हो जाता है। बहुत अवस्थाओंमें खांसीके पश्चात् शरीरकी एक उत्तेजित अवस्था वर्तमान रहती है। इस अवस्थामें शवासन ग्रहण करनेसे एवं शरीरको शिथिल बना लेनेसे जल्दी लाभ होता है।

तन्दुरुस्तीके मामूली कायदोंको मानकर उसपर चलना रोगीके लिये खास तौरसे जरूरी है। हरदिन सुबह और शामको खुली हवामें टहलकर उसे साफ हवा लेना चाहिये। उसके लिये उचित है कि जहांतक हो सके वह घरसे बाहर रहे। रातमें भी उसे कमरेको खिड़कियोंको खोलकर सोना उचित है। रोगीकी पोशाक खूब पतली नहीं होनी चाहिये। परन्तु वह खूब मोटी और गरम हो इसकी भी जरूरत नहीं है। जिसमें गरमी या सर्दीसे कोई तकलीफ न हो. रोगीको ऐसे कपड़े पहनने चाहिये। भीड़-भाड़की जगहमें जाना, अनियमित खान-पान, सोना और अत्यधिक परिश्रम आदि भी खांसीके रोगीको विशेष

रूपसे परित्याग कर देना चाहिये।

साधारण अवस्थामें रोगीको दिनमें दो बार स्नान करना आवश्यक है। रातमें सोनेसे पहले शिरको धोकर समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना भी कर्तव्य है। यदि रोगीके लिये स्नान करना संभव न हो तब दिनमें तीन बार शिरको धोकर तौलिया-स्नान ही कर लेना उचित है।

जब ब्रंकाइटिस, यक्ष्मा, प्लुरिसी आदि बीमारियोंके कारणसे खांसी पैदा हो तब मूल कारणपर सदा ध्यान रखना चाहिये।

[३]

इस बीमारीमें पथ्यके बारेमें चौकसी रखनी जरूरी हैं। इसमें खासकर ऐसा हलका भोजन करना चाहिये कि वह आसानीसे पच जाय। इसके अलावे रोज कुछ-न-कुछ ऐसी चीजें खानी चाहिये जिससे पेट साफ हो जाया करे। इसलिये दो-चार दिन बेल, पका अमरूद, नारंगी, किशमिश, सेव एवं दूध-मुनक्का (उबाला हुआ) आदि खाना आवश्यक है। पेट साफ रखनेके लिये बीच बीचमें नीबूके रसके साथ डूस लेना भी जरूरी है। रोगीको नीबूके रसके साथ बहुत-सा पानी पीना चाहिये। खांसीके रोगीके लिये ठण्डा पानी पीना बहुत ही लाभदायक है। पानीके साथ थोड़ा मधू मिलाकर उसे चूस-चूसकर (sip) पीनेसे अधिक लाभ होता है। जब खांसीके साथ कुछ भी बाहर न निकले, उस समय इसी तरह पीना ठीक है। मधु दवा नहीं है, यह तो एक श्रेष्ठ खाद्य-पदार्थ है।

ब्रंकाइटिस

[Bronchitis]

[१]

हमलोग जो सांस लेते हैं, वह नथनों, गलकोष (pharynx)

और हवाकी नाली (wind pipe) पार करके बड़ी और छोटी सांसकी नालीसे होकर फेफड़ेमें पहुँचती हैं। हवाकी नाली सीधे छाती तक जाकर जो दो हिस्सोंमें बँटकर दोनों फेफड़ोमें पहुँचती है उसे ही श्वास नाली (bronchi) कहते हैं। दाहिनी तरफकी नाली करीब एक इंच और बायी ओरकी करीब दो इंच लम्बी होती है। इनके भीतरका हिस्सा कफकी झिल्लीसे घिरा (mucous membrane) हुआ और बाहरका हिस्सा कोमलास्थि (cartila:e) से बना हुआ होता है। छोटी सांसकी नाली तो बिल्कुल ही झिलीसे भरी हुई है। जब इन मुख्य दोनों नालियोंमें झिल्लीके भीतर सूजन पैदा हो जाती हैं तब उसे ही सांसकी नालीकी सूजन या ब्रंकाइटिस कहते हैं कभी-कभी महीन-नालियोंतक यह सूजन फैल जाती हैं। तब इसे कैपिलरी ब्रंकाइटिस (capillary bronchitis) कहते हैं।

ब्रंकाइटिस पहले मामूली सर्दीके बुखारकी तरह ही प्रकट होता है। सूखी अदीर्घ कष्टप्रद खांसी, द्रुत और शब्दयुक्त जोरका श्वास, आवाजका बैठ जाना, श्वास कष्ट, गला और छातीकी हड्डीके पीछे दर्द, कोई कलेजेको दबाकर धरे रहे ऐसा मालूम होना आदि इस बीमारीके शुरूके लक्षण हैं। दो-एक दिनके बाद खांसीके साथ पहले थोड़ा फेन या कफ किन्तु तुरन्त ही ढेरसा पीवकी तरह कफ बाहर निकलता है। रोगीको सांसकी कठिनाई, गलेकी घरघरी और बुखार बहुत बढ़ जाता है। समय-समयपर बुखार बढ़कर १०४° तक पहुंच जाता है। रोगीकी जीभ सूखी और रुखड़ी पेशाब कम और हाथ पैर ठंढे रहते हैं। अच्छी तरह कफ निकलना शुरू हो जानेके बाद, मामूली तौरसे, चार-पांच दिनोंके भीतर ही तकलीफ कम हो जाती हैं। परन्तु यदि सूजन छोटी महीन नालियोंतक फैल गयी हो तो बीमारी बहुत भयंकर बन जाती है। ऐसा होनेसे बीमारीके सब लक्षण ही बढ़ जाते हैं और यदि उसे काबूमें न लाया जा सके तो इसी हालतमें कभी-कभी रोगीकी मौत भी हो जाया करती है। अतः इस बीमारीको मामूली नहीं समझना चाहिये। बूढ़े, दुर्बल और बच्चोंके लिये

तो यह बीमारी बड़ी खतरनाक है। वृद्ध लोगोंको नया ब्रंकाइटिस होनेसे सर्वदा ही वह पुराने रोगमें (chronic bronchitis) परिणत हो जाता है (John Fry, M.B., B.S., F.R.C.S—Clinical Medicine, in General Practice, p. 142, London, 1954)।

इस रोगीके थूकमें बहुत कीड़े पाये जाते हैं। परन्तु जीवाणुतत्त्ववेत्ता लोग कहते हैं कि almost any pathogenic organism may be responsible for the disease—रोगको पैदा करनेवाला किसी भी तरहका कीड़ा इस बीमारीको पैदा कर सकता है। असलमें बहुत तरहके कीड़े (streptococcus, pneumococcus, micrococcus catarrhalis, bacillus of Fridlander, influenza bacillus) इस रोगमें पाये जाते हैं। कभी इसमें एक प्रकारके कीड़े अधिक रहते हैं, कभी दूसरी तरहके कीड़े मिले-जुले रहते हैं (Maurice Davidson, M.D—A Practical Manual of Disease of the Chest, pp. 87-88)। इसका अर्थ यह हुआ कि जब शरीरके भीतर बहुत अधिक जहरीली चीजें जमा हो जाती हैं, और वे ही सांसकी नालीपर हमला करती हैं तभी इसमें सूजन पैदा होती है और ऐसे समय वहां पर कोई भी कीड़े हों उन्हें बढ़नेके लायक जमीन मिलने के कारण वे जल्दी बढ़ जाते हैं और रोगी की हालत नाजुक कर देते हैं। और ऐसा न हो तो ये सब कीड़े तो हमेशा ही आदमियोंके मुंहमें रहते हैं। परन्तु उनसे किसीको कुछ भी नुकसान नहीं होता (Encyclopaedia Medica, Vol. II, pp. 511—521)। बहुत बार तो बिना कीड़ोंके भी यह बीमारी हो जाती है। जहरीली गैस और उभारनेवाली (Irritating) धूल रसपूर्ण या कड़ी चीजें सांसकी नलोमें घुसकर यह रोग हमेशा पैदा करते हैं।

साधारणतः ठंढा लगनेवाले स्थानमें रहने, धूल या जहरीली गैस साँसके साथ भीतर खींचने आदिके कारण सांसकी नालीमें सूजन पैदा

हो जाती है। लेकिन ठंडा आदि लगनेसे ही सबको ब्रंकाइटिस होता है, ऐसी बात नहीं। जिनके शरीरमें पहले से अधिक विषाक्त पदार्थों का संचय रहता है और जिनकी सांस की नाली कमजोर होती है उन्हें ही केवल यह बीमारी होती है।

[२]

इसलिये रोगके दिखाई पड़ते ही सबसे पहले पेठ को साफ कर एकसे दो घंटेके लिये रोगीको एक छातीकी लपेठ इस्तेमाल कराना जरूरी है। यदि रोगीको बुखार हो तो एक ही घंटा काफी है।

ब्रंकाइटिस तथा न्यूमोनिया में छातीकी लपेट विशेष लाभप्रद है (American Medical Association—Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 177, Philadelphia, 1950)। छातीकी खराबोसे कोई भी रोग हुआ हो, उसमें छातोकी लपेठ लाभदायक होती है। परन्तु इस बीमारीमें बहुत होशियारीके साथ लपेट लगानेकी जरूरत है। लपेट देनेके पहले रोगीको काफी गरम पानी पिलाना और उसकी छातीपर १० मिनटके लिये गरम सेंक देकर उसके बाद गरम पानीमें भींगे हुए एक कपड़ेके टुकड़ेसे लपेट लगानी चाहिये। इस समय रोगीके शरीरको इतना गरम रहना चाहिये कि भींगा कपड़ा उससे छूनेपर उसे कष्ट न अनुभव हो। इसलिये छातीका सेंकके तुरन्त बाद ही लपेठ देनी जरूरी है। परन्तु रोगीको जब ठंडा लग रहा हो या कँपकँपी हो, तब उसे कभी लपेट नहीं लगानी चाहिये। इस अवस्थाके व्यतीत हो जानेके बाद ही केवल पट्टी देना कर्तव्य है।

लपेठ चढ़ाकर रोगीको बिछावनपर लेटा देना उचित है और उसके पैरोंके पास गरम पानीकी थैली रख देना आवश्यक है। लपेठ हटानेके समय घरका दरवाजा और खिड़की बन्द कर देना चाहिये। लपेठ खोलनेके बाद गरम पानीमें भिगोकर निचोड़ी हुई तौलिया लेकर

उसकी छाती और पीठको पोंछ, पीछे खाली हाथोंसे इन स्थानोंको रगड़-रगड़कर उन्हें गरम कर देना आवश्यक है। इस होशियारीके साथ रोगीको दिनमें दो बार लपेट दी जानी चाहिये। साधारण अवस्थामें ऐसा करनेसे ही दो दिनोंके भीतर रोगी अच्छा हो जाता है। अगर रोगीको शुष्क खांसी रहे अर्थात खांसीके साथ यथेष्ट श्लेष्मा न निकले तो बहुत गर्म जल थोड़ा-थोड़ा करके पान कराने, गर्म जलकी कुल्ली करनेसे, और दिनमें दो बार मुँह बन्द कर नासिकाके रास्तेसे वाष्प ग्रहण करनेसे विशेष लाभ होता है। किन्तु रोगीकी छातीपर थोड़ा-सा उत्ताप प्रयोग करनेके बाद छाती, पीठ और गला गीले हाथसे रगड़कर लाल और गरम कर देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। खांसने में अगर दर्द भी होता हो तो इस उपायसे वह गायब हो जाता है। रोगीके कन्धे, गले और छाती आदिको अच्छी तरहसे ढककर रखना जरूरी है। इन सब स्थानोंको कभी खुला नहीं रखना चाहिये। यदि रोगीके मुँहसे बहुत चिकना कफ निकलता हो तब उसे ढेरसा पानी पीनेको देना चाहिये। गरम सेक देकर जो छातीकी लपेट इस्तेमाल करायी जाती है उसमें भी इस तरहकी खांसीमें बहुत लाभ होता है। रोगीको तीन बार इसका इस्तेमाल करना चाहिये।

ब्रंकाइटिसमें पैरकी लपेट विशेष जरूरी है। सिर धुलाकर रोगीको दिनमें दो-तीन बार यह करना जरूरी है। प्रति बार पैरका पैक खोलनेके बाद ही सारा शरीर भींगे गमछेसे पोंछ लेना आवश्यक है। इसलिये शरीर पोंछनेसे एक घंटा पहले ही यह पैक देना चाहिये। रोगीका ज्वर कम करनेके लिये रोगीका सिर पहले धोकर दिनमें तीन बार उसका पूरा शरीर गीले गमछे से पोंछ देना चाहिये।

जो कोई रोग क्यों न हो या छातीकी जो कोई खराबी क्यों न रहे निःशंक चित्त होकर गीली तौलियासे उसका तमाम शरीर पोंछ दिया जा सकता है। इससे कोई खराबी नहीं हो सकती एवं रोगी बहुत जल्दी ही आरोग्य लाभ करता है। रोगीको पहले गर्म पानीसे, उसके बाद

गुनगुने पानीसे तथा अन्तमें शीतल जलसे ही शरीर पोंछ देना जरूरी है।

रोगीको छातीमें खराबी होने से तौलिया-स्नानके समय उनके समूचे शरीरको उघारा नहीं जाता है। इस स्नानके समय हर बार उसके पैरोंपर एक गरम पानी का थैला या बोतल रखकर तब उसका शरीर पोंछना चाहिये। तौलिया-स्नान आदि कराके रोगीके शरीरको सूखे कपड़े से रगड़कर गरम कर देना जरूरी है।

ज्वर आरोग्य होने के बाद भी रोगीको बहुत होशियारीसे रहना आवश्यक है। जहाँतक संभव हो उसे अधिक समय घरसे बाहर बिताना चाहिये। खुली हवामें रहकर काम करनेके कारण जिनकी श्वासकी नली खूब मजबूत होती है वे शायद ही कभी इस रोगके शिकार होते हैं। रोग आरोग्यके बाद खुली हवा में प्राणायाम ग्रहण करनेसे बहुत लाभ होता है ठंढे जलमें स्नान करनेसे शरीरकी रोग-प्रतिरोध क्षमता वृद्धि होती हैं। इसलिये रोगीको क्रमशः शीतल जलमें अभ्यस्त होना चाहिये। रोगीका गृह ठंढा रहेगा किन्तु कभी नमी नहीं रहेगी। उसे कभी एकाएक ठंढा लगाना उचित नहीं है किन्तु इस विचारसे हमेशा गर्म कपड़े लादे रखना भी ठीक नहीं है। अच्छा हो जाने पर भी दो-तीन मासतक बीच-बीचमें कोई पसीना निकालनेवाला स्नान (sweating bath) लेकर शरीर के जहरोंको बाहर निकालते रहना चाहिये। मोटे तौरपर इस रोगका चिकित्सा सर्दीके अनुरूप है।

इस रोगमें कभी कोई दवा नहीं लेनी चाहिये क्योंकि अगर रोग मृदु हो तब हमेशा ही अपने आप निर्दोष रूप से मिट जाता है (John S. Richardson, M. A., M D., F. R. C. P.—The Practice of Medicine, p, 71, London, 1956)।

[२]

मामूली बुखारमें जो पथ्य दिया जाता है वही पथ्य इस बीमारीमें भी रोगीको देना चाहिये। बीमारीके शुरूमें ही नीबूके रसके साथ ढेरसा

पानी रोगीको पिलाना उचित है। यदि उसे शीत और कँपकँपी हो तो गरम पानी और पीछे गुनगुनना पानी रोगीको देना चाहिये। रोग० डाबका पानी, बर्फका पानी और दही नहीं खाना चाहिये।

ज्वरके शुरूसे ज्वरके आरोग्य होने के बाद चौदह या पन्द्रह रोजतक रोगीको शय्यामें सुलाकर रखना चाहिये। यही चिकित्साकी एक प्रधान बात है (Frederick Tice, M. D. F. A. C. P,—Practice of Medicine. Vol. V. p. 408)।

न्यूमोनिया

(Pneumonia)

(१)

फेफड़ेकी सूजनका नाम न्यूमोनिया है। इस बीमारीमें कभी एक फेफड़ेमें और कभी-कभी दोनोंमें सूजन पकड़ती है। एक तरफके फेफड़ेपर आक्रमन होनेसे प्रायः दाहिने फेफड़ेपर ही आक्रमन होता है। उस समय उसे एक तरफका न्यूमोनिया (single pneumonia) कहते हैं। दोनों फेफड़ोंमें पकड़े तो उसे डबल न्यूमोनिया (double pneumonia) कहते हैं। साधारण तौरसे फेफड़ेके नीचेके हिस्सेमें ही सूजन पैदा होती है, परन्तु कभी-कभी यह एक तरफके समूचे फेफड़े और कभी-कभी दोनोंमें फैल जाती है। बच्चा, बुढ़ा, कमजोर और शराबी लोगोंके लिये यह बहुत भयानक बीमारी है

न्यूमोनिया बुखार की साधारण तौरसे तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली अवस्थामें एकाएक कँपकँपी लेकर बुखार आता है। पहले दिन ही बुखार १०३° से १०५° तक होता है। सांसें बहुत तेज चलने लगती हैं—मिनटमें १८ की जगहपर ३० और कभी-कभी ५० बारतक सांसें चलने लगती हैं। कभी—कभी सांसमें तकलीफ भी होती है। पर्याप्त आक्सीजनकी कमीके कारणसे दोनों ओठ और मुँह नीले हो जाते हैं। साथ-ही-साथ नाड़ीकी गति बढ़ जाती है वह १०० से १३० बार तक चलने लगती है।

चौबीस घंटोंके बाद, या कभी-कभी उससे पहले ही रोगीकी छातीकी एक बगल या दोनों बगलोंमें तेज दर्द शुरू हो जाता है। हिचकी और खांसीके समय दर्द बड़ा तेज हो जाता है। एकाएक हमला' तेज बुखार, तेज सांस और पंजरीमें दर्द होनेसे सहजमें ही न्यूमोनिया पहचानमें आ जाता है। खांसी भी एक दूसरा प्राथमिक लक्षण है। खूब प्रबल खाँसी भी टूट-टूट कर बार-बार आती है और इसमें मामूली साफ कफ निकलता है। लेकिन जल्दी ही खाँसीके साथ लोहेके जंगके रंगका खूब गाढ़ा और खूब जमा कफ ढेरका ढेर निकलने लगता है। बूढ़े लोगोंके लिये यही रंगीन कफ ब्रोंकाइटिससे न्यूमोनिया का भेद बताने का विशेष लक्षण है। इन सभी लक्षणोंके साथ साथ रोगीको कभी शिरमें दर्द और कभी-कभी मस्तिष्क विकार आकर उपस्थित होता है। यह अवस्था कुछ घंटोंसे लेकर तीन दिनोंतक रह सकती है। उसके बाद दूसरी अवस्था आती है और फेफड़ा कड़ा तौरपर जम जाता है। इस समय दर्द कम हो जाता है। इसीसे पहलेकी तरह तकलीफ नहीं होती और कफ भी ढीला हो जाता है। तीन-चार दिनोंतक यह हालत रहती है। इसके बाद बीमारीकी तीसरी हालत आनेसे बुखार कम हो जाता है। साथ-ही-साथ दर्द, कफ और खांसी भी कम हो जाती है और रोगी धीरे-धीरे अच्छा हो जाता है। परन्तु यदि बीमारी छूटनेके रास्तेकी ओर न जाये, तब दूसरी अवस्थाके बाद ही रोगीके फेफड़ेमें मवाद पैदा होने लगता है और खांसीके साथ-साथ वह मवाद बाहर आने लगता है। सांस बहुत बदबूदार हो जाती है और नाड़ी कमजोर तथा सूतके समान पतली चलने लगती है। ऐसे लक्षण हों तो समझना चाहिये कि रोग बहुत कठिन हो रहा है।

कहा जाता है कि न्यूमोकोकस नामके कीड़ोंके कारण यह रोग होता है। परन्तु आश्चर्यकी बात यही है कि ये कीड़े स्वस्थ लोगोंके मुँह नाक और गलेके भीतर पाये जाते हैं। वैज्ञानिक लोग यह देखकर बड़ी असमंजसमें पड़ गये हैं कि ५० प्रतिशत स्वस्थ व्यक्तियोंके मुँहसे जो स्राव

निकलता है, उसमें अधिक संख्यामें ये जीवाणु उपस्थित रहते हैं (Hobart A- Reimann, M. D.— Treatment in, General Medicine, Vol. I, p. 36, Philadelphia, 1948)। तो भी कुछ नुकसान नहीं पहुँच पाता। इसका कारण यही है कि जबतक फेफड़ा शरीरके संचित विषसे आक्रान्त नही होता और इस कारण जबतक उसकी ताकत कम नहीं हो पाती, तबतक न्यूमोनियाके कीड़े शरीरका कुछ भी नुकसान नहीं कर सकते। मामूली तौरसे, ठंड लगना, ऋतु परिवर्तन पसीना रुकना, झोंका हवा लगाना, आबहवाको एकाएक बदलना आदि कारणोंसे मनुष्य एकाएक न्यूमोनियासे आक्रान्त होता है। परन्तु अब तो सब लोग यह स्वीकार करते हैं कि केवल ठंड लग जानेसे ही यह रोग पैदा नहीं हो जाता; यह तो केवल रोगको भड़का देनेवाला कारण है। ठंड लगकर चमड़ा जब सिकुड़ता है तब प्रकृति फेफड़ेसे होकर कभी कभी शरीरके जहरको बाहर निकालनेकी कोशिश करती है। इससे फेफड़ेमें खूनकी अधिकाई होती है और खूनका जो पानीका हिस्सा होता है, वह कफके शकलमें बाहर हो जाता है। जब यह जहर फेफड़ेपर ही हमला करता है तभी इस जगहपर कीड़ेके बढ़नेके लायक हालत पैदा होती है। पसीना रुकने आदिके कारणसे भी ठीक यही हालत पैदा होती हैं। वर्तमान कालमें हर एक जीवाणु-नाशक औषधि का इस्तेमाल करके न्यूमोनिया रोगको जल्दीसे जल्दी आरोग्य किया जाता है। उससे रोग मिटता है किन्तु शरीरके जिस दूषित सञ्चयसे रोग होता है वह जाता नहीं। शरीरके भीतर वह रह जानेपर एक बार न्यूमोनिया का जीवाणु ध्वंस करने पर भी पुनः न्यूमोनिया या और कोई दूसरा भयंकर रोग हो सकता है। इसलिये न्यूमोनियामें औषधि व्यवहार करने पर भी साथ-साथ शरीर शफाई करनेवाले प्राकृतिक चिकित्सा अवश्य ही करनी चाहिये।

(२)

फेफड़ेके पूर्णरूपसे आक्रान्त होनेके पहले ही प्रबल रूपसे चिकित्सा

करनी चाहिये :

पहले ही नीबूके रसके रसके साथ गरम पानीका डूश देकर इलाज शुरू करना जरूरी है और यह भी जरूरी है कि डूस रोज दिया जाय। इसके बाद दिनमें तीन बार रोगोकी छाती और पीठपर १८ मिनटोंके लिये तापबहुल गरम-ठंढा (५ मिनट गरम तो १ मिनट ठंढा – इसी तरह तीन बार) सेंक देकर उसके बाद दिन और रातके अधिकांश समयमें छातीकी सहज लपेटका प्रयोग करके बीच-बीचमें पैरकी पट्टी लेनी जरूरी है।

पहले पहले ठंढेसे भींगा हुआ और निचोड़ा हुआ कपड़ा सूखे हुए अलवान या ऊनी कपड़ेसे ढककर छाती बाँध देना जरूरी है और हर १५ मिनट बाद गीला कपड़ा गरम हो जानेसे उसे बदल देना चाहिये। इसके बाद ज्वर और दर्द जितना कम हो जाय उतने ही लम्बे समयके बाद सेंक देकर उतने ही ज्यादा समय बाद पट्टी बदल देना कर्तव्य है। पहले दिन बाद छातीके ऊपर पट्टीके बदलेमें छाती और पीठ घुमाकर छातीकी लपेट (chest pack) प्रयोग करना उचित है तथा दिन और रातके अधिकांश समय इसे रखना जरूरी है।

इससे छातीकी सूजन और बुखार तुरन्त कम हो जाता है और दूसरे-दूसरे उत्पात भी नष्ट हो जाते हैं। खासकर खांसीके मामलेमें तो इससे बहुत ही फायदा होता है। पहले ही दिन रोगीकी छातीमें दिनमें तीन बार गरम-ठंढा तापबहुल सेंक देकर बार-बार छातीकी पट्टी बाँध देनेसे खांसीसे रोगीको कभी कष्ट नहीं हो सकता। उसकी छाती-पर तापबहुल गरम-ठंढेके इस्तेमालसे (rdvulsive compress) छातीका दर्द भी तुरन्त दूर हो जाता है। दर्द दूर करनेके लिये इसे छातीपर खूब फैलाकर इस्तेमाल करना जरूरी है।

यदि रोगीके शरीरमें अधिक मांस हो, अर्थात् वह खूब मोटा ताजा हो, तो एक दिन छोड़कर दूसरे दिन उसे एकसे डेढ़ घंटोंके लिये भींगी चादरका पैक लगाना अच्छा है। रोगीका बुखार जिस

समय सबसे कम हो, उसी समय यह प्रयोग करना चाहिये। इसके इस्तेमाल करनेसे पहले उसे गरम पानी पिलाकर और २० मिनटोंके लिये गरम पैरका स्नान (hot foot bath) देकर और यदि जाड़ा लगता हो तो छाती और पीठपर गरम सेंक करके उसके बाद उसको पैक देना आवश्यक है। पैक देते समय कम्बलके भीतर रोगीकी चारों ओर बहुत-सी गरम पानीकी बोतलें रखना कर्तव्य है। रोगीको पैकके अन्दरसे निकालकर खूब होशियारीसे उसके समुचे शरीरको तौलिया-स्नान करना उचित है। ऐसे समय रोगीके पैरोंपर एक गरम पानीका थैला रखना विशेष रूपसे आवश्यक है।

छातीके और-और रोगोंको तरह न्यूमोनियामें भी छातीकी लपेट आदिके बीच-बीचमें पैरकी पट्टी देना ही इस रोगका मूल इलाज है। रोगीको रोज दो-तीन बार पैरकी पट्टी देना भी खास तरहसे जरूरी है। पैरकी पट्टी खोलनेके बाद भी उसके समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना आवश्यक है।

रोगीके सिरको बार-बार ठंढे पानीसे धो देना चाहिये। माथा धोनेके बाद दिन में दो बार बहुत होशियारीके साथ उसे समूचे शरीरमें तौलिया स्नान (sponge bath) कराना चाहिये। इस स्नानके लिये ब्रंकाइटिस रोगमें दिये स्नानका तरीका देख लेना जरूरी है। इस हालतमें याद रखना चाहिये कि भींगे गमछेसे शरीरको अच्छी तरह स्पंज करनेके लिये मामूली तौरसे १५ से २० मिनटका समय आवश्यक होता है (Frederick Tice, M.D, F.A.C.P.—Practice of Medidine, Vol. III, P. 61)। बड़े-बड़े अस्पतालोंमें न्यूमोनियाके रोगीको पहलेसे ही इसके तरहके स्नान (तौलिया-स्नान आदि) कराते रहनेसे, देखा गया है कि मृत्यु-संख्या आधेसे भी कम हुई है (J. H. Kellogg, M.D.—Rational Hydrotherapy, p. 586)।

रोगीको अधिक बुखार हो तो उसके माथेपर भी बार-बार ठंढी

पट्टीका इस्तेमाल करना आवश्यक है। जभी उसका बुखार १०३° से अधिक हो जाय तभी उसके माथेपर ठंढा पानी ढालना पड़ता है या ठंढी पट्टी देनी होती है। न्यूमोनियामें सबसे अधिक कष्ट देनेवाला उत्पात नींद न आना है। इसके साथ ही साथ बकवकी भी आ जुटती है। देरतक भींगी चादरका पैक या शिरकी भींगी पट्टीसे शिरका दर्द भी कम होता है और रोगीको नींद भी आ जाती है। तरह-तरहके गरम पैकके कारण भी रोगीका माथा गरम न हो जाय इसपर भी खयाल रखना जरूरी है। इसीसे रोगीके शिरपर बार-बार पानी देकर उसे ठंढा करते रहना जरूरी है। परन्तु रोगीको हमेशा गरम रखना चाहिये। जिस समय उसे तौलिया-स्नान आदि देना होगा उस समय भी उसको गलेतक ढके रखना जरूरी है।

इसीके साथ-साथ यह भी हमेशा याद रहे कि तरह-तरहके इलाजोंसे रोगीको हैरान नहीं कर देना चाहिये। तथा पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे रोगी पूर्ण विश्राम लाभ कर सके। जब रोगीका बुखार घट जाय तो उसे सात दिन बादतक बिछौनेपर रहकर विश्राम लेना चाहिये।

न्यूमोनियाके रोगीको खूब खुली जगहमें रखना उचित है। और संक्रामक रोगीकी तरह ही न्यूमोनियामें भी खूब खुली हवाकी आवश्यकता है (Taylor's Practice of Medicine, 14th Edition, p. 125)। संसारके सबसे नये अस्पतालोंमें न्यूमोनियासे रोगीको खास तरहसे बने खुले दालानमें या सिर्फ छतके कमरेमें रखा जाता है (Macfadden's Encyclopaedia of Physical Culture, P. 2260)। रोगीके घरका दरवाजा हमेशा खुला रखना उचित है। गरमीका मौसम हो तो रोगीको बरामदेमें रखना चाहिये, किन्तु उसके शरीरमें हवाका झोंका न लगे या उसका शरीर ठंढा न हो जाय इसपर खूब ध्यान रखना चाहिये। इसलिये रजाई, कम्बल आदि उसे ओढ़ाये रखना सदा उचित है। शरीर गरम रहे परन्तु रोगी सांसके

साथ ताजी ठंढी हवा फेफड़ेके अन्दर ले सके इसका इन्तजाम खास तौरसे कर देना चाहिये। सांसके साथ ठंढी हवाके लेनेसे रोगीके शरीरका बुखार कम हो जाता है क्योंकि इससे शरीरके भीतर आक्सीजनका काम अधिक होता है और उसीसे रोगका जहर जलता है तथा बुखार कम होता है।

न्यूमोनियाकी बीमारी बार-बार लौटकर आती है। कभी-कभी तो यह यक्ष्मा रोगका अग्रदूत होकर आती है। जिसका फेफड़ा इतना कमजोर है कि उसे न्यूमोनिया हो सकता है, तो समझना चाहिये कि उसे यक्ष्मा हो जाना भी कठिन नहीं है। इसलिये जिसे न्यूमोनिया आदि फेफड़ेकी बीमारी हुई हो, बीमारी छूट जानेपर भी बहुत दिनोंतक उसे बाहर ही रहना आवश्यक है और रातमें बाहर सोना भी जरूरी है। एक बड़े डाक्टर का कहना है कि यदि सारी मनुष्य जाति बाहर सोनेका अभ्यास डाले, तब तपेदिक और अन्यान्य विभिन्न रोग बीते हुए युगकी कहानीके रूपमें रह जायँ (Frederick M. Rossiter, B.S., M.D.—The Practical Guide to Health, p. 538)। इस प्रकारके सभी रोगियोंको रातमें बरामदेमें सोना अच्छा है। अगर ऐसा सुभीता न हो तो गरमी सर्दी सभी मौसममें उसे घरकी खिड़कियोंको खोलकर सोना चाहिये। रोग छूट जानेपर भी उसे चाहिये कि सुबह-शाम घूमे या कसरत करे। धीरे-धीरे आदत लगाकर रोज ठंढे पानीसे नहाना भी चाहिये। इससे शरीर मजबूत होता है और बीमारीको भगाये रखनेकी उसकी ताकत बढ़ती है। उसे सर्दी नहीं लगती, इसलिये थोड़ा-थोड़ा करके सर्दी लगाते लगाते, उसे सर्दीको जीत लेना चाहिये। अगर कभी-सर्दी हो जाय तो उसी वक्त छातीकी पट्टी लेकर उससे छुटकारा पा लेना चाहिये। बीच-बीचमें पसीना चलानेवाले स्नान भी लेना उसके लिये खास तरहसे उचित है। पेटको खूब अच्छी तरहसे साफ रखना चाहिये। अधिक गरम, अधिक ठंढ, अधिक

परिश्रम, सभी प्रकारका, अतिशय्य, अनियमता, उत्तेजक भोजन, शराब, तम्बाकू, चाय, काफी, अचार आदि और घरमें घुसकर बैठनेके अभ्यासका सम्पूर्ण रूपसे परित्याग कर देना ही उसका कर्तव्य है। अच्छे हो जानेपर यदि संभव हो तो किसी ऊंची पहाड़ी स्थानमें वायु परिवर्तनके लिये जाना चाहिये।

इस रोगमें अक्सर विभिन्न प्रकारकी जीवाणु-विध्वंसकारी औषधियाँ व्यवहृत की जाती हैं, लेकिन इन औषधियोंकी विषक्रियाके फलस्वरूप बहुत-से रोगी कठिन हृद्रोगसे आक्रान्त हो जाते हैं [Hobart A Reimann, M.D. Treatment in General Medicine, Vol. I, p. 35; Philadelphia, 1948)।

वास्तवमें यदि बिना किसी औषधिके रोगमुक्त हो सकें तो इससे अच्छा और कुछ नहीं हो सकता।

[३]

रोगीके पहली अवस्थामें रोगीको नीबूके रसके साथ पानी छोड़कर और कुछ भी देना नहीं चाहिये। इस रोगकी शक्तिको कम करनेके लिये उपवाससे बढ़कर और कुछ नहीं है। यदि रोगके शुरू होनेके साथ ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय और लगातार उपवास जारी रहे तब तो बहुत कम ही दिनोंमें न्यमोनिया निर्दोष रूपसे अच्छा हो जाय। परन्तु उपवासमें भी नीबूके रसके साथ पानी पीते रहना उचित है। और शरीरके रोओंकी जड़को खुला तथा आंतको साफ रखना आवश्यक है। प्रायः सभी नये रोग इस प्रकार उपवास करके अच्छे किये जा सकते हैं। कई दिनके उपवाससे ही बहुत-से कठिन रोगके लक्षण नष्ट हो जाते हैं (Bernarr Macfadden—Fasting for Health, P. 121)। इसके बाद जब सचमुच प्राकृतिक भूख लगे तभी पथ्य लेना चाहिये। दीर्घ उपवासके बाद धीरे-धीरे पथ्य दिया जाना चाहिये।

परन्तु दीर्घ उपवास करना संभव न हो तो भी न्यूमोनियाके आरम्भमें दो-दो दिनोंतक केवल नीबूके रसके साथ पानी पीकर ही रहना

उचित है। इसके बाद प्रत्येक तीन-चार घंटोंके बाद, रोगीको एकसे डेढ़ छटांक तक पानीमें मिला हुआ फलका रस आदि तरल पथ्य देना चाहिये। अधिक देनेसे उसका पेट फूल जा सकता है। इससे रोगीको सांस लेनेमें तकलीफ हो जानेका डर रहता है। अधिक खा लेनेसे न्यूमोनियाका रोगी बहुत आसानीसे मौतका शिकार हो सकता है। जिससे कि रोगीके पेटमें वायु-फुल्लता न हो जाय इसपर ध्यान देना आवश्यक है। रोगी यदि जवान और ताकतवर हो, तब तो उसे जितना कम खिलाया जाय उतना ही अच्छा है। परन्तु पहली अवस्थाके बाद कमजोर और बूढ़े रोगीको दो-दो घंटेपर खूब थोड़ा-थोड़ा करके बुखारका मामूली पथ्य खिलाना चाहिये (इसके लिये बुखारमें पथ्यकी विधि देखिये)। रोगीको जब प्राकृतिक भूख लगे तब समझना चाहिये कि अब डरका कोई कारण नहीं है।

प्लूरिसी

[Pleurisy]

[१]

फेफड़ेको लपेटनेवाले दोनों परदोंको प्लूरा (Pleura) कहते हैं। यह परदा बहुत मुलायम होता है। इन दोनोंमेंसे एक फेफड़ेके साथ और दूसरा पांजरके साथ जुड़ा हुआ है। इन दोनों परदोंके बीच हमेशा एक तरह का पिच्छिल रस रहता है। इस रसके रहने के कारणसे ही पांजरके साथ फेफड़े की रगड़ नहीं होती। इस फेफड़ेको लपेटनेवाली झिल्ली की सूजनका नाम प्लूरिसी है। यदि यह रोग यक्ष्मा होनेकी सूचना न दे तो प्रायः सौमें ८० रोगी आराम हो जाते हैं।

यह रोग साधारणतया दो प्रकार का देखनेमें आता है। एकको कहते हैं सूखी प्लूरिसी (dry pleurisy) और दूसरेको कहते हैं रसवाली प्लूरिसी (pleurisy with effusion)। सूखी प्लूरिसी दूसरेकी तुलनामें कम भयानक है। इसका विशेष लक्षण

दर्द है। सांस लेनेके समय, खांसनेके समय या जिस तरफका फेफड़ा खराब हो उधर दवाब पड़ने पर दर्द सबसे अधिक होता है। इनमें कभी बुखार होता है और कभी नहीं। प्रायः एक सूखी खाँसी होती है और सांसें स्वाभविककी अपेक्षा तेज चलती हैं। इस हालतमें फुसफुसकी लपेटनेके भीतर जो पिच्छिल पदार्थ है उसका रस सूख जाता है, इसलिये दोनों परदोंकी रगड़से रोगीको बहुत तकलीफ होती है। इस समय दर्दकी जगहपर स्टेथस्कोप रखनेसे रगड़की आवाज साफ-साफ सुनाई पड़ती है। इस तरह की प्लूरिसी फुसफुसमें एक ही जगह सिमटकर हो सकती है। फिर इसके बाद एक ही या दोनों फुसफुसों के अधिक भागोंमें यह बढ़ जा सकती है। साधारणतः बहुत थोड़े दिनोंके भीतर ही यह अच्छी हो जाती है।

रसवाली प्लूरिसी इसकी अपेक्षा बहुत कड़ी व्याधि है। यह साधारणतया कँपकँपी और बुखार लेकर आती है। बुखार १०२° से १०३°,तक होता हैं। रोगीको छातीकी ढोंढीके नीचे या बगलमें बड़ा दर्द मालूम होता है। सूखी खाँसी प्रायः सदैव ही मौजूद रहती है और खाँसनेमें बड़ी तकलीफ मालूम होती है। कफ अधिक नहीं निकलता। रोगीकी जीभ मैलसे ढकी, नाड़ी खूब तेज, सांस भी तेज और छोटी (short), पेशाब थोड़ा और खूनके रंगका होता है। उसे भूख बिलकुल ही नहीं लगती, किन्तु प्यास तेज रहती है। इसके बाद रस जमा हो जानेवाली हालत आती है। यह हालत बीमारी शुरू होनेके कई घंटों बादसे लेकर एक दिन या उससे भी अधिक समयमें आ सकती है। इस हालतमें दोनों लपेटनके बीच डेढ़ पावसे तीन सेरतक पानी जमा हो जाता है। अब दर्द कम हो जाता है परन्तु दो-एक दिनोंके भीतर ही सांस लेना व छोड़ना बहुत कष्टदायक हो जाता है। उस अवस्थामें फेफड़ा जिससे अच्छी तरह फैल सके इसके लिये रोगी चित्त होकर सोना ही पसन्द करता है। रोगीका बुखार चलता रहता है और उसके शरीरका मांस और उसकी ताकत जल्दी-जल्दी

घटने लगती है। यह अवस्था प्रायः एक सप्ताह तक रहती है।

इसके बाद अच्छे होनेकी हालत शुरू होती है। इस अवस्थामें बीमारीके सारे लक्षण मिटने लगते हैं और रोगी धीरे-धीरे स्वाभाविक अवस्था प्राप्त करता है। परदेके भीतर जो पानी जमा होता है वह मामूली तौरसे एकसे दो सप्ताहोंके भीतर सूख जाता है। कभी-कभी इसके सूखनेमें एक माससे अधिक समय भी लग जाता है। परन्तु रोगीकी अवस्था जब खराब होने लगती है तो यही पानी पीवमें बदल जाता है और रोगीका बचना मुश्किल हो जाता है।

ठंढ लगना, ऋतु परिवर्तन, एकाएक पसीना रुक जाना आदि इस रोगके कारण बताये जाते हैं; परन्तु इसका मूल कारण यह कभी नहीं है। ये तो उभाड़नेवाले कारण (exciting cause) हैं। मूल कारण पहलेसे ही शरीरके भीतर हो तभी ठंढ आदि लगनेसे आदमीको प्लूरिसी हो सकती है। ठंढ लगकर ही प्लूरिसी होती है कि नहीं इस विषयमें एक प्रसिद्ध डाक्टरने एक बार ७४ रोगियोंके बारेमें पता लगाया था। इस रोगके होनेके हालकी जांच करके उन्होंने लिखा कि ७४ रोगियोंमें सिर्फ २८ आदमियोंको ठंढ लगनेके कारण बीमारी हुई थी (Encyclopaedia Medica, Vol. 10, PP. 559—568। इसलिये शरीरमें इकट्ठे विकारके आक्रमणसे जैसे ब्रंकाइटिस और न्यूमोनिया हो जाता है उसी तरहसे प्लूरिसी भी होती है। बहुत अधिक संख्यामें यह बीमारी यक्ष्मा रोगके कारण पैदा होती है। कभी-कभी तो यह यक्ष्माको लिये हुए शुरू होती है और कभी-कभी बदलकर यक्ष्मा बन जाती है। कभी-कभी गठिया, खून का विकार और छातीमें चोट लगकर भी यह बीमारी पैदा हो जाती है। इसके अतिरिक्त इनफ्लूएंजा, सन्निपात ज्वर, न्यूमोनिया और चेचक रोगसे भी यह बीमारी हो जाती है। शरीरमें जिस जहरके रहनेके कारण ये सब बीमारीयां होती हैं वही जब फेफड़ेकी झिल्लीपर हमला करता है तभी उसमें सूजन पैदा होती है।

(२)

इसलिये शरीरके विकार को दूर करनेके साथ-साथ फ्लूराकी सूजनको कम करानेकी कोशिश ही इस बीमारीकी प्रधान चिकित्सा है।

इस रोगका इलाज भी करीब-करीब न्यूमोनियाके इलाजके समान ही है। पहले तो जितनी जल्दी हो सके किसी उपायसे रोगीके पेटको साफ कर देना चाहिये। इसके लिये नीबूके रसके साथ गरम पानीका डूश देना ही सबसे बड़ा उपाय है। जबतक रोगीको आराम न हो यह रोज चलना चाहिये। इसके बाद हर दो घंटे बाद रोगी जितना गरम बरदाश्त कर सके उतना गरम उसकी छातीमें दर्दकी जगहपर दस मिनटके लिये इस्तेमाल करके एक घंटेके लिये बार-बार छाती की लपेट देना और बीच-बीचमें पैरका पैक देना ही इसका मूल इलाज है। यही दर्द और छातीके पानीके जमावको कम करनेका सबसे बड़ा उपाय है। रोगीको पहली हालतमें हर पन्द्रह मिनटों के बाद पट्टी के गरम हो जाते ही उसे उतार लेनी चाहिये और फिर उस जगहको मल मलकर लाल और गरम कर देनेके बाद पट्टी चढ़ा देनी चाहिये। इसके बाद पहली तेज हालत जब कट जाय और बुखार जितना कम हो जाय उस समय उतने ही अधिक समय पर रोगीके दर्दकी जगहपर सेंक देकर उतने ही अधिक समय तक पट्टी रखनी जरूरी है। बुखार छुट जानेपर रोगीको छातीके दर्दकी जगह दिनमें तीन बार आधे घंटेके लिये गरम ठण्डा देकर तीन बार एकसे दो घंटे तकके लिये छातीकी पट्टीका इस्तेमाल करना चाहिये। इसके साथ ही दिनमें दो बार उसे पैरकी पट्टी भी देनी जरूरी है यह विशेष रूपसे आवश्यक है। यदि रोगी मोटे ताजे शरीरवाला हो तब एक एक दिन बाद देकर उसे एक घण्टे के लिये गिली चादर की लपेट (Wet-sheet pack) देनी चाहिये। इस समय रोगीके शरीरकी चारों ओर कम्बलके भीतर कई गरम पानीकी बोतलें रखनी आवश्यक है रोगीके शिरको बार-बार धो देना खास तौरसे जरूरी है और दिनमें दो बार खास तरीकेसे

रोगीको तौलिया-स्नान (इस स्नानका तरीका ब्रंकाइटिस चिकित्सा विधिमें देखिये) देना उचित है। और सभी चिकित्सा न्यूमोनियाके इलाजके समान ही होनी चाहिये।

बुखार होते ही बिछावनपर जाकर पूरा-पूरा आराम करना चाहिये। रोगीका घर ठण्ढा और सूखा होना अच्छा है। घर ऐसा न हो जो कभी बिलकुल गरम और कभी बिलकुल ठण्ढा रहता हो। रोगीके शरीरमें ठण्ढा न लग जाय इसलिये उसे अपने शरीरको गले तक ढककर रखना चाहिये।

(३)

शुरूसे ही नीबूका रस डालकर रोगीको ढेरसा पानी पीना चाहिये और पहली अवस्थामें इसे छोड़कर और दूसरा खाना कुछ भी देना नहीं उचित है। इस समय कई रोज तक बिना खाये हुए रह जाना जरूरी है। इस उपवाससे प्लूराके भीतरका जमा हुआ पानी सुखकर शरीरके हर एक रास्तेसे निकल जाता है। बीमारीकी तेजीकी हालत कट जानेपर उसे मामूली बुखारका पथ्य देना चाहिये।

रोग पुराना हो जाने पर हर रोज पद्धति अनुसार सूर्यस्नान लेना चाहिये। प्लुराके भीतर जो रस संचित होता है, इससे वह पुनः शरीरमें शोषित हो जाता है और दर्द कम हो जाता है (E. K. Ledermann, M. D.—Natural Therapy, p. 50, London, 1953)।

फेफड़ेसे खूनकी उलटी

[Haemoptysis]

[१]

फेफड़ा, कंठका नाली (larynx) या साँस नाली (bronchi) से होकर खखारमें खून आता हो तो उसे फेफड़ेका रक्त-वमन कहा जाता है। लोग इससे जितना डरते हैं उतने डरकी बात इसमें नहीं है।

मुँहसे खून आनेसे आदमी शायद ही कभी मरता हैं। बहुत-से रोगियोंकी तो यह खूनकी उलटी आपसे आप बन्द हो जाती है। यक्ष्मा रोगमें भी खुनकी उलटी से ३ प्रतिशतसे भी कम मौत होती है (Encyclnpaedia Medica, Vol, V. p. 591)। यदि कफके भीतर खूनका दाग या उसका थोड़ा-सा चिह्न भर हो तो वह बिलकुल ही डरावन नहीं है। ऐसे तो साधारणतः गलेसे ही खून आता है। तिसपर भी बीमारीको कभी मामूली समझना नहीं चाहिये क्योंकि इस जातिके ९० प्रतिशत रोगोंमें यक्ष्मा रोगसे छोटी नाली फट जानेसे खून बाहर निकलता है।

यक्ष्मा बीमारीके अलावा अधिक व्यायाम या परिश्रम, भोग-विलास या धूपमें घूमने आदि कारणोंसे भी मुँहसे खून आता है। परन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि ऐसे लोगोंका फेफड़ा अत्यन्त दुर्बल होता है और इस दुर्बलताका कारण शरीरके भीतर पहलेसे ही था।

खून निकले तो सबसे पहले यह पता लगाना चाहिये कि वह फेफड़ेसे निकलता है या पेटसे। फेफड़ेसे निकलनेवाला खून साफ चमकीला और लाल रंगका होता है और उसमें कुछ कफ और फेन मिला हुआ होता है, लोहाका थक्का नहीं होता और सांस लेनेमें तकलीफ, छातीका दर्द और ताप मौजूद रहता है। परन्तु पेटसे जो खून आता है वह कुछ काला होता है, उसके साथ भोजनके टुकड़े मिले हुए होते हैं और उसमें खूनका थक्का होता है। साथ ही पेट भारी होता है और उसमें दर्द भी रहता है। कै या कै करनेकी इच्छा भी बनी रहती है जिससे पेटके रोगका लक्षण मालूम पड़ जाता है।

फेफड़ेसे कभी-कभी एकाएक खून निकल आता है। कभी-कभी खून निकलनेसे पहले दो-एक दिनतक ऐसा मालूम होता है जैसे कलेजा चपा हुआ हो और खांसी तथा कफका निकलना जारी रहता है। खूनका अन्दाज कुछ ठीक नहीं रहता। कभी-कभी कफके भीतर खूनके दो-

चार दाग रहते हैं और कभी-कभी आध सेर वा तीन पाव या एक सेरतक खून नाक और मुँहसे निकल पड़ता है। जब खून अधिक नहीं रहता है तब वह कफके साथ मिला हुआ होता है। इस समय मुँह पसीने-पसीने हो जाता है, नाड़ी कमजोर और हाथ पांव ठण्डे हो जाते हैं।

[२]

इस हालतमें फेफड़ेकी धमनीके भीतर खूनका दबाव बहुत अधिक हो जाता है। इससे इस खूनके दबावको कम करना ही इस बीमारीका सबसे बड़ा इलाज है रोगीको इस समय इस तरह लेटाना चाहिये कि उसका कन्धा और माथा ऊँचा रहे। इसके बाद उसकी छातीपर ठण्डे पानीमें भिगाई हुई तोलिया गरम होनेके बाद हां बदल-बदलकर हमेशा इस्तेमाल करना चाहिये। यदि खून अधिक निकल रहा हो तो कुछ देरके लिये गीली मीट्टीकी पुलटिस या बर्फकी थैली भी रखी जा सकती है। इससे खून निकलना तुरंत बंद हो जाता है और रोगीको बहुत आराम मालूम होता है। खून निकलनेके पहले फेफड़ा बहुत उत्तेजित अवस्थामें रहता है। यह हालत मिठ जानेके बाद फिर कभी वैसी ही हालत मालूम होते ही छातीपर भींगी हुई तौलिया दो-एक बार दस-पन्द्रह मिनटके लिये एक फलेनेलके टुकड़ेसे ढककर रखना चाहिये। इसके बाद फेफड़ेकी उत्तेजना जब कम होती जाय तब उसकी छातीपर भींगी मोठा रूमाल रखकर उसको छातीकी पट्टी देना आवश्यकता है। यह एक बारमें एक घंटे लिये, इस हिसाबसे दिन भरमें दो-तीन बार प्रयोग किया जा सकता हैं। इस समय रोगीकी गरदन छाती और पीठ विशेषरूपसे लपेटकर रखना कर्तव्य है। ये सभी व्यवस्थाएँ समस्त रोगीके लिये आराम देनेवाली होती हैं। ऐसा होनेसे ही उनको लाभ होता है।

यदी हालतमें पैर जब ठंढे रहते हैं, उस समय उसके पैरोंके ऊपर एक गरम पानीसे भरी थैली अथवा बोतल रखना आवश्यकता है

और उसके बाद शिरको भिगाकर एक-एक घंटेके लिये दिनमें तीन बार पैरकी पट्टीका प्रयोग करना चाहिये। पैरकी पट्टी खोलनेके बाद समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना जरूरी है।

इस समय ठंढे पानीका डूस भी बहुत लाभ पहुँचाता है। बहुत बार नाकमें गीले कपड़ेके टुकड़ेके ऊपर बर्फ रख देनेसे फेफड़ेसे खून बहना बन्द हो जाता है। क्योंकि इस ठंढकका जो असर स्नायुपर पड़ता है उससे धमनियां सिकुड़ जाती हैं। रोगीको बर्फका पानी या बर्फ पीनेको भी देना चाहिये। वह बर्फके टुकड़े लेकर उसे चूस भी सकता है। लेकिन ऐसी कोशिशोंसे उसे भिगा नहीं देना चाहिये। रोगीके हाथ-पैर हमेशा गरम रहें इसका ध्यान रखना जरूरी है। परन्तु खून बहनेके रोगवाले रोगीके शरीरमें अधिक गरमी भी न लगे, इसपर ध्यान देना चाहिये। इससे खून निकलना हमेशा बढ़ जाता है।

पहलेसे ही रोगीको पूरा आराम करना चाहिये। मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके आरामकी उसे आवश्यकता है। रोगीको बात भी नहीं करने देने चाहिये। बहुत जरूरत हो तो एकाध बात धीरे-धीरे कहे। साधारण अवस्थामें तीन-चार दिन और कठिन अवस्थामें खून निकलना बन्द हो जानेके एक सप्ताहतक उसे बिछावनसे हटने देना नहीं चाहिये। इस समय बारम्बार शवासन ग्रहण कर शरीरको स्थिर करके पड़े रहनेसे रोगीको बहुत लाभ होता है। थोड़ा-सा भी खून मुँहसे आये तो रोगीको तुरन्त शवासन लेना चाहिये। इससे खूनकी उलटी तुरन्त बन्द हो जाती है। रोगीको चाहिये कि खांसीके वेगको भी थोड़ा दबानेकी कोशिश करें, क्योंकि खांसीसे खूनकी उलटी बढ़ जाती है। रोगीको खूब ठंढा हवादार घरमें खूब हल्का कपड़ा पहनाकर रखाना चाहिये। घरमें शोर-गुल न हो और रोगीकी शांति भंग न हो ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक है। ठंढे पानीसे शिर धोकर खूब होशियारीके साथ उसे तौलिया-स्नान कराना उचित है। उसकी छातीको पोंछते समय

वहांपर जोरसे रगड़ना नहीं चाहिये। रोगीको हमेशा कोष्ठ साफ रखना उचित है।

[३]

जबतक बीमारीकी तेजी रहे तबतक थोड़ी-थोड़ी देरपर फलोंका रस छोड़कर और कुछ भी खानेको देना उचित नहीं है। तीन दिनोंके बाद उसे फल और दूध दिया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

परिपाक यंत्रका रोग

दस्त

[Diarrhoea]

[१]

बार-बार टट्टी होनेका नाम दस्त या डायरिया है।

जब पेटके भीतर मल जमा होकर या शरीरके भीतर दूषित करनेवाली चीजें इकट्ठी होकर शरीरको आफतमें डाल देती हैं, तब प्रकृति बहुत बार उन दूषित पदार्थोंको शरीरके नीचेकी सबसे बड़ी नाली द्वारा बाहर कर देना चाहती है। शरीरको रोगमुक्त करनेके लिये प्रकृतिकी इस विशेष पद्धतिको डाइरिया कहते हैं। साधारणतः भारी-भारी चीजें खाने, अधिक खाने या ऋतु परिवर्तन आदिसे यह दस्त शुरू हो जाता है। कभी-कभी बासी चीजें, सड़ी चीजें, अशुद्ध जल, जहरीला भोजन या दवा आदि खा लेनेसे भी यह हो सकता है। कारण यही है कि ऐसी हालतमें शरीरसे रसको बाहर निकालनेवाले जो यंत्र हैं वे बहुत-सा रस बाहर निकालकर शरीरको धोकर साफ कर देनेकी कोशिश करते हैं।

बहुत बार सर्दी लगनेके कारण दस्त शुरू होता है। जिस तरह सर्दी लगनेसे नाककी कफवाली झिल्लीमें खूनकी अधिकाई और स्फीति होती हैं और उसके कारण कफके आकारका खूनका तरल अंश बाहर हो जाता है, उसी तरह ठंढ लग जानेके कारण भी आंतके भीतरकी झिल्लीमें खूनकी अधिकाई और स्फीति पैदा हो जाती हैं और ऐसा होनेसे मलके साथ बहुत सा आंव बाहर निकल जाता है। शरीरका जो जहर रोओंकी जड़से होकर हर समय बाहर निकलता रहता है

वह अब चमड़ेके सिकुड़ जानेके कारण उस रास्ते नहीं निकल सकता, तभी प्रकृति उस जहरको कभी-कभी आंतके रास्तेसे बाहर निकालनेको लाचार हो जाती हैं। उसे ही कफके दस्तकी बीमारी (catarrhal diarrhoea) कहते हैं।

कभी-कभी किडनी, लिवर (गुर्दो) फुसफुस या दिलकी बीमारीसे आंतके भीतर खूनकी बहुतायतसे, या दूसरी तरहसे कहें तो इन सब यन्त्रोंके अपनयनमूलक (कर्तव्यके eliminative function) कुछ अंश आंतके द्वारा ग्रहण किये जानेसे ही दस्तकी बीमारी हो जाती है।

इसलिये इस दस्तकी बीमारीका कारण चाहे जो भी क्यों न हो; शरीरके भीतर इकठ्ठे जहर और बिगड़े हुए पदार्थ ही उसके मूल कारण हैं।

दस्तकी बीमारीके कारण जो रोगके लक्षण दिखाई पड़ते हैं वे सभी इसी रोगके विसके आक्रमण और उन्हें बाहर निकालनेके लिये प्रकृतिके द्वारा की गई चेष्टाएं हैं। बीमारीके शुरूमें पहले प्रायः उलटी होती है। जो विष, प्रकृति मलके रास्तेसे बाहर निकाल देना चाहती है वह जब उलटीका स्नायविक केन्द्र (vomitting centre) में उत्तेजना पैदा करता है; तभी उलटी होती है। कैके साथ-साथ दस्त भी शुरु हो जाता हैं। कभी-कभी उलटी नहीं होती है, पेटमें दर्द देकर दस्त शुरू हो जाता है। कभी-कभी पेटके भीतर इतना मल भर जाता है कि उसको निकालना शरीरके लिये आसान नहीं होता। उसे निकालनेके लिये प्रकृति आंतके भीतर जो ज्यादा लहर (Peristalsis) पैदा कर देती है उसीसे रोगीको दर्द मालूम होता है। बहुत बार आंतके बीच गला हुआ भोजन सड़कर गैस पैदा कर देता है, इसीसे पेट फूलने लगता है। प्रकृति उस समय घर साफ करनेमें लगी रहती है। इसीसे वह और कुछ भी ग्रहण करना नहीं चाहती। पहली हालतमें रोगीको जो भूख नहीं लगती यही उसका कारण है। कभी-कभी जीभ गन्दी रहती है। इससे प्रमाणित होता

है कि आंत ठीक नहीं है। कभी-कभी रोगीको शिर-दर्द, सांस बदबू-दार, दुर्बलता और थोड़ा-थोड़ा बुखार भी होता है। इन सब बातोंसे यह मालूम होता है कि, रोग स्थानीय नहीं है, समूचे शरीरका है।

असलमें प्रकृति जिस हालतमें शरीरके भीतर इकट्ठे जहरको नीचेकी मामूली नालीसे बाहर निकालने लगती है; उसे ही दस्तकी बीमारी कहते हैं।

[२]

इसलिये दस्तकी बीमारीको जोर करके कभी दबाना नहीं चाहिये। जबतक खराब मल बाहर होता रहे तबतक दस्त लाभदायक ही होता है। (Otto Juettner; M.D.; Ph. D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 87)। जब दस्त होकर पेट बिलकुल साफ हो जाय तभी इसे बन्द करनेका उपाय करना चाहिये।

मामूली तौरसे, इस हालतमें पेट खूब गरम रहता है। रोगीके पेटपर इस समय हाथ दें तो वह गरम मालूम देगा। इस समय गीली मिट्टीकी पुलटिस तो जादूका काम करती है। पेड़ूपर गीली मिट्टीकी पुलटिस लगानेसे, कीड़ोंकी बाढ़ बन्द हो जाती है, आंतकी उत्तेजना चली जाती है और यदि पेटमें दर्द रहा तो दस-पन्द्रह मिनटके भीतर वह छुट जाता है। परन्तु गीली मिट्टीकी पुलटिस देनेके पहले देख लेना पड़ेगा कि पेट गरम है या नहीं। पुलटिसको हर घंटे बदल देना जरुरी है। यदि यह पुलटिस देरतक इस्तेमाल करने की जरूरत मालूम हो तो हर तीन घंटे पर १५ से २० मिनटोंके लिये पेड़ूपर गरम सेंक देकर उसके बाद फिर पुलटिस बांध देनी चाहिये। पेटकी हालत जितनी अच्छी होगी, उतना ही ज्यादा समय के पश्चात् पुलटिसको बदल देना चाहिये। अन्तमें उसे तीन-चार घंटा या रातभरके लिये बंधा छोड़ दे सकते हैं।

परन्तु दस्तकी बीमारी यदि खराब जातिकी हो और पेटका चमड़ा गरम न हो या ठंढा हो तो हर तीन-तीन घंटेपर पेड़ूपर १५ से २० मिनटोंके लिये तापबहुल गरम ठण्डा देकर, उसके बाद दो घण्टोंके लिये

ढकी हुई पेटकी पट्टी (abdominal heating compress) हर घण्टे बदलते हुए प्रयोग करना चाहिये। पेट बहुत ठंडा हो तो इस पट्टीके ऊपर गरम पानीकी थैली या गरम पानीसे भरी बोतल रखना उचित है। यह उपाय आंतके जमे खूनको चमड़ेमें खींच लाता है और खूनकी गति चमड़ेको फिरसे लौटाकर पेटकी बीमारीको तुरन्त आराम कर देता है। पेटके दर्दका भी यह एक अचूक इलाज है।

इस बीमारीमें हिपबाथ बहुत लाभदायक होता है। पेट यदि गरम हो तब तो किसी समय रोगीको यह बाथ दिया जा सकता है। परन्तु यदि पेट ठंडा हो जाय तब पेटपर सेंक देकर उसे गरम करके तब हिप-बाथ देना चाहिये। यदि इस समय पैर ठंढे हो रहे हों तो दोनों पैरोंको गरम पानीमें डुबाकर हिप-बाथ देना जरुरी है। बीमारीकी तेजीकी हालतमें ऐसा बार-बार कर सकते हैं। दो-तीन बार ऐसा करनेसे ही दस्त बन्द हो जाता है। प्रयोगके खतम होनेपर पानीमें डूबे हुए हिस्सेको बार-बार रगड़कर और गरम करके छोड़ देना चाहिये।

दस्तकी बीमारीमें किसी भी हालतमें डूस लाभदायक है। बड़ी आंत (colon) में अटके हुए मलको डूसका पानी बाहर निकाल लाता है, दस्तको बन्द करता है और दर्दको इतनी जल्दी कम कर देता है कि आश्चर्य होता है। परन्तु रोगी जितना गरम बरदाश्त कर सकता हो और जितना अधिक पानी ले सकता हो, उतना ही देना उचित है। जब बार-बार पतला दस्त हो तब केवल एक ही बार डूस लेनेसे वह बन्द हो जाता है। कारण यह है कि मलके भीतर जो जहर होता है वही तो आंतकी दीवालमें उत्तेजना (irritation) पैदा करके बार-बार पाखानेकी जरुरत पैदा करता है। इसलिये बार-बार दस्त होनेकी हालतमें और कुछ सोच-विचार न कर रोगीको डूस दे देना चाहिये।

इन सब इलाजोंसे कड़ी दस्तकी बीमारी भी अच्छी हो जाती है। परन्तु यदि वह न हो और टट्टी जारी ही रहे या ठण्ढ लगनेके कारण पेटमें दर्द हो तो रोगीको एक बार गरम पैर-स्नान देकर पसीना पैदा

कर देना जरूरी है। बहुत बार तो गलेतक कम्बलसे ढककर पेडू पर सेंक देनेसे ही बहुत पसीना निकलता है। रोओंकी सूराख बन्द होनेसे प्रकृति जिस हालतमें शरीरके जहरको आँतसे होकर निकालनेको बाध्य होती है, उसी हालतमें रोओंकी जड़ोंके रास्तेको फिरसे खोल देनेपर रोगी अपनेसे अच्छा हो जाता है। इसलिये इस अवस्थामें भापका स्नान प्रयोग करनेसे भी रोगीका बहुत उपकार होता है।

दस्तके साथ आम तौरसे उल्टी भी होती है। जिस तरह जोर करके दस्त बन्द कराना ठीक नहीं है, उसी प्रकार जोर करके उल्टी रोकना भी नुकसान करनेवाला है। कारण यही है कि उल्टी भी शरीरको साफ करनेकी प्रकृतिका एक साधन है। इसीलिये बीमारीकी हालतमें रोगीको यदि कैकी हालत जारी रहे तब उल्टीको बन्द न करके ऐसा उपाय करना उचित है कि उल्टी हो जाय। इसके लिये रोगीको गुनगुना पानी पिलाया जा सकता है। इससे उल्टी होकर पेट साफ हो जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि गुनगुने पानीसे (Warm water) ही उल्टी होती है, पानी यदि गरम (hot) रहे तो उससे उल्टी बन्द होगी। परन्तु कैमें जब पानीके सिवा और कुछ न निकले और उसका रंग कुछ हल्दीके रंगपर आ जाय उस समय उसे रोक देनेका उपाय किया जाना चाहिये। इस समय रोगीको बर्फ चूसनेको देना आवश्यक है या उसे बर्फका पानी पिलाना चाहिये। यदि पेटपर एक भींगा हुआ टुकड़ा रखकर उसके ऊपर बर्फ रख दिया जाय या बर्फकी थैली (ice bag) रखी जाय या ठण्डी गीली मिट्टी चढ़ा दी जाय, तब प्रायः शीघ्र ही उल्टी रुक जाती है। परन्तु इससे भी अधिक लाभ होता है गरम सेंक देनेसे। रोगीको यदि ठंढ लग रहा हो तब तो सेंक ही देना चाहिये। रोगी जितना भी गरम बरदाश्त कर सके, पेडू के ऊपर उतना ही गरम सेंक देकर इसके बाद ढकी हुई लपेट (heating compress) का इस्तेमाल करना चाहिये।

सभी अवस्थाओंमें ही रोगीके शिरको धुलाकर दिन भरमें कम-से

कम तीन बार गुनगुना पानीसे उसके समूचे शरीरको पोंछ देनेके बाद फिर शरीरको हाथोंसे रगड़-रगड़कर गरम कर देना उचित है। इससे शरीरकी रोगसे लड़नेकी ताकत (resisting power) बढ़ती है और बीमारी जल्द अच्छी हो जाती है।

रोगीको जिसमें नींद आ जाये, इसकी कोशिश करनी चाहिये। खाली पेट यदि रोगी सो जाता है तो बहुत बार इससे ही उसका अतिसार छूट जाता है।

साधारण तौरसे इस बीमारीमें अफीम मिली हुई औषधका प्रयोग होता है। इससे दर्द तो जल्दी कम हो जाता है और रोगीको आराम मालूम पड़ता है। परन्तु इसके फलस्वरूप रोगीको इतनी सख्त कब्जियत शुरू हो जाती है कि उसके कारण ऐसी कोई बीमारी ही नहीं है, जो न हो सके। कई बार दस्तको असमय रोक देनेसे, प्रकृति दस्त जारी करके जो विष निकाल देना चाहती है, वह भीतर ही रह जाता है और वह इससे भी बड़ी कोई बीमारी पैदा कर देता है।

[२]

दस्तकी बीमारीमें तो प्रकृति हटावके काम (elimination) में ही लगी रहती है। इसलिये ऐसे समय तो कुछ भी ग्रहण करना नहीं चाहती। जोर करके कुछ दिया भी जाता है तो वह के कराके फेंक देती है। यदि वह इस तरह बाहर न भी हो जाय तो भी रोगीके किसी काममें वह नहीं आता। दस्तकी पहली हालतमें रोगीको खाना देनेसे वह बिगड़ कर (fermented होकर) विभिन्न रासायनिक उत्तेजक (chemical irritants) पदार्थ उत्पन्न करता है या वह हजम न होकर पाकस्थली और आंतमें उत्तेजना (irritation) पैदा करती है (Solomon Soils Cohen, M. D.—A System of Physiologic Therapeutics, Vol. VI, p. 249)। इसलिये जबतक रोगीको प्राकृतिक भूख न लगे, तबतक उसे कुछ खानेको देना नहीं चाहिये। इस कारणसे अतिसारके शुरूमें २४ से ४८ घंटेतक उपवास रखना जरूरी

है। केवल इसीसे आंत ठंढी होती है (Clifford J. Barborka, M. D. D.Sc.—Treatment by Diet, P. 524, London, 1948)। लेकिन शुरूसे ही उसे नीबूके रसके साथ ढेरसा पानी पीनेको देना उचित है। यह याद रखना चाहिये कि हर बार दस्तके साथ रोगीके शरीरके बहुत—से तरल पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। इसलिये दस्तकी बीमारीमें बार-बार पानी पिलाना उचित है। लेकिन एक ही बार ढेरसा पानी पिला देना उचित नहीं है। उससे उलटीका जोर हो सकता है। पानी भी खूब ठंढा न होना ही अच्छा है, क्योंकि खूब ठंढे पानी आंतकी लहर बढ़ती है।

जब रोगीको प्राकृतिक भूख लगे तब समझना चाहिये कि रोगी कुछ ग्रहण करने योग्य हो गया है। तब उस समय रोगीको पथ्य दिया जा सकता है। परन्तु खराब मल बाहर न होनेपर कभी कोई कब्जियत करनेवाला खाना उससे देना उचित नहीं है (J. H. Kellogg, M. D.—The New Dietetics, P. 750)। तब उसे छेनेका पानी, डाबका पानी और मट्ठा इत्यादि तरल पथ्य देना उचित है। इस समय ऐसे पथ्य देने की आवश्यकता है कि रोगीके पेट और आंतमें कुछ भी तकलीफ न रहे। इसके बाद जब हालत और अच्छी हो जाय, तब उसे मट्ठा मिलाकर भातकी मांड़ और चूड़ाका पानी आदि तरल पथ्य देना आवश्वयक है। सभी हालतोंमें मट्ठापर ज्यादा जोर देना कर्तव्य है। अगर ठंढ आदि लगकर आंतके भीतर सूजन हुई हो तो उसे भातकी मांड़ आदि शर्करा जातिके (carbohydrate) पदार्थोंको जल्दी नहीं देना चाहिये। इस हालतमें तो रोगीको खासकर छेनेके पानीपर ही रखना आवश्यक है। रोगी कुछ भूख रखकर पहले थोड़ा-सा ही खाकर धीरे-धीरे खाना बढ़ाता जायगा। बीमारी अच्छी होते ही एकाएक अधिक खा लेनेसे या कठिनाईसे पचनेवाली चीजें खा लेनेसे, बीमारीके फिर लौटकर आनेका डर बना रहता है। कई दिनों तक चर्बी (fat) जातिकी चीजें, कच्चा दूध, मलाई, सभी तरह की शाक-सब्जी, आलू, सभी

तरहके फल, मांस, हलवाईकी दूकान की सभी तरहकी नमकीन चीजें, या मीठे पदार्थ, घी और तेलमें भुनी हुई सभी तरहकी चीजें, पिट्ठा, खीर और मसालेदार चीजें आदि पूर्णरूपसे छोड़ देना चाहिये। असमय खाना, अधिक खाना और कठिनाईसे पचानेवाली चीजें खाना आदि भी छोड़ देना कर्त्तव्य है।

पेचिश

[Dysentery)

(१)

बड़ी आंत (colon) के सूजनका नाम है पेचिश। जब इसमें जखम हो जाता है तभी इसे रक्तातिसार कहते हैं।

आंवके साथ टट्टी, दिन-रातमें १५ से लेकर १०० बार तक और खून मिली हुई टट्टी, हमेशा पाखाना लगा रहना, कभी—कभी दस्तके बाद आंव निकलना, किसी समय सादा आंव या खून ही निकलना, कभी-कभी मछलीके धोनेका-सा पानी निकलना, बहुत दर्द, पेटके छूते ही दर्द मालूम होना, मलद्वारपर लहर, कुथना, शिर-दर्द, माथा घूमना, कानोंमें झनझनकी आवाज, नींदकी कमी, भूखकी कमी, तेज प्यास जीभ पहले सफेद लेपसे ढकी, पीछे लाल और सादी, हाथ-पैर ठंढे नाड़ी तेज और कमजोर और बुखार १०२° से १०३° तक—ये ही सब आमाशयके प्रधान लक्षण है। रोग अगर अच्छे होने की तरफ जाय तब दस्त, कुथनी, आँख और खूनका निकलना और पेटका दर्द भी कम हो जाता है और मल दिखायी देता है। परन्तु यदि असावधानीके कारण यह खराबीकी तरफ बढ़ने लगे, तब यही आंतके घेरेमें सूजन (peritonitis) आदि पैदा करके रोगीको मौतकी ओर ले जाता है या संग्रहणी आदि रोगोंमें परिणत कर जीवनको भारमय बना देते हैं।

विभिन्न कारणोंसे आमाशय होता है। किसी-किसी समय प्रबल दस्तके बाद आंव निकलता है। कभी-कभी किस उत्तजक कारणसे

उदरामय होता है, वही बड़ी आंतमें आमाशय उत्पन्न करता है। इसीलिये समय-समयपर सड़ा अथवा उत्तेजक खाद्य एवं कच्चा अथवा सड़ा फल ग्रहण करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है।

किन्तु प्रधानतः विभिन्न श्रेणीके जीवाणुओंसे (Endamoebra Histolytica आदि) यह रोग उत्पन्न होता है। वे बाहरसे जल एवं अन्यान्य खाद्य-पदार्थोंके साथ आकर बड़ी आंतकी श्लैष्मिक झिल्लीके नीचे गर बनाते हैं एवं बड़ी आंतकी दीवालमें कभी-कभी घाव पैदा कर देते हैं। बहुत-सी अवस्थाओंमें आंतके भीतर अवस्थित जीवाणु कोष्ठबद्धता आदि विभिन्न कारणोंसे विषाक्त हो उठते हैं एवं यह रोग उत्पन्न करते हैं। किन्तु शरीर स्वस्थ रहनेपर ये सभी जीवाणु किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं कर सकते। बाहरसे भी जीवाणु सर्वदा ही शरीरमें प्रवेश करते हैं। जब देहमें विभिन्न दूषित पदार्थोंके संचयके फलस्वरूप बड़ी आंत दुर्बल हो जाती है एवं उसमें जीवाणु विस्तार के अनुकूल अवस्था पैदा होती है केवल तभी विभिन्न जीवाणु उसके भीतर रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। इसीलिये मलेरिया व कोष्ठबद्धता आदिसे जो पीड़ित रहते हैं, कुखाद्य व अखाद्य खाकर रहते हैं, हवादार कमरेमें नहीं रहते अथवा मानसिक अवसादसे पीड़ित रहते हैं साधारणतः उन्हें ही आमाशय होता है। शरीर के भीतर पहलेसे ही रोग विस्तारकी ऐसी अनुकूल अवस्था न रहनेपर कोई रोग-जीवाणु ही बड़ी आंत का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। इसलिये आमाशय बड़ी आंतका रोग होनेपर भी स्थानीय रोग नहीं है। वास्तवमें यह समस्त शरीरका रोग है, केवल इसका विशेष प्रकाश बड़ी आंतमें होता है। बड़ी आंतकी बिगड़ी हुई हालतसे पेचिशकी सूचना होनेपर भी, प्रकृति इसे शरीरके जहर निकालनेके रास्तेकी तरह ही व्यवहार करती है। वास्तवमें शरीरमें इकट्ठे जहरके द्वारा जब बड़ी आंतपर हमला होता है और प्रकृति उस जहरको आंतसे होकर ही निकाल देना चाहती है, तब हम उसीको पेचिशकी बीमारी कहते हैं। इसलिये बड़ी आंतके साथ-साथ समस्त शरीरको विकारमुक्त

और उद्दीपित कर देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

क्योंकि आमाशय बड़ी आंतकी बीमारी है इसलिये इलाजके शुरूमें ही फ़ौरन कोष्ठ साफ कर लेना जरूरी है। इसलिये आमाशयका लक्षण प्रकट होते ही, कुछ भी देर न करके, थोड़े गरम पानीमें रोगीको एक डूस देना आवश्यक है। रोगीको दाहिनी करवट लेटकर डूस लेना चाहिये और जितनी देरतक जितना अधिक पानी ले सके उतना लेनेकी कोशिश करनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे पानी खूब धीरे-धीरे चढ़े। जोरसे पानी लेनेसे रोगीके अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। साधारणतया इस प्रकार डूस देनेसे ही आमाशय अच्छा हो जाता है। तो भी बीमारीके शुरू होते ही डूसके बाद पेड़ूपर १५ मिनटोंके लिये तापबहुल गरम-ठंढी पट्टी देकर उसके बाद खूब ठंढे पानीमें भिगोया और खूब अच्छी तरहसे निचोड़ा हुआ कपड़ा लेकर भींगी कमर-पट्टीका प्रयोग करना उचित है या पेड़ूकी लपेट (abdominal heating compress) को इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे मामूली तौरसे दो-दो घंटोंपर बदल देना चाहिये। लेकिन रोगीको यदि बुखार हो तो इसे २० से ३० मिनटपर ही बदल डालना चाहिये। रोगीको जाड़ा या कँपकँपी हो तब पट्टीके भीतर भींगी कपड़ा केवल दो-तीन तह करके रखना ठीक है और पट्टीके ऊपर एक गरम पानीका थैला रख देना आवश्यक है। भीतरके भींगे कपड़ेको जहाँ तक हो सके खूब निचोड़कर रखना चाहिये। तापबहुल गरम-ठंढा भी दिनमें दो बार और यदि बीमारी जल्दी काबूमें न आये तो पहली अवस्थामें दिनभरमें तीन-चार बार प्रयोग किया जा सकता है। पेटके ऊपर इस तरह गरम-ठंढेका प्रयोग करके लगातार पेटकी लपेट प्रयोग करनेसे पेट साफ हो जाता है, दर्द कम हो जाता है और बीमारी जल्दीसे आराम हो जाती है। डूस देनेके बाद पेटपर गरम-ठंढा देकर बार-बार पेटपर पट्टी देना ही आमाशयका मुख्य इलाज है।

परन्तु बीमारी यदि कड़ी हो, तब पेटके इलाजके साथ-साथ समूचे शरीरके इलाजकी जरूरत होती है। ऐसा हो तो रोगीको दिनमें तीन बार गरम फुट-बाथ देकर उसके सारे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना जरूरी है। उसका शिर भी दिनमें तीन बार अच्छी तरह धो देना आवश्यक है। बीमारीकी किसी भी हालतमें रोगीके शरीरको दिनभरमें तीन बार पोंछ देना चाहिये। यदि जाड़ा न होकर रोगीका शरीर जलता हो तो उसे कमर-स्नानका भी प्रयोग कराया जा सकता है। परन्तु ऐसे समय रोगीके दोनों पैरोंको गरम पानीमें डुबाकर रखना जरूरी है और गलेतक समूचे शरीरको गरम कम्बलमें लपेटकर रखना चाहिये।

इन सभी इलाजोंके अलावे रोगीका शिर धोकर और ठंढा रखकर दिनभरमें एक घंटेके लिये दो बार पैरकी पट्टी देनी भी जरूरी है। पट्टी खोल देनेके बाद ही रोगीके शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना चाहिये। रोगका पता लगते ही बिस्तरेपर पड़कर रोगीको पूर्ण विश्राम करना उचित है। उसे किसी भी हालतमें बिछावन छोड़ना न पड़े इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। उसे दस्तके समय भी बेडपैन देना जरूरी है। यह बीमारी मामूली कारणसे से भी लौट-लौट आती है। इसलिये अच्छा हो जानेपर भी कुछ दिनोंतक बहुत सावधानीसे रहनेकी आवश्यकता है।

कुछ दिनोंसे इस रोगमें एमिट्रिन व्यवहृत होता आ रहा है। इसे आमाशयकी विशेष औषधि कही जाती है। इस औषधिके सम्बन्धमें यह कहकर प्रचार किया जाता है कि आमाशयकी चिकित्सामें इसने एक युग प्रवर्तन किया है। किन्तु दुःखका विषय है कि यह औषधि शरीरके भीतर एक विपत्तिजनक विषक्रिया उत्पन्न करती है एवं उसके फलस्वरूप बहुत-सी अवस्थाओंमें दमा, अनियमित हृत्स्पंदन, शीर्णता, मानसिक अवसाद, स्नायविक दुर्बलता, एक्जिमा व पुराने घाव आदि रोग हो जाते हैं (The British Encyclopaedia of Medical

Practice, Vol I, London, 1950)। बहुत-से क्षेत्रोंमें यह हृत्पिंडकी मांसपेशीमें प्रदाह उत्पन्न करता है, हृत्पिंडकी गति वृद्धि करता है एवं लो ब्लड प्रेशर उत्पन्न करता है। किंतु यह देखा गया है कि एमिटिन आमाशय के जीवाणुओंको ध्वंस नहीं करता, यह केवल रोग-लक्षण ही नष्ट करता है (R. B. H. Gvadwohe M. D.—Clinical Tropical Medicine, P. 55, U. S A., 1951)। इसलिये इतने अधिक परिमाणमें औषधियोंके रहने पर भी एकमात्र अमेरिकाके युक्तराष्ट्रमें १ करोड़ ३० लाख व्यक्ति आमाशयसे पीड़ित रहते हैं (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol, IV, p. 259, London, 1950)।

एमिटिन द्वारा रोग आरोग्यकी जो चेष्टा की जाती है डा० क्लिन्ड-क्षेयरकी भाषामें वह एक वंचनामूलक चिकित्सा (deceptive treatment) मात्र है। इससे रोग तो अच्छा नहीं ही होता है वरन् रोगी अधिकतर कठिन रोगसे आक्रांत होता है।

वर्तमान समयमें विभिन्न जीवाणु-नाशक औषध (anti-biotics) आमाशय रोगमें व्यवहृत होती है। उससे सिर्फ राग-जीवाणु ही ध्वंस होते हैं, ऐसी बात नहीं, बल्कि आंतके भीतर जो सब मित्र-जीवाणु शरीरमें रहकर विभिन्न विटामिन उत्पन्न करते हैं और रोग-जीवाणु ध्वंस करते हैं, वे भी ध्वंस होते हैं (Sir John Conybeare, F. R. C. P.—Text-book of Medicine, p. 264, London, 1954)। इसके अलावे, इसके फलस्वरूप बड़ी आंतके भीतर औषध प्रतिरोधक जीवाणु (resistent pathologic bacteria) वृद्धि पाते हैं एवं बड़ी आंतकी सूजन (colitis) पैदा करती है (Howard F. Conn, M. D.—Current, Theapy, p. 8, London, 1954।

अतएव इस रोगमें देशी व विदेशी किसी भी औषधिके ऊपर निर्भर करना उचित नहीं है एवं घरकी सभी औषधियोंको नदीके जलमें

फेंककर प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ करना उचित है।

[३]

पहले २४ घंटेतक नीबूके रसके साथ पानी छोड़कर और कुछ रोगीको नहीं देना चाहिये। ऐसे समय न खूब ठंढा पानी पीना चाहिये न खूब गरम। इससे आंतकी लहरके बढ़नेकी सम्भावना रहती है। बीमारी यदि बहुत कड़ी हो तो दूसरे दिन भी केवल पानीपर ही रह जाना उचित है। इसके बाद जबतक बीमारीकी तेजी रहे तबतक रोगीको छेनेका पानी (whey) या केवल मट्ठा खाकर रहना चाहिये। Less food means more rest for the inflammed intestine—अल्प आहारका अर्थ है प्रदाह-युक्त आँतके लिये अधिक विश्राम।

मट्ठाके ऊपर हमेशा ही अधिक -ध्यान देना उचित है क्योंकि उससे आंतके भीतर अवस्थित जीवाणु ध्वंस हो जाते हैं (L. Everand Napier, Professor, New York University—The Principles and Practice of Tropical Medicine, p. 441, New York, 1946)। पहली हालतमें ऐसा खाद्य देना होगा जिससे आंतमें भुक्त अवशिष्ट नहीं रह जाय। बुखार भी हुआ हो तो उसके छूट जानेके बाद तीन दिनोंतक रोगीको भातकी मांड़में मट्ठा मिलाकर दिया जा सकता है। इस बीमारीमें उत्तम पका केला भी अच्छा पथ्य है। परन्तु केला ऐसा पका हुआ होना चाहिये कि उसका छिलका काला हो गया हो (William Fawcett, B. Sc.—The Banana, P. 111, London, 1913)। केला थोड़ा नमकके साथ खाना लाभदायक है। बीमारीके बिलकुल छूट जानेपर रोगी कच्चे बेलको आगमें पकाकर कुछ दिनोंतक खा सकता है। यह सबेरे खाना चाहिये। इस समय पुराने महीन चावलके भातको पुरानी इमलीकी चटनीके साथ खानेसे बड़ा लाभ होता है। पुरानी इमली और ईखके गुड़को सिलपर इस तरह पीसना चाहिये, जिससे वह बिलकुल रगड़ जाय। इमली जितनी पुरानी हो उतना अच्छा। आमातिसारके

रोगीको सबेरे आगमें दिया हुआ बेल और दोपहरमें भातके साथ पुरानी इमलीकी चटनी ही श्रेष्ठ पथ्य है। इसमें रोगीको शाक-सब्जीका रस भी कपड़ेमें छानकर दे सकते हैं। उसका पेट अच्छा हो जानेपर उसके और सब चीजोंके साथ बैगन, परवल, नेनुआ, तरोई और कद्दू आदि नरम तरकारियां खानी चाहिये। कुछ दिनोंतक उसे दूध, खीर, हलवाईकी दूकानकी चीजें, सभी तरह की तेल घीमें बनी हुई चीजें मछली, मांस, चाय और काफी आदि छोड़ देना आवश्यक है। बीमारीके बाद पेटके नरम रहते हुए कड़ी चीजें खा लेनेसे ही नया आमाशय संग्रहणीमें रूपान्तरित हो जाता है।

वमन

[Vomiting]

पेटका भोजन छोटी आंत (intestine) में न जाकर मुँहके रास्ते बाहर निकल जानेको उल्टी कहते हैं। जब पाकस्थलीकी श्लैष्मिक झिल्लियाँ कोई विषाक्त भोजन या सड़ा हुआ भोजनके संसर्गमें आकर कुपित (irritated) हो जाती हैं तभी उल्टी होती है। अत्यधिक आहार करनेसे भी ऐसा हो सकता है। उल्टी और उल्टीके लक्षणसे यही प्रकट होता है कि पेटमें कोई ऐसी नुकसान करनेवाली चीज है जो प्रकृति छोटी आंतमें नहीं जाने देना चाहती है। इसीसे पेट उल्टी करके उसे बाहर निकालता है। इसलिये जोर करके कैको कभी बन्द नहीं करना चाहिये। बल्कि उल्टीके शुरूमें ढेरसा गुनगुना पानी पीकर ऐसा करना चाहिये कि पेटकी सभी खराब वस्तुएं उठकर उल्टीके साथ निकल जाय। जब कैके साथ और उल्टी न निकले और पेटमें जो उत्तेजना उत्पन्न हो गयी है, उससे रोगी वृथा कष्ट पा रहा हो तभी उल्टीको बन्द करनेका उपाय करना चाहिये।

किसी दूषित पदार्थके रहनेके कारण यदि उल्टी हो रही हो तो पहले ढेरसा गरम पानी पीकर पेटको साफ कर देना चाहिये। प्रकृति

जिसे निकाल फेंकना चाहती हो उसे और करके व्यर्थ शरीरके भीतर रखनेकी कोशिश करनेकी आवश्यकता नहीं है। बहुत गरम पानी उलटीको बन्द करता है और गुनगुना (मामूली गरम) पानी हमेशा उलटी लाता है। इसलिये उलटीके लिये मामूली तौरसे गरम पानी पीना चाहिये। जब पेट अच्छी तरह साफ हो जाय और कैमें केवल पानी निकले और उसका रंग कुछ-कुछ हल्दीके समान पीला रहे उस समय बर्फ चुसनेसे या थोड़ा-थोड़ा बर्फका पानी या खूब ठंढा पानी पीनेसे, उलटी बन्द हो जाती है। उसके बाद पेटके ऊपर गीली मिट्टी, बर्फके पानी या ठंढे पानीमें भिगोये हुये कपड़ेकी पट्टी, अथवा बर्फकी थैली रखनेसे पेटकी उत्तेजना ठंढी पड़ती है और उलटी रुक जाती है। इस अवस्थामें ठंढे पानीका कमर-स्नान बहुत लाभदायक होता है। पेटपर ठंढा देना ही उलटी रोकनेका सबसे बढ़िया उपाय है। परन्तु कभी-कभी तो गरमीके प्रयोगसे ही अधिक लाभ होता है। रोगीके पेटपर बीस मिनटके लिये सेंक देकर या गरम पानीकी थैली (hot water bag) रखकर उसके बाद पेटको चारों ओर पेट और पीठसे घुमाकर भींगी एक कमर-पट्टीके प्रयोग करनेसे बहुत बार उलटी बंद हो जाती है।

किसी-किसीको यह अभ्यास हो जाता है कि खानेके बाद ही उलटी होने लगे और इसमें कैके साथ पित्त निकलता है या खाना पेटमें ठहर ही नहीं पाता। ऐसे रोगीको छातीपर स्तनके नीचेसे नाभितक चौड़ा चारों ओर पीठसे घुमाकर एक भींगे कपड़ेके टुकड़े तीन-चार लपेट लगानेके बाद पेटपर, रोगी जितना गरम सह सके उतने गरम पानीका एक थैला रखकर, एक कम्बलके द्वारा लपेटवाले टुकड़े और इस गरम पानीके थैलेको अच्छी तरह ढक देना जरूरी है। रबड़की थैली न हो तो गरम पानी भरे दो हलके बोतल रखे जा सकते हैं। आधे घंटे बाद गरम थैली हटाकर केवल आधे घंटेतक और कपड़ा लपेटे हुए रहना चाहिये। इसके बाद रोगीको खाना दिया जाना जरूरी है।

रोगीको रोज तीन बार ठंढे पानीसे नहाना जरूरी है। उसको दिनभरमें दो बार कमर-स्नान भी कराना चाहिये। उसे रातभर पेड़ूपर मिट्टीकी पुलटिस भी बाँधकर रखना जरूरी है। जबतक कै होता रहे तबतक नीबूके रस मिले हुए पानीके सिवा रोगीको कुछ भी देना नहीं चाहिये। बहुत अवस्थाओंमें पाकस्थली, आंत, लीवर और पित्ताशयके पुराने रोगसे वमन और वमनकी हालत (nausea) उत्पन्न होती है। इसलिये वमन या वमनकी हालत पुरानी हो जानेसे सर्वदा हो शरीरके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना जरूरी है।

हिचकी

[Hiccough]

छाती और पेटकी जो पेशी (diaphragm) है, उसके सिकुड़ने और नीचे चूक जानेके साथ-साथ, भीतर जो हवाकी धार आती है वह सांस लेनेको नालीके दरवाजे (glottis) के एकाएक बंद हो जानेसे, बंद दरवाजेपर धक्का देकर दूसरे क्षण निकल जानेकी जो चेष्टा करती है, इसीसे हिचकी पैदा होती है। यह दो-एक मिनट ही रहती है, परन्तु कभी-कभी तो दो-चार घंटे या दो-चार दिनोंतक भी रह सकती है। यदि यह अधिक देरतक ठहरे तब बहुत चिन्ताका कारण होता है।

बहुत अधिक खा लेना, वायुफूलना, अधिक शराबखोरी, कई तरहकी दस्तकी बीमारी या बहुत तेजीसे खानेके कारण भोजन न पचनेसे ही यह बीमारी होती है। बहुत बार तो यह पेट, आंत और पेड़ूके अलग-अलग रोगों, गुर्दे, फुसफुस और दिमागकी बीमारियों और इनफ्लूएंजा, सन्निपात बुखार और मूत्ररोध (uraemia) आदि रोगोंमें भी पैदा हो जाती है। जब किसी नयी बीमारीके साथ यह पैदा होती है तब तो दवामें जो खराब होता है उसकी गरमीसे यह होती है।

बहुत बार तो एक ग्लास ठंढा पानी पी लेनेसे ही यह गायब हो जाती है। कभी-कभी जोरसे सांस खींचकर जितनी देरतक हो सके

उसको रोककर रखा जाय तो भी यह रुक जाती है। इस तरह चार बार करना होता है। कभी-कभी नाकमें बत्ती करके फोंकनेसे भी हिचकी बंद हो जाती है। एक कपड़ेको रस्सी जैसा बनाकर उसको कमरके ऊपर और पेटकी चारों ओर बांधकर दबानेसे भी हिचकी तुरंत बंद हो जाती है। साधारणतया पेटपर इस तरह दबाव पड़नेसे ही हिचकी गायब हो जाती है। आवश्यक हो तो कुछ जोरसे दबावें। यदि हिचकी बहुत दुःसाध्य हो तो उसको बंद करनेके लिये एक रुमाल लेकर उसके द्वारा रोगीकी जीभको बाहरकी ओर खींचकर रखना चाहिये। दो-तीन बार ऐसा करनेसे ही किसी भी प्रकारकी हिचकी बंद की जा सकती है। बीमारी कठिन हो तो बीच-बीचमें रोगीको बर्फ चूसनेके लिये देना चाहिये। बर्फका टुकड़ा भी वह निगल सकता है। पेटके ऊपर गीली ठंढी मिट्टी चढ़ाने या भींगा हुआ कपड़ा रखने या बर्फकी थैली बांधनेसे भी हिचकीके लिये बड़ा लाभदायक होता है। इस बीमारीमें कटि-स्नान और सीज-बाथ बहुत उपकारी होते हैं। दिनभरमें दो बार कमर-स्नान और चार-पांच बार सीज-बाथ लिया जा सकता है। रोगीकी पीठकी रीढ़को बार-बार ठंढे पानीसे धोना चाहिये। यदि ठंढकके प्रयोगसे भी हिचकी बंद न हो तब पन्द्रह बीस बार थोड़ा-थोड़ा गरम पानी पीना (sip) उचित है। इससे भी कभी-कभी हिचकी आपसे आप बंद हो जाती है। बहुत बार पेड़ूपर गरम सेंक या गरम पानीका एक डूस देनेसे ही हिचकी बंद हो जाती है। रोगीको स्नान करा देनेसे से भी प्रायः हिचकी आपसे आप गायब हो जाती है। रोगीके मनको रोग-चिन्तासे दूसरी ओर लगा देना चाहिये।

पेट दर्द

[Pain in the abdomen]

आंतोंके दर्दको ही पेट दर्द कहा जाता है। किन्तु पेट दर्द होनेपर

यह जो हमेशा एक ही कारण से होता है; ऐसा कभी भी ख्याल नहीं करना चाहिये। बहुत-सी अवस्थाओंमें कोष्ठबद्धताके कारण पेट दर्द होता है। कभी-कभी दर्द होता है वायुके कारणसे। आमाशय होनेपर प्रायः ही पेटमें दर्द होता है। कृमिका रोगी प्रायः ही दर्दसे तकलीफ पाता है। आंतमें प्रदाह उत्पन्न होनेपर ज्वरके साथ पेट दर्द आरम्भ होता है। अंत्र-द्वार बंद (intestinal obstruction) होने पर रोगी दर्दसे परेशान हो जाता है। लीवर, मूत्राशय, अंत्रपुच्छ, सिकाम (caecum) व उदर-वेष्टनीकी झिल्लीके प्रदाहको बहुत-सी अवस्थाओंमें साधारणतः पेट दर्द कहकर भ्रम किया जाता है। पित्त-पथरी, मूत्र-पथरी एवं स्त्रियोंके मासिक धर्मके समय भी पेटमें दर्द होता है।

इसीलिये पेट दर्दको कभी भी तुच्छ रोग समझना उचित नहीं एवं पेट दर्द होनेपर दर्द क्यों हुआ है इसके संबधमें भलीभाँति अनुसंधान करना कर्तव्य है।

बहुत बार वेदना-निवारक व शमन-मूलक औषधि द्वारा शीघ्र वेदना बन्द हो जाती है। किन्तु इसके फलस्वरूप कभी-कभी रोगीको बहुत नुकसान होता है।

हमारे शरीर-रूपी दुर्गपर आई हुई विपत्तिको प्रकाश करनेके लिये प्रकृतिके पास वेदना ही अन्यतम भाषा है। वेदना स्वयं एक रोग नहीं है किन्तु आभ्यन्तरिक विश्रृङ्खलताकी बात बतानेके लिये यह प्रकृतिका अव्यर्थ संकेत है। अन्यान्य रोगोंकी तरह ही वेदनाको हमलोग शत्रु समझते हैं, किन्तु यह हमारे शरीर-रूपी दुर्गमें एक प्रकार पहरा देनेवाले कुत्तेकी तरह है। देहके अन्तर विशेष कोई विश्रृङ्खलता उपस्थित होते ही यह प्राणपणसे चीत्कार कर बतलाती है कि भीतरमें रोग हुआ है एवं समयानुसार रोगकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। औषधि देकर स्नायुओंकी अनुभव-शक्ति ह्रास करके दर्द बंद किया जाता है, किन्तु उससे दर्दका कारण नष्ट नहीं होता—यह चोरके

घुसनेपर जो कुत्ता भूंककर बतलाता है कि चोर आया है उसीकी हत्या करनेके बराबर है। अतएव दर्दको दूर करनेके लिये जो औषधि व्यवहृत होती है इ सामयिक रूपसे दर्द दूर करनेपर भी आफत बढ़ाती है। समय-समय पर वेदना-निवारक औषधि दीर्घ दिनोंतक व्यवहार करनेपर जो रोग होता है, वह वेदनासे हजारों गुणा भयंकर होता है। जो विष शरीरमें डालकर दर्द बंद किया जाता है, वह प्रकृतिके रोग आरोग्य करनेकी क्षमता को भी समान रूपसे दुर्बल कर देता है। इसलिये वेदनाको नष्ट करना ही वेदनाकी चिकित्सा नहीं है; जिन कारणोंसे वेदना उत्पन्न होती है, उन्हें दूर करना ही वेदनाकी वास्तविक चिकित्सा है। उन कारणोंके दूर होनेपर वेदना कारणके अभावमें स्वयं मिट जाती है।

पेट दर्दका मूल कारण निर्णय करना साधारण व्यक्तिके लिये सर्वदा सहज नहीं होता। किन्तु एक ही प्रकारकी चिकित्सा कर प्रायः सभी क्षेत्रोंमें उपकार लाभ किया जा सकता है।

पेट दर्द होनेपर, चाहें जिस कारणसे भी हो, पहले ही बिना कुछ विवेचना किये नीबूके रसके साथ गरम जल (१०२° से १०६°)से रोगीको एक डूस दे देना उचित है। रोगीकी उत्कट अवस्थामें सुबह-शाम दिनमें दो बार भी डूस दिया जा सकता है। डूस देनेके पहले पेटपर सर्वदा ही गरम-ठंढा देना उचित है। दो-तीन मिनट गरम सेंकके बाद दो-तीन मिनट ठंढा देकर एक साथ कमसे कम तीन बार इसे प्रयोग करना कर्तव्य है। उसके बाद बार-बार बदलकर रोगीसे पेटपर ढकी हुई लपेट रखना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। पेट जितना गरम रहेगा पट्टी उतनी ही मोटी तथा ठंढी होनी आवश्यक है। यह हमेशा आराम देह होना चाहिये। साधारणतः आधे घंटेसे एक घण्टेतक पट्टी रखकर पट्टी गरम हो जानेपर बदल देना उचित है। यह एक साथ ही तीन-चार बार प्रयोग करना कर्तव्य है।

यदि रोगीका पेट खूब गरम हो या रोगीको बुखार हो तो पेट साफ करनेके बाद रोगीके पेटपर भीगे कपड़ेकी ढकी हुई लपेटके

बदले मिट्टीकी पट्टी प्रयोग करना उचित है। ज्वर रहनेपर हमेशा ही मिट्टी देना कर्तव्य है।

आवश्यकता होनेपर दिनमें दो बार इस प्रकारसे चिकित्सा की जा सकती है। रोगीको हर रोज स्नान करना कर्तव्य है अथवा सिर धोकर तौलिया-स्नान प्रयोग करना उचित है।

पेडूके दर्दमें पहली अवस्थामें उपवास करना ही कर्तव्य है। उसके बाद मट्ठा, डाब (कच्चा नारियल) का पानी व छेनेका पानी आदि तरल खाद्य खाकर रहना चाहिये। किन्तु पहलेसे ही नीबूके रसके साथ प्रचुर जलपान करना उचित है।

इससे जो केवल पेट दर्द ही आराम होता है सो नहीं, कठिनसे कठिन रोगोंका आक्रमण भी इस साधारण चिकित्सा द्वारा व्यर्थ हो सकता है एवं सभी आवस्थाओंमें ही रोगीका उपकार होता है।

बेसिलरी डिसेन्ट्री

(Bacillary Dysentery)

यह एक प्रकारका आमाशय ही है। आमाशयकी तरह यह भी सर्वदैहिक रोग है। इस बीमारीकी साधारणतया तीन अवस्थाएं होती हैं। प्रायः पहले कई बार पतला पाखाना होकर बीमारी शुरु होती है। उसको बाद खून और आंव मिला हुआ जल निकलता अन्तमें दस्तमें मल नहीं रहता केवल आंव और खून ही रहता है। मलत्याग करनेके समय बड़ा कष्ट होता है और पेटमें बड़ा दर्द होता है। बीमारी यदि हल्के वेगसे आई तो दिनभरमें दस-पन्द्रह बारसे अधिक पैखाने जानेकी जरूरत नहीं होती। परन्तु आक्रमण कठिन होनेपर एक घण्टेके भीतर ही कई बार पैखाने होते हैं और सर्वदा मल त्याग करनेकी इच्छा बनी रहती है। शरीरकी गरमी कभी-कभी बढ़ जाती है, कभी नहीं बढ़ती है। नाड़ीकी गति कुछ बढ़ जाती है, जीभ गन्दी रहती है, भूख मालूम नहीं होती और कभी-कभी उलटी करनेका

उद्वेग होता है। यदि इसी अवस्थामें जल्दीसे इलाज हो तो बड़ी आंतकी बहुत क्षति होने नहीं पाती। बीमारी छूटनेका पहला लक्षण यही है कि दस्तमें मल दिखाई दे, मल त्याग करनेकी संख्या कम और दर्द कम हो जाय। परन्तु यदि बीमारी बढ़ रही हो तो दूसरी अवस्थामें दस्तका रंग मांसके धोये हुए पानीके समान हो जाता है। कम या अधिक बुखार रहता है। वह शामको बढ़ता है। नाड़ी तेज, कमजोर और कोमल हो जाती है। जीभ सूखी-सूखी, भूखकी कमी, प्यास, कैकी इच्छा आदि लक्षण दिखाई देते हैं। पेशाब बहुत थोड़ा होता है। शरीरका वजन भी जल्दी कम होने लगता है। इस अवस्थासे अच्छे होनेपर भी दस्तमें मल दिखाई पड़ता है और बीमारीके दूसरे लक्षण भी कम होने लगते है। रोगीके शरीरको अच्छा होनेमें बहुत समय लग जाता है और थोड़ी बदपरहेजी होनेपर भी बीमारी फिर लौट आ सकती है।

तीसरी अवस्थामें आंतके भीतर मांसका गलना (gangrene) शुरू हो जाता है, मलद्वार दुर्बल हो जाता है और अज्ञातरूपसे मल निकल जाता है।

यह बीमारी कितने प्रकारकी होती है, उसका अन्त नहीं है। बीमारीके शुरूमें ही बिछावनपर लेटकर पूरा-पूरा आराम करना चाहिये— Bed rest often suffices to relieve all the symptoms in mild cases—अगर रोग साधारण हो तब केवल बिछावनपर रहकर विश्राम लेनेसे ही साधारणतः सभी रोग-लक्षण गायब हो जाते हैं (Hobert A. Reimann, M.D.— Treatment in General Practice, Vol. 1, P. 104, Philadelphia, 1948)। मलत्याग करनेके लिये रोगीको बिछावनपर बेडपैन देना जरूरी है या लायक क्लाथ रखकर उसपर कागज बिछा देना चाहिये। रोगीके मलको विशेषरूपसे नष्ट करना चाहिये। पहले कई रोज रोगीको सिर्फ पानी पीकर उपवास करना जरूरी है। रोगीको बार-बार खाना देनेसे बार-बार टट्टी भी होती है (Michael

G. Wohl, M.D, F.R.C.P.—Internal Medicine, P. 159, Philadelphia, 1951)। रोगीको तृतीय या चतुर्थ सप्ताह तक दूध नहीं देना चाहिये किन्तु पतला मठ्ठा देना उचित है। खास तौरपर कठिन आमाशयके समान ही इसकी चिकित्सा है, और पथ्य-विधि भी उसी रोगके अनुरूप है।

पाकस्थलीकी सूजन

[Gastritis]

यह बीमारी हर तरहकी होती है। वमन, वमनकी हाजत, वमनके बाद आराम मिलना, पेट दर्द, दबानेसे दर्द मालूम होना, पाकस्थलीमें अस्वस्थता, पित्तका वमन, भूखकी कमी, खट्टी डकार, गलेकी जलन, पाकस्थलीका फूल जाना, ज्यादा प्यास, मैल जमी हुई जिह्वा, गन्दी श्वास, शिर-दर्द और कभी-कभी बुखार आदि इस रोगके साधारण लक्षण हैं। साधारणतया दो-तीन दिनतक इस बीमारीका वेग रहता है।

खाने-पीनेकी गड़बड़ीसे ही यह बीमारी उत्पन्न होती है। ज्यादा खाना, बार-बार खाना, अपचवाला पदार्थ खाना, बिना चबाये हुये खाना, ज्यादा गरम व ठंढी चीज खाना, विषैली चीजें खाना, मद्यपान और सड़ी हुई चीजें खाने आदिके कारणसे यह रोग पैदा होता है।

रोग प्रकाश होते ही, रोगकी चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिये। पहले ही उबाले हुए नीम पानीसे डूस देकर रोगीका पेट साफ कर लेना जरूरी है। इसके बाद पाकस्थलीको स्वस्थ करनेके लिये ध्यान देना चाहिये।

जब रोगीको वमनकी हाजत रहे या रोगीका वमन चालू रहे और वमनके साथ खाद्य-पदार्थ, पित्त और कफ आदि बहुत-से निकल आने लगें तब किसी ढंगसे वमन बन्द करना नहीं चाहिये। अगर वमन चालू रहनेसे भी पेट साफ न हो और वमनकी हाजत चालू रहे तब काफी गुनगुना पानी पीकर वमन करके पेट खाली कर लेना जरूरी है (John H. Willard; M.D., F.A.C.P.—Digestive

Diseases in General Practice, pp. 194-195, Philadelphia, 1951)।

इसके बाद दिनमें तीन दफे पेटके ऊपर गरम-ठंडा लेकर हमेशाके लिये पेटके ऊपर गीला गमछा रखना चाहिये। अगर पेट गरम रहे तब मिट्टीकी पुलटिस व्यवहार करना आवश्यक है। इससे दर्द और वमन आदि रोगके लक्षण गायब हो जाते हैं।

बुखार रहनेसे और बुखार न रहे तब भी दिनमें तीन-चार दफे रोगीका शिर धोकर सारा शरीर भींगे गमछेसे पोंछ देना आवश्यक है। रोगीका हाथ-पैर हमेशाके लिये गरम रखना चाहिये।

पाकस्थली परिष्कार होनेपर भी रोगीका वमन चालू रहे तो, रोगीको बर्फ चूसनेको दिया जा सकता है। पहले दिन रोगीको पानी छोड़कर और कुछ भी नहीं देना चाहिये (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 6, P. 8, London, 1950-1)। इसके उपरान्त मट्ठा और फलका रस दिया जा सकता है। अगर पाकस्थलीमें अम्लताकी हालत रहे तब उस समय खट्टा फल नहीं देना चाहिये। यहांतक कि नीबू भी नहीं। इसके अलावा मौसम्बी, खीरा, सफेद जामुनका रस एवं डाभका पानी दिया जा सकता है।

अपेंडिसाइटिस

[Appendicitis]

[१]

छोटी आंत (small intestine) और बड़ी आंत (colon) के जोड़के (caecum) निचले भागमें हमलोगोंकी आंतकी पूँछ (appendix) रहती है। इसका एक मुँह एक पतली छोटी थैलीके समान है। लम्बाईमें यह करीब-करीब साढ़े तीन इंच है, परन्तु कभी-कभी नौ इंचतक हो जाता है। यह केवल एक-चौथाई इंच मोटा होता है।

परिपाक यंत्रका यह एक अंग है, परन्तु इसे परिपाक यन्त्र नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आजतक यह पता नहीं लग सका कि शरीरके भीतर इसका क्या काम है। इसी आंतकी पूँछकी जो सूजन है, उसे अन्त्र-पुच्छकी सूजन या अपेंडिसाइटिस कहते हैं। बहुत अवस्थाओंमें अन्त्र-पुच्छको केवल श्लैष्मिक झिल्लीमें ही सूजन होती है, वह आसानीसे आरोग्य हो जाती है किन्तु कभी-कभी अन्त्र-पुच्छकी तमाम तन्तुओंमें ही सूजन फैल जाती है।

पहले पेडूकी तीव्र वेदनामें इस बीमारीका पता मालूम होता है। यह प्रायः हठात् आरम्भ होती है, परन्तु अधिकतर यह धीरे-धीरे प्रकट होती है। कभी-कभी पेटमें इधर-उधर दर्द करता है, लेकिन अन्तमें कुछ ही घण्टोंके भीतर पेडूकी दाहिनी ओरके निचले भाग एपेंडिक्समें यह जम जाता है और इस जगह गांठकी तरह ऊंचा और कड़ा होकर शरीर फूल उठता है। इस स्थानपर दबानेसे रोगीको बहुत वेदना होती है। दर्दके बाद ही जाड़ा-सा लगकर शरीरकी गरमी बढ़ जाती है। साधारण आक्रमण होनेपर शरीरकी गरमी ९९° से १०२° तक हो जाती है परन्तु आक्रमण प्रबल हो तो १०५° तक हो सकती है। दर्द शुरू होनेके बाद प्रायः रोगीको उल्टी या उल्टीका उद्वेग आरम्भ होता है। उसकी जीभ गन्दी, सांस बदबूदार और प्रायः कब्जियत भी रहती है। यदि पहले २४ घण्टेमें रोगीकी उल्टी बन्द न हो, शरीरकी गरमी बढ़ती जाय, नाड़ीकी चाल १०२ से ऊपर हो जाय, पेडू और फूला हुआ तथा कड़ा मालूम हो तब उसे ही रोगको बहुत कड़ा समझना चाहिये। यदि रोग खूब खराब हालतमें आ पहुंचता है, तो पेटके भीतर आंतकी पूछ फट जाती है और उससे पीब आदि निकलकर पेटको लपेटनेवाली झिल्लीकी सूजन (peritonitis) पैदा कर देती है। इस हालतमें रोगीको बचना मुश्किल हो जाता है। साधारणतया इस बीमारीका भोगकाल तीनसे पाँच दिनोंतक रहता है। सौमें ५० हालतोंमें यह पुरानी बीमारीमें बदल जाती है और बार-बार नयी होकर लौटती रहती है।

अपेंडिसाइटिसको आधुनिक पाश्चात्य सभ्यताका रोग कहा जाता है। असभ्य जातियोंमें तथा जो कम मांस खाते हैं, उनमें यह रोग कदाचित् ही कभी देखा जाता है (W. H. C. Romanis, M. A., M. B., F. R. C S., and Philip H. Mitchiner, M. D., F. R. C. S.—The Science and Practice of Surgery. p. 705, London, 1962)। पिछले ३० वर्षोंमें पाश्चात्य देशोंमें इस रोगने नगरवासियोंके भीतर ज्यादातर वृद्धि पाई है। इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि कोष्ठबद्धता ही इस रोगका एक दूसरा प्रधान कारण है। जिन जीवाणुओंको अन्त्र-पुच्छ प्रदाहका कारण कहा जाता है, वे सभी स्वस्थ व्यक्तियोंके आंतोंके भीतर दिखाई पड़ते हैं। कोष्ठबद्धताके फलस्वरूप जब अन्त्र-पुच्छमें खूनका आवागमन बन्द हो जाता है, तब बहुत अवस्थाओंमें यह रोग हो जाता है (E T. Bell, M. D.—A Text-book of Pathology, 623, Philadelphia. 1956)। मल बहुत दिनोंतक आंतके भीतर इकठ्ठा हो तो यह आंतके भीतरकी झिल्लीमें सूजन पैदा कर देता है। यही सूजन जब आंतकी पूछतक फैल जाती है तभी उसको अपेंडिसाइटिस या अन्त्र-पुच्छकी सूजन कहते हैं। पहले प्रायः कभी आंतकी पूछमें सूजन पैदा नहीं होती। साधारणतया यह तो छोटी-बड़ी दोनों आंतोंके जोड़में ही पहले पैदा होती है और उसके बाद यह अन्त्रपुच्छतक फैल जाता है कभी-कभी आंतकी पूछके भीतर कठिन मलका चूर्ण प्रविष्ट हो जाता है, इससे भी सूजन पैदा हो जाती है। परन्तु बहुत अधिक कब्जियत रहनेसे ही इस बीमारीका होना सम्भव होता है। साधारणतया जो लोग बहुत मांस खाते हैं उन्हें ही प्रायः यह बीमारी होती है। क्योंकि मांस बहुत कब्जियत पैदा करती है। तो भी इस बीमारीको स्थानिक बीमारी समझना कभी उचित नहीं है। कब्जियत होनेसे ही सबको यह बीमारी हो जाया करे, ऐसा नहीं होता। जिनका शरीर पहलेसे ही कूड़ा-करकटसे भरा होता है, केवल उसीको यह बीमारी होती

है कब्जियत, ठंढा लगना और आघात आदिसे हो इसकी सूचना मिलती है, परन्तु शरीरमें भरे जहरीले पदार्थों द्वारा जब उसपर आक्रमण, होता है तभी आंतकी पूंछमें सूजन पैदा होती है। इसलिये, इन्फ्लूएंजा, टी बी अथवा टायफायडसे बहुत अवस्थाओंमें यह रोग होता है।

इस बीमारीमें कई प्रकारके कीड़े दिखाई देते हैं। परन्तु किसी भी कीड़ेको इस रोगका कारण समझना भूल है। When congestion and inflammation of the appendix or neighbouring organs have been started, the condition is continued and augmented by the presence of various bacteria—जिस समय आंतकी पूंछ और उसके समीपस्थ अंगोंमें खूनकी अधिकता और सूजन शुरू होती है, तभी इस स्थानपर अवस्थित विभिन्न प्रकारके कीड़े इस अवस्थाको चालू रखते हैं तथा उसको बढ़ाते हैं (John D. Comrie, M. A., M. D., F.R.C.P.—Black's Medical Dictionary, p. 65)। अर्थात् कीड़े सब समय सूजन पैदा करें, ऐसा नहीं होता। अधिकतर यह होता है कि सूजन पैदा हो जानेसे ही तरह-तरहके कीड़े अपने अनुकूल क्षेत्र पाकर बढ़ जाते हैं और शरीरकी हालत बिगड़ देते हैं।

[२]

अपेंडिसाइटिसके रोगीको अस्पतालमें ले जाते ही डाक्टर लोग उसकी आंतकी पूंछको काटकर छोड़ देते हैं। परन्तु जिसलिये अन्त्र-पुच्छ में ही इस रोगका मूल कारण निहित नहीं है, इस कारण १०० में ८० रोगोंमें यह काटना बेकार होता है। छोटी और बड़ी आंतके संगम स्थानके (caecum) समीप विभिन्न कारणों से जो सूजन पैदा होती है, बहुत बार उसे ही आंतकी पूंछकी सूजन मान ली जाती है और पुच्छ बेकार काट दिया जाता है। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि चीर-फाड़के बाद भी सूजनकी हालतमें बहुत हेर-फेर नहीं होता। क्योंकि कब्जियत और खूनकी बिगड़ी हुई हालत ही इस बीमारीका

सबसे बड़ा कारण है। मुर्दा लाशको काटनेके समय देखा गया है कि बहुतेरी आंतोंमें बहुत पुरानी सूजनके चिह्न मौजूद हैं (Encyclopaedia Medica, Vol. I. p 635) इसलिये यह सिद्ध नहीं हुआ कि आंतकी पूछमें सूजन होते ही उसे काट फेंकना चाहिये। अगर कोई चिकित्सा ही न किया जाय तब भी अन्त्रपुच्छ प्रदाहके बहुत से रोगी आप-से-आप आरोग्य लाभ करते हैं (Frederick W. Price, M. D., F. R. C. P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 710, London, 1947)। यदि रोग जम जाने (establish) के पहले, अकाल में ही उसपर अपरेशन किया जाय तो उससे रोगीको मौत भी हो सकती है (W. H. C. Romanis; M. D., F. R. C. S.; and Philip H. Mitchiner, M. B., F. R. C. S.—The Science and Practice of Surgery, Vol. II, p. 713, London, 1952)। जबतक सूजन का विस्तार न हो तबतक भयका कोई कारण ही नहीं हो सकता है बल्कि अन्त्र पुच्छको काटकर बाद देनेकी कोशिश करनेसे पेटकी थैली (peritonial cavitiy) में ही सूजनका विस्तार हो सकता है (Eric L. Farquharson, M. D., F. R. C. S.—Text-book of Operative Surgery, p. 541, London, 1954)। यदि पहलेसे पेट साफ रखकर प्रकृतिके नियमोंका अनुसरण करे तो कभी किसीको अन्त्र-पुच्छकी सूजन नहीं हो सकती। यदि हो जाय तो प्राकृतिक नियमोंसे जरूर ही सकता है। किन्तु चीर-फाड़ करनेसे भी सौमें ५ से १० रोगी जरूर ही मौतके मुँहमें चले जाते हैं (Encyclopaedia Medica, Ibid., p. 635)।

इस रोगके लक्षणोंसे पता लग जाता है कि इसका इलाज क्या होगा। रोगीके पेटमें दर्द रहता है, जो बताता है कि पहले ही डूस देकर पैखाना साफ कर लेना चाहिये। कै और कैके उद्वेगसे प्रकट होता है कि पेटमें कुछ भी डालना नहीं चाहिये अर्थात् उपवास करना

चाहिए और पेड़ूका कड़ा होना यह निर्देश करता है कि इसे आराम करनेकी आवश्यकता है। आरम्भमें इस रोगका यही इलाज है।

इस बीमारीके इलाजमें पहले ही जरूरी है कि गुनगुने पानीसे और बहुत कम पानीसे, दो-तीन बार रोगीकी बड़ी आंत (colon) को साफ कर दिया जाय। अधिक पानी देना इसलिये मना किया जाता है कि इससे आंतकी पूंछपर अधिक दबाव पड़नेका डर रहता है। बादमें भी जबतक हालत अच्छी न हो जाय, रोगीको दिनमें दो बार डूस दिया जाना जरूरी है। परन्तु इस बीमारीमें कभी भी रोगीको जुलाब देना अच्छा नहीं है। बहुत बार ऐसी दवाके प्रयोग करनेके कारण आंतकी पूंछमें छेद हो जाता है और उससे रोगी मौतके मुँहमें चला जाता है (Frederic W. Price, M. D., F. R. C. P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 711)। डूस देनेके बाद पेटके नीचे दाहिनी ओर दिनमें आधे घंटेके लिये तीन बार गरम-ठंढा देकर बाकी समय मिट्टीकी पुलटिस प्रयोग करना चाहिये। मिट्टीकी पुलटिसके सूखनेके पहले ही उसे बदल देना जरूरी है। मिट्टीकी पुलटिस देते ही रोगीका दर्द कम हो जाता है और उसे बड़ा आराम मालूम होता है। यह पुलटिस बड़ी और आधी इंच मोटी प्रयोग करनी चाहिये। परन्तु सदा ठंढी मिट्टीकी पुलटिस प्रयोग करनेसे उस स्थानपर एक प्रकारकी कमजोरी (depression) आ जाती है। इसलिये उस स्थानपर दिनमें तीन बार गरम-ठंढा देना बहुत आवश्यक है। इसके बाद, सूजन जब कम हो जायगा तब रोगीको मिट्टीकी पुलटिस अच्छी नहीं लगेगी। इसलिये उस समय भींगे कपड़ेके टुकड़ेकी ढकी पट्टी लगानी आवश्यक है और सूजन कम होते जानेके साथ ही साथ, उसे अधिक देर कर बदलते जाना चाहिये। जबतक सूजन बिलकुल ही कम न हो जाय, तबतक उसके पेटपर दिनभरमें दो बार गरम-ठंढा प्रयोग भी करना आवश्यक है।

पहली अवस्थामें पेड़ूपर ठंढा देनेके समय हर बार एक-एक घंटेके हिसाबसे दिनभरमें तीन बार पैरकी पट्टी (foot pack) का प्रयोग

करना कर्तव्य है। इसकी विशेष आवश्यकता है। रोगीके सिरको दिनभरमें तीन बार धोकर उसे तीन बार तौलिया-स्नान कराना उचित है। हर बार पैरकी पट्टी खोलनेके बाद तौलिया-स्नान कराना चाहिये।

आरम्भसे ही इलाजका यह सिलसिला ठीक-ठीक जारी रखनेसे प्रायः सभी रोगियोंको अच्छा किया जा सकता है। पुरानी बीमारीको भी इस इलाजसे आसानीसे दूर कर सकते हैं। सूजनके छूट जानेपर रोग जिससे कि पुरानी हालत न ले ले और बार-बार लौटकर न आता रहे, इस बातके लिये ध्यान देना आवश्यक है। इसलिये कुछ दिनोंतक रोगीको डूस, भीगी कमर-पट्टी, हिप-बाथ, धूप-स्नान, वाष्प-स्नान और बीच-बीचमें उपवास करते रहना आवश्यक है। रोगीको हमेशा पेट साफ रखना चाहिये।

[३]

इस रोगमें पहले आवश्यक है खाने-पीनेका संयम। जिस समयतक रोगीके शरीरकी गरमी स्वाभाविक न हो जाय, उस समयतक रोगीको पानी या खाना मुँहसे नहीं देना चाहिये। मुँहसे कुछ भी डालनेसे वह आंतमें लहर (peristalsis) पैदा करता है और उससे सूजनवाली जगह फट आ सकती है। मुँहसे कुछ न डाला जाय तो आंतकी लहर रुक जाती है, छोटी और बड़ी आंतके संगम स्थानमें कोई नयी वस्तु नहीं जा सकती है और उसका आक्रान्त भाग आराम पाता है। एक डाक्टर (Dr. Ochsner) ने कहा है, "रोगीको यदि भयंकर सूजन (catarrhal appendicitis) हो और उसकी आंतकी पूंछमें छेद भी हो जाय या उसमें मांसकी सड़न (gangrene) भी पैदा हो जाय, तब भी वह निश्चित रूपसे अच्छा हो सकता है, यदि बीमारी शुरू होनेके साथ ही वह मुँहसे कुछ भी ग्रहन न करे (H. S. Carter M. A., M. D.—Nutrition and Clinical Dietetics, (p. 418)। हेरी बेनजामिनने कहा है कि प्राकृतिक चिकित्साके द्वारा

हजार-हजार लोगोंने प्रधानतः केवल उपवासके फलस्वरूप इस रोगसे आरोग्य लाभ किया हैं (Everyboy' Guide to Nature-cure, p. 264, London, 1952)। परन्तु इसके लिये दूसरे रास्तेसे रोगीको जल और तरल पदार्थ देना बन्द न करना चाहिये। रोगके शुरुसे ही उसे हर घंटे पिचकारीके सहारे एक औंस (आधी छटांक) के करीब पोनेका पानी उसके पेटके भीतर पैखानेके रास्तेसे पहुंचा देना चाहिये। पानीके साथ थोड़ा नीबूका रस मिला देना जरूरी है। बुखार रहनेतक ऐसा ही करना चाहिये। बीमारीका हमला अगर हलके ढंगका हो तो उसे थोड़ी-थोड़ी देरपर चायके चम्मचके बराबर ठंढा पानी हमेशा पीनेको दिया जा सकता है। बुखार रुक जानेपर खूब थोड़ा-थोड़ा क्रमशः नीबूका रस या दूसरे-दूसरे फलोंका रस मुंहसे खिलाना उचित है। इसके बाद तीन-चार दिनोंतक तरल पथ्य देनेके बाद उसे पुराने चावलका भात आदि देना चाहिये।

बीमारी छूट जानेके बाद भी खाने-पीनेके बारेमें रोगीको विशेषरूपसे सावधानी रखनी आवश्यक है। उसे चाहिये कि मांस और जो सब खाद्य कब्जियत पैदा करानेवाले हैं, उन्हें सदाके लिये त्याग दे। उसे नियमित समयपर हलका भोजन करना चाहिये और कठिनाईसे पचनेवाली चीजें तथा जल्दीबाजीसे खानेकी आदत भी उसे विशेषरूपसे त्याग देनी चाहिये। क्योंकि खाने-पीने की भूलसे यह बीमारी फिर लौटकर आ सकती है। रोगीको प्रतिदिन बहुत-सा फल, सलाद और उबाली हुई तरकारी खाना जरूरी है।

पेटसे खून गिरना

[Haematemesis]

पाकस्थलीके भीतरसे उठकर नाक और मुंहसे निकले तो उसे पेटसे खून गिरना कहते हैं।

पाकस्थलीसे जो खून, निकलता है उसके साथ पाकस्थलीके रससे

(gastaic juice) मिलनेसे उसका रंग थोड़ा-सा काला होता है। अधिकतर इसमें खाये हुए भोजनका कुछ अंश भी मिला होता है और इसमें खूनका थक्का (clot) दिखाई पड़ता है। खूनकी उलटी होनेके पहले सदा पेटमें दर्द, उलटी या उसका उद्वेग आदि बना रहता है। कैके साथ बहुत-सा खून निकलता है। फुसफुससे जो खून निकलता है उसीके साथ इसको भूल नहीं करनी चाहिये।

अधिकतर पाकस्थलीका घाव (gastric ulcer) ही इसका प्रधान कारण होता है। इस स्थानके भीतर यदि कहीं नस पड़ जाती है तो उसीमें खून समाकर वह मुंहसे बाहर होता है। पाकस्थलीकी सूजन और पाकस्थलीका कैन्सर आदि रोगोंके या पित्त-पथरीके आंतमें उतर जानेके कारणसे भी इस तरहका खून निकल सकता है। कभी-कभी यह खून गलेकी नली या डिउडेनमसे भी आता है।

बीमारी जैसे ही दीख पड़े रोगीके शरीरके कपड़ोंको ढीला करके उसे बिछावनपर लिटा देना चाहिये। उसे लिटा देनेसे खूनका दबाव कम हो जाता है। उसे पीठके बल चित्त लेटे रहना ही अच्छा है। रोगीको पलंगपर लिटाकर उसके पेटपर खूब ठंढी गीली मिट्टीका लेप चढ़ाना या भींगी तौलियाको दो-तीन तह मोड़कर उसपर रख देना तथा उसपर बर्फका थैला रखना उचित है। थैला न हो तो बर्फके चूरेको तौलियाके ऊपर फैलाकर ऊपरसे एक और तौलिया रख देना चाहिये। इस समय रोगी शिरको ठंढा रखकर उसके दोनों पैरोंमें पैकका प्रयोग करना आवश्यक है। उसके शिरको दिनमें दो बार धोकर दो बार उसे तौलिया-स्नान भी कराना जरूरी है। बीच-बीचमें बर्फका टुकड़ा उसे चुसनेको देना या बर्फका पानी चम्मचके द्वारा देना उचित है। यह बार-बार करना चाहिये। इस बीमारीमें जो दवाएं दी जाती हैं उनसे प्रायः कोई काम नहीं होता। क्योंकि खानेके साथ ही वे उलटीमें बाहर निकल जाती है। समय समयपर इस बीमारीमें मर्फिया भी दिया जाता है, लेकिन कभी-कभी उससे रोगीकी मौत भी

हो जाती है। खूनकी उलटीसे प्रायः किसीकी मौत नहीं होती। परन्तु जो काम रोगसे नहीं होता है, वही दवा कर देती है।

रोगीको दोसे पांच दिनोंतक बर्फके टुकड़ेके अलावे मुंह द्वारा खानेको और कुछ भी देना आवश्यक नहीं है। पेटको एक ही साथ लगातार कुछ दिनोंतक आराम देनेसे बहुत हालतोंमें खूनकी उलटी आप-से-आप बन्द हो जाती है। पेटके घावके कारण यदि खून गिरता हो तो, जबतक पेटका दर्द पूरा-पूरा अच्छा न हो जाय, तबतक रोगीको कुछ भी खानेको देना नहीं चाहिये। इस समय रोगीको सोडाबाइकार्ब डाले हुए पानीका डूस रोज एक बार दिया जाना जरूरी है। इसके अलावे पिचकारीसे हर घंटेपर करीब आधी छटांक मधु मिला हुआ जल उसके मलद्वारसे हर घंटेमें पहुंचा देना चाहिये। इसके बाद जब रोगीकी हालत अच्छी हो जाय, तो उसे कुछ दिनोंतक खूब थोड़ा-थोड़ा बर्फके पानीके साथ दूध और खीराका रस खिलाना उचित है। दो-तीन दिनोंतक तरल खाद्य देकर, जब यह बरदाश्त हो जाय तब, पुराने चावलका भात और दूध आदि देना कर्तव्य है।

आंतोंसे खून गिरना

[Intestinal Haemorrhage]

आंतोंसे जो रक्तस्राव होता है उसे आंतोंसे खून गिरना कहते हैं। आंतसे जो खून निकलता है वह प्रायः ही मलके साथ मिला होता है। कभी-कभी विशुद्ध रक्त भी आंतसे निकलता है। पेटमें चोट लगाना अत्यधिक तीव्र औषधिका व्यवहार, बवासीर, टाइफायड व कैंसर आदिसे साधारणतः आंतोंसे खुन निकलता है।

यह अत्यन्त विपत्तिजनक रोग-लक्षण है। बहुत बार ऐसा भी होता है कि रक्तस्रावसे रोगी अज्ञान हो जाता है एवं कभी-कभी रोगी मौतके मुँहमें चला जाता है। बहुत-सी अवस्थाओंमें इसमें डाक्टर बुलाने तकका समय भी नहीं मिलता।

आंतसे खुन गिरते ही रोगीको बिस्तरेपर रहकर पूर्ण विश्राम ग्रहण करना चाहिये। रोगीको लिटाकर उसके पेड़ूपर गोली मिट्टीको ठंढी पुल्टिस अथवा बर्फके पानीमें भिगोई हुई तौलिया प्रयोग करनो कर्तव्य है एवं रक्त बन्द न होनेतक गरम होते ही बार-बार बदल देना आवश्यक है। बीच-बीचमें बर्फका पानी भी गुह्यद्वारमें पिचकारीकी सहायतासे घुसा दिया जाता है बवासीरके रोगमें रोगीके पेड़ू व गुह्यद्वार पर समस्त रात्रिके लिये मिट्टीकी पुल्टिस प्रयोग करनेसे रक्तस्राव व बवासीर दोनोंका ही उपकार होता है।

रोगीका शिर धोकर सारी देह भींगे शीतल गमछे द्वारा दिनमें तीन बार पोंछ देना उचित है। उसके हाथ पाँव जिससे ठंढे न हो जायें इसके लिये सभी प्रकारसे चेष्ठा करनी चाहिये। ठंडे हो जानेपर गरम जलके बोतल अथवा थैली द्वारा शीघ्र ही हाथ-पाँव गरम कर लेना उचित है। बादमें उसे मोजा पहना देना चाहिये। किन्तु रक्तस्रावके रोगमें सर्वदा अत्यधिक उत्ताप वर्जन करना कर्तव्य है। कारण शरीर अधिक गरम हो जानेसे रक्तस्राव बढ़ जाती है।

यदि प्रबल रूपसे रक्तस्राव होने लगे तो अति शीघ्र ही रोगीको ठंढे पानीमें हिपबाथ देना उचित है। इस समय हाथ-पाँव ठंढा न हो जाय, इसपर विशेष रूपसे ध्यान चाहिये।

पञ्चम अध्याय

व्यापक व्याधि

हैजा

[Cholera]

[१]

यह अत्यन्त मारात्मक व्याधि है। इसको विसूचिका या हैजा भी कहते हैं। साधारणतया इस रोगीकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली हालतमें दस्तवाली है। हल्दीके रंगके बहुत दस्तोंके साथ इस बीमारीका आरम्भ होता है। दिनभरमें पन्द्रह-बीस दस्त हो जाते हैं। पेटमें जोर दर्द, शिरमें दर्द, कैकी इच्छा, तेज प्यास और आवाजकी कमजोरी रहती है। हैजेके आगमनके पहले साधारणतया आधे दिनसे लेकर दो दिनोंतक यह हालत चलती रहती है, परन्तु कभी-कभी यह हालत होती ही नहीं। पहले ही खूब पतला, कुछ-कुछ पित्त मिला हुआ घना दस्त होता है। पीछे चावलके धोये हुए पानीकी तरह दस्त होने लगता है और बीमारीकी दूसरी हालत शुरू हो जाती है। चावल धोये जलके समान दस्त ही, भारी दस्तसे हैजेका फर्क जाननेका सबसे बड़ा उपाय हैं।

दूसरी हालतको ठंढी हालत (cold stage) कहते हैं। यह हालत आनेपर हाथ-पाँव ठंढे हो जाते हैं और शरीरकी गरमी जल्दी कम हो जाती है। पहले नखोंकी जड़े नीली पड़ने लगती हैं, उसके बाद शरीरका चमड़ा और समूचे शरीरका रंग नीला होने लगता है। धीरे-धीरे रोगीकी साँस भी ऐसी ठंढी हो जाती है कि मालूम होता है वह बर्फके ऊपरसे होकर आ रही है। परन्तु आश्चर्यकी बात यही है कि यद्यपि शरीर बाहरसे ठंढा रहता है, पर रोगी भीतर खूब गरमी

अनुभव करता है। रोगीकी नाड़ी सूतके समान पतली और कमजोर पड़ जाती है और बहुत जल्दी-जल्दी चलती है। कलेजा और कमजोर हो जाता है, रोगी बहुत सुस्त पड़ जाता है, आँखें धँस जाती हैं तथा आधी खुली आधी बन्द रहती हैं, पेशाब रुक जाता है, साँस लेनेमें तकलीफ होने लगती है, आवाज बैठने लगती है और रोगी छटपट करने लगता है। पहले रोगीके हाथ और पैरकी अंगुलियोंमें पीछे हाथ पैरमें बायी लगने लगती है, पेट फूल उठता है, उसमें बहुत दर्द होता है, और बार-बार सफेद पानी-सा पतला रंगहीन दस्त होता है। यह दस्त पहले ज्यादा होता है, पीछे कुछ कम हो जाता है। बार-बार के होने लगती है जिसमें केवल पानी गिरता है और कभी-कभी जोरोंकी हिचकी भी शुरु होती है। दूसरी हालतके ये सब रोग-लक्षण हैं। यह हालत एक-दो घण्टेसे लेकर दो-एक दिनोंतक चल सकती है और उसके बाद तीसरी हालत शुरू हो जाती है। इस हालतमें रोगीको तन्द्रा जैसा अनुभव होता है, उसकी चारों ओर क्या होता है, इसका ज्ञान रहता है, पर उधर उसकी दृष्टि नहीं जाती। कलेजा कमजोर हो जाता है, कलाईमें नाड़ीका पता नहीं लगता। रोओंकी जड़से एक तरहका चिपचिपा पसीना निकलने लगता है। यदि बीमारीका हमला कड़ा हुआ हो तो ४ से ८ घण्टोंके भीतर हो उसकी मौत हो सकती है। इससे अधिक संख्या ऐसे रोगियोंकी होती है जो १२ से ४८ घण्टेतक बचे रहते हैं। रोगीके शरीरमें यदि गरमी रहे, चेहरेका रंग यदि बिगड़ न जाय कलाईमें यदि नाड़ीका पता रहे, और रोगीको यदि नींद लगे और पेशाब हो तब तो वह प्रायः बच जाता है, परन्तु यदि शरीर ठंढा हो, तन्द्रा जैसा अनुभव हो, नाड़ीका लोप हो, सांस लेनेमें कठिनाई हो, और पेशाब बन्द हो तो ये रोगीके बहुत अशुभ लक्षण समझना चाहिये।

कामा नामके एक प्रकारके कीड़ों (Comma bacillus) के कारण यह बीमारी होती है। आश्चर्यको बात यह है कि, जो स्वस्थ

मनुष्य हैजेके रोगीकी सेवादारी करते हैं उनके मलमें भी ये कीड़े दिखलाई पड़ते हैं। जो आदमी हैजेसे बचा है, बीमारीसे उठनेके लम्बे ५० दिनोंके बाद भी उसके मलमें कामा कीड़े पाये गये हैं (Encyclopaedia Medica, Vol. III. P. 43)। ऐसा कि हैजेके कीड़े खा लेनेपर भी हैजा नहीं हो जाता—You may eat cholera vibrios but thereby you may not necessarily contract cholera (P. B. Bhattacharjee, M. B.—Handbook of Tropical Diseases, P. 3.)। इसलिये हैजेके कीड़े आंतमें घुसते ही हैजा पैदा कर देते हो ऐसा नहीं है। जिसका पेट हैजेके कीड़ोंको मार डालनेकी ताकत खो डालता है, जिसकी आंतमें जमा हुआ मल अधिक होता है और इस कारण वह कमजोर हो जाता है तथा शरीरमें दूषित पदार्थोंके एकत्रित होनेके कारण जिसकी रोगके प्रतिरोध करनेकी क्षमता कम हो जाती है, उसको ही हैजा पकड़ता है। इसलिये यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि एकको हैजा होता है और दूसरेको नहीं। एक ही स्थानपर आहार—बिहार करनेपर भी जिसके शरीरके भीतर अनुकूल अवस्था रहती है उसीको हैजा होता है और जिसके शरीरमें ऐसा नहीं होता उसके भीतर घुसकर भी हैजाके कीड़े उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। सड़ी-गली और बासी चीजें खाना, न खाने योग्य और खराब चीजें खाना, असमय खाना-पीना, जुलाब लेना, रातमें जगना, अधिक ठंढ या गरम लगना, अधिक भोग-विलास, अधिक परिश्रम, और डर जानेके कारण भी हैजा हो सकता है; परन्तु ये सब रोगको उत्तेजित करनेवाले कारण ही हैं, मूल करण नहीं। मूल कारण तो यह है कि जिसकी आंतमें बहुत दिनोंसे जमा हुआ मल हो और जिसका शरीर विजातीय पदार्थके भारसे आक्रान्त हो, उसीके शरीरके भीतर कामा जातिके कीड़े जल्दी बढ़ने लगते हैं और एक खास तरहका जहर पैदा करके शरीरके रस और खूनको दूषित कर डालते हैं। हैजेके समय जो रोगके लक्षण

दिखाई पड़ते हैं, वे इसी विष-क्रियाके कारण उत्पन्न होते हैं। प्रकृति इन विषोंको आंतके भीतर होकर निकाल देना चाहती है। प्रकृतिकी इसी चेष्टाका नाम ही हैजा है।

[२]

रोगके प्रकट होते ही तत्क्षण चिकित्सा प्रारम्भ करना ही हैजेके लिये प्रधान बात है। रोग आरंभ होनेके थोड़ी देरके अन्दर ही यदि चिकित्सा शुरू हो जाय तो रोगी प्रायः सदा ही आरोग्य लाभ करता है। हैजेके पहले दस्तके बाद ही रोगीको गरम पानीका एक डूस देना चाहिये। रोगी जितना अधिक पानी सहन हो सके (१०८ से ११० डिग्री तक) और जितना अधिक पानी वह पेटमें ले सके उतना पानी लेकर डूस देना जरूरी हैं। हैजेका कीड़ा उलटीके भीतर नहीं रहता और रोगीके खून, यकृत और मूत्रयंत्रके भीतर भी वह पाया नहीं जाता। छोटी आंतके निचले भागमें ही इस बीमारीका खास अड्डा होता है और इनमेंसे लेकर बड़ी आंततक हैंजेकी बीमारीके कीड़े फैले हुए होते हैं। इसलिये इस रोगके शुरूप ही गरम पानीका एक भारी डूस देकर पेटको साफ कर देनेके बारेमें कुछ भी सोच-विचार करना नहीं चाहिये। बहुत बार छोटा-मोटा हैजा (choleraic diarrhoea) दो-एक बार डूस दे देनेसे ही आराम हो जाता है। और प्रायः गरम पानी पेटमें जानेसे ही दस्त होना बंद हो जाता है। डूसके पानीके साथ शरीर का बहुत-सा जहर और कीड़ा निकल भी जाता है। जोरके हैजेमें पहले दिन रोगीको प्रति दो-एक घंटोंके बादसे या दस्त होनेके तुरन्त ही बाद, और पीछे उसके रोग-लक्षणके प्रबल रहनेतक रोज एक या दो बार गरम पानीका डूस देना उचित हैं। ऐसा बार-बार डूस देनेसे रोगका विष शरीरमें अधिक शोषित नहीं होने पाता। इसलिये रोगके विषके द्वारा जो सब लक्षण पैदा होते हैं, वे बहुत बार दिखाई नहीं पड़ते या दिखाई भी पड़ते हैं तो वे प्रबल नहीं होते। इसके अलावे

गरम जलका डूश दोनों किडनियोंको विशेष रूपसे तेज कर देता है, इसलिये रोगीका पेशाब आसानीसे साफ हो जाता है।

परन्तु हैजेका खास इलाज हिप-बाथ और पेटके ऊपर मिट्टीकी पुलटिस है। हैजा मालूम होते ही रोगीको डूश देना चाहिये और यदि डूश न हो तो डूशको छोड़कर उसे तुरन्त ही नाभितक ठंडे पानीमें डुबाकर हिप-बाथमें बैठाना चाहिये। इस समय उसके दोनों पैरोंको गरम पानीमें डुबाकर गरम रखना भी जरूरी है। यदि ऐसा न कर सकें तो पैरोंके नीचे गरम पानीसे भरे बोतल रखने चाहिये। रोगका जबतक वेग रहे तबतक प्रत्येक दो-दो घंटे बाद, जबतक रोगीको अच्छा लगता रहे तबतक इसी तरहसे हिप-बाथ देना आवश्यक है। हिप-बाथके बाद फिरसे शरीरको पानीसे डूबे हुए अंशको रगड़ रगड़कर गरम कर लेना उचित है।

इस समय ख्याल रखना चाहिये कि रोगीका शरीर, खासकर उसके हाथ, पैर और पेट गरम रहे। यदि वे गरम न हों तो किसी उपायसे उन्हें गरम करके तब हिप-बाथ दिया जाना चाहिये। मामूली तौरसे गरम पानीका बोतल या गरम पानीकी थैलीकी द्वारा आसानीसे शरीर गरम कर लिया जा सकता है। उसे बिछावनपर लिटाकर इसके लिये भापका स्तान भी प्रयोग कराया जा सकता है।

हिप बाथके अलावे बीच-बीचमें रोगीके पेटपर मिट्टीकी पुलटिसका प्रयोग करना कर्तव्य है। परन्तु पेट यदि ठंढा रहे तब गरम जलकी थैली आदिके द्वारा उसे गरम करके तब पेटपर मिट्टीकी पुलटिस चढ़ानी चाहिये।

दवाके द्वारा इलाज करनेपर मामूली तौरपर दस-बारह दिनोंसे पहले हैजेका रोगी चंगा नहीं होता। परन्तु इस प्राकृतिक चिकित्सामें वह दो-तीन दिनोंके भीतर ही अच्छा हो जाता है। कई बार तो इतनी जल्द रोगी चंगा हो जाता है कि लोगोंको हैजा होनेका विश्वास भी नहीं होता। मैं एक ऐसे आदमीको जानता हूँ जिन्होंने इस प्राकृतिक

चिकित्सा द्वारा कमसे कम ५ सौ व्यक्तियोंको हैजेसे बचाया है। एक बार एक गाँवमें बारह-तेरह व्यक्तियोंको हैजा हुआ; वे सब दो-तीन दिनोंकी चिकित्सासे ही अच्छे हो गये। इन लोगोंका खास इलाज था—हिपबाथ, मिट्टीकी पुलटिस और सीज-बाथ। इतनी आसानीसे हैजा अच्छा होते देखकर उस गाँवके एक बड़े आदमी ने कहा कि यह हैजा नहीं है, किसी तरहकी मामूली बदहजमी है जो इलाज न करनेसे भी अच्छी हो जाती। उसी दिन वे किसी कामसे दूसरी जगह चले गये। रास्तेमें ही उन्हें कै, दस्त शुरू हुआ। उन्होंने एक डाक्टरका सहारा लिया। डाक्टरने दवा और सूईके द्वारा जहांतक हो सका अच्छासे अच्छा इलाज किया, पर इसी रोगसे उनकी मौत हुई।

बीमारी जब अच्छी होनेपर आती है तब बहुत बार रोगीको पेटपर मिट्टीकी पुलटिस चढ़ाना अच्छा नहीं लगता है। उस हालतमें मिट्टीकी पुलटिसके बदले उसे पेड़ूकी लपेटका प्रयोग कराना चाहिये। इस समय रोगीके पेटपर बीच-बीचमें गरम-ठंढी पट्टीका प्रयोग होना चाहिये। मामूली तौरसे दिनभरमें तीन बार ताप-बहुल गरम-ठंढा प्रयोग कराना ही काफी हो जाता है। परन्तु इसमें नियम यही है कि पेट जितना ठंढा हो, उतना ही जल्दी-जल्दी गरम-ठंढा देकर उतनी ही देर-देरसे भींगा कपड़ा बदल-बदलकर देना चाहिये। पेट गरम हो तो मिट्टीकी पुलटिस रखनेसे कभी असुविधा नहीं होती।

शरीर ठंढा रहे तो रोगीको दिनभरमें दो बार भापका स्नान देनेसे भी बहुत लाभ होता है। हैजेकी बीमारीमें शरीरके भीतर खूनकी अधिकता हो जाती है। इससे ऊपरका चमड़ा ठण्ढा रहता है। खून उस समय आंतकी चारों ओर जमा हो जाता है और उसके जलका अंश मलके साथ निकलता रहता है। इसी कारण हैजेके रोगीको सूई द्वारा नमक मिला हुआ पानी धमनीमें पहुंचाया जाता है। परन्तु इसी समय रोगीको यदि एक बार पसीना निकालनेवाला स्नानका प्रयोग कराके उसके खूनको चमड़ेमें लौटा लाया जाय, तब आप-से-आप दस्त बन्द

हो जाय और रोगी अच्छा हो जाय। इसी कारण फादर निपने कहा है, "हैजाके इलाजकी मुख्य बात यही है कि रोगीको पसीना ला दिया जाय—जिसको बहुत अधिक पसीना आ गया वह बच गया" (My Water-cure, P. 140)। रोगीके शरीरमें पसीना ला देनेके लिये उसे गरम पानी पिलाकर एक भापका स्नान कराया जा सकता है। इस उपायसे खूब पसीना निकलनेसे रोगके अच्छा हो जानेमें कोई चिन्ता नहीं रहती है। परन्तु हैजेके रोगीको बहुत अधिक या देरतक भाप देकर पसीना लानेवाला स्नान नहीं कराना चाहिये। उसका शरीर जब पसीनेसे तर हो जाय तब भापको कम कर देना चाहिये और रोगीको मामूली भापमें रखना चाहिये। रोगीके शरीरसे पसीना निकलनेके बाद, उसके शरीरसे सातसे दस मिनटोंतक बहुत मृदुतासे पसीना निकलने देना चाहिये। उसके बाद उसको तौलिया-स्नान कराना उचित है। रोगीका हृदय यदि बहुत कमजोर हो गया हो तो बहुत सतर्कताके साथ उसे भाप-स्नान देना चाहिये। अथवा भाप-स्नानके बदलेमें गरम फूट-बाथ आदिका प्रयोग करना या गरम पानीकी थैली आदिके द्वारा शरीरको गरम कर लेना ठीक है। भाप-स्नानके बाद यदि घर्षण-स्नान प्रयोग किया जाय तब और भी लाभ होता है घर्षण-स्नान प्रयोगके समय यह ध्यान होना चाहिये कि शरीरकी रगड़के बाद वह लाल और गरम हो उठे।

रोगीके समूचे शरीरको दिनभरमें तीन बार भींगे गमछेसे पोंछ देना भी जरूरी है क्योंकि ठंढे पानीके इस्तेमालसे शरीरकी वह ताकत खास तौरसे बढ़ती है जो बीमारीका सामना करती है। शरीर पोंछनेके पहले शिरको ठण्डे पानीसे धो देना सदा आवश्यक है। यह न भी करना हो तो भी उसका शिर बार-बार ठण्डे पानीसे धो-धोकर ठण्डा रखना ठीक है। यदि शरीरकी गरमी मामूली अंदाजसे कम हो तब गुनगुना पानीसे उसका शरीर पोंछना चाहिये। तौलिया-स्नानके बदले यदि दिन-भरमें एक बार उसे घर्षण स्नान (cold friction) दिया जाय तो

इससे उसको और भी जल्दी लाभ होनेकी सम्भावना है। रोगीका शरीर यदि ठण्ढा रहता हो तो पहले उसे जरूर ही गरम कर लेना चाहिये। तब ठण्ढी मालिश देना उचित है।

रोगीको दिनभरमें तीन बार सीज-बाथ देना भी जरूरी है। शुरूसे ही रोगीको बिछौनेपर लिटाये रखकर सीज-बाथ कराना चाहिये। इससे थोड़ी ही देरमें रोगीकी जलन कम हो जाती है और यह उसके स्नायुको तेज करके देहकी बीमारीसे लड़नेवाली ताकतको बढ़ा देता है।

रोगीको सीज-बाथ या तौलिया स्नान देनेके बाद कम्बलमें लोटकर उसके शरीरको फिरसे गरम कर देना जरूरी है। इस तरह गलेतक कम्बलसे लपेट लेनेके बाद कभी-कभी आप-से-आप पसीना निकलने लगता है। रोगीके शरीरमें पसीना पैदा करनेका यह एक विशेष उपाय है।

इस बीमारीमें के, पेशाब बन्द होना, बाघी या ऐंठन (cramps), यूरेमिया और जीवनी शक्तिका लोप हो जाना (collapse) आदि रोगके लक्षण पैदा हो जाते हैं। ऊपर लिखे तरीकेसे ठीक ठीक तौरपर इलाज करनेसे बीमारीकी जड़ उखड़ जानेके साथ साथ सभी मामूली लक्षण भी अपने आप अदृश्य हो जाते हैं या दूसरे किसी लक्षणका आगमन भी नहीं होता। तथापि प्रयोजन हो तो इन सभी अवस्थाओंके लिये विभिन्न प्रकारके रोगोंकी विशेष चिकित्सा करनी चाहिये।

इन सभी इलाजोंके साथ ही साथ रोगीका घर और उसका बिछावन खूब साफ सुथरा रखना चाहिये। प्रति बार दस्त होनेके बाद रोगीका मलद्वार भींगे कपड़ेसे साफ कर देना उचित है, और बीमारी दूसरे किसीको न हो, इसके लिये अच्छा है कि उसका मल मिट्टीके नीचे गाड़ दिया जाय। रोगीके घरमें खुली हवाका आना जाना होने देना चाहिये। उसका इस प्रकार इलाज करना चाहिये कि वह कभी थकावट अनुभव न करे। हिप बाथ आदि प्रयोग करनेके समयको छोड़कर और किसी भी समय उसे बिछावनसे उठाना नहीं चाहिये। यदि सम्भव हो तो उसे गोदीमें उठाकर हिप बाथ देना उचित है। रोगी यदि सोने लगे

तब उसे कभी जगाना नहीं चाहिये। उसे यदि नींद आने लगे तब तो समझना चाहिये कि उसकी बीमारी भाग रही है। उसके शरीरको सदा गरम रखनेका प्रबन्ध करना जरूरी है। वह डर न जाय इसके लिये उसे सदा उत्साह बढ़ानेवाली बातें कहते रहना चाहिये। आस-पासमें हैजा फैला हो तो एक डूस लेकर पेटको साफ कर देने और गरम पैर-स्नान या भींगी चादरका पैक लेकर कुछ दिनोंतक कमर-स्नान लेनेसे हैजा ही क्यों बहुत-से दूसरे संक्रामक रोगोंसे भी कोई भय नहीं रह जाता। यह कह देना भी उचित है कि इस उपायके साथ सदा खान-पानके सम्बन्धमें सतर्क होना आवश्यक है।

[३]

पहले ही रोगीको नमकके साथ थोड़ा-थोड़ा करके पानी देना चाहिये। यदि उलटीके साथ दिया हुआ पानी बाहर हो जाय तो भी रोगीको पानी पीनेको देना आवश्यक है। (J. H. Kellogg, M. D.—The New Dietetics)। यदि रोगीको प्यास हो तो हैजा या और किसी भी बीमारीमें पानी बन्द नहीं करना चाहिये। हैजेमें हैजा या और किसी भी बीमारीमें पानी बन्द नहीं करना चाहिये। हैजेमें तो प्रति बार, के हो जानेके बाद हो, उसे पानी पीनेको देना उचित है। रोगीकी ठंढी हालतमें उसे गरम पानी देना जरूरी है। यह हालत कट जानेके बाद उसे हमेशा ठंढा पानी पिलाना चाहिये। पानी शरीरके बहुत-से जहरको धोकर शरीरको रोगमुक्त करता है। पानीको उबालकर उसे फिर ठंढा करके भी रोगीको पिलाना अच्छा है। प्यास मिटानेके लिये रोगीको बर्फका टुकड़ा भी चसनेको दिया जा सकता है; पर बर्फको कभी चबाकर खाना नहीं चाहिये। जबतक रोगीकी उलटी अवस्था रहती है तबतक उसे खानेके लिये कुछ भी नहीं देना चाहिये (Sir Phillips H. Manson—Bahr—Mansons Tropical Diseases, p. 466 London 1954)। ऐसी दशामें केवल नीबूके रसके साथ थोड़ा-थोड़ा पानी देना चाहिये। जब तेजीकी हालत

रुठ जाय तब रोगीको थोड़ा-थोड़ा डाबका पानी पीनेको दिया जा सकता है। समूचे डाबका पानी एक ही बार ग्लासमें ढाल लेना नहीं चाहिये या ग्लासमें निकाल लेनेके बाद जो बच जाय उसे फिरसे डाबमें नहीं रखना चाहिये रोगी जितना एक बार पी सके उतना ही पानी ग्लासमें निकालना उचित है। एक कटे डाबका पानी तीन घंटेतक पिलाया जा सकता है। इस बीचमें वह खराब नहीं होता। तीन घंटेके बाद फिर दूसरा डाब काटना चाहिये। रोगीके पेशाब उतर जानेके चार-पांच घंटे बाद उसे छेनाका पानी (whey) देना आवश्यक है। इसके बाद जब रोगीके पेखानेका रंग पीला हो जाय तो उसे छेनाके साथ मट्ठा भी दिया जा सकता है। उसके बाद बीमारी पूर्णरूपसे अच्छी हो जानेके बाद पहले भातका मांड़, तरकारीका रस और पीछे पुराने चावलका भात खूब थोड़ा थोड़ा शुरू करके तब पूरी खुराक देनी चाहिये। अधिक खा लेनेसे फिर बीमारीके पलट आनेका डर रहता है। अच्छे हो जानेके पर भी कुछ दिनोंतक एक शाम भात, दूसरी शाम भातकी मांड़ आदि ही लेना उचित है और काफी दिनोंतक किसी भी तरहका भारी खाना, अधिक तेल या घी में बनी हुई चीजें और फलका छिलका खाना बन्द रखना आवश्यक है (पथ्यके लिये दस्तकी चिकित्सा देखिये)।

गांवमें हैजा शुरू हो जानेपर रोज थोड़ी-सी कच्ची हल्दी खानी चाहिये। हैजाके रोगीको आरम्भमें ही दो-तीन बार कच्ची हल्दीका रस निचोड़कर पिलानेसे बहुत अवस्थामें उसका रोग अच्छा हो जाता है। हैजेके दिनोंमें प्रतिदिन नीबूके साथ ढेरसा पानी और अम्ल जातिके फलोंका काफी रस लेना चाहिये। यह एक बीमारी रोकनेवाला इन्तजाम है। क्योंकि हैजेके कीड़े कभी अम्ल जातिकी जमीन (medium) पर बढ़ नहीं सकते (Julius Friedenwald; M. D.—Diet in Health and Disease,, P. 422)।

वसन्त

[Small pox)

[१]

संसारमें जितने पुराने रोग हैं उनमें वसन्त (चेचक) सबसे प्राचीन है। जिस देशका आदमी जितना ही गंदा रहता है, गन्दी जगहमें रहता हैं और स्वास्थ्यनीतिके सम्बन्धमें जितना ही अनभिज्ञ रहता है, उस देशमें इस रोगका प्रादुर्भाव उतना ही अधिक होता है। आजकल अफ्रीका देशमें सबसे अधिक चेचक होता है।

चेचक रोगका आगमन भी और और बुखारोंके ढंगसे ही होता है। बुखार, जाड़ा, कँपकँपी, शिर-दर्द, उलटी या उलटीका उद्वेग और कमर, रीढ़में दर्द होकर इस बीमारीका आगमन होता है। किसी-किसी हालतमें रोगीको सर्दी और गलेमें दर्द भी होता है। कभी-कभी छटपटी, बेहोशी और बकबकी भी हो सकती है। बच्चोंको प्रायः ऐंठन भी होती है। गोटी निकलनेके पहले बुखार धीरे-धीरे बढ़कर १०३° से १०७° तक हो सकता है। बुखार होनेके तीसरे दिन प्राय: गोटी दिखाइ देने लगती है। पहले मुँह, हाथ और कपारमें गोटी निकलती है। इसके बाद समूचे शरीरमें गोटी निकल जाती है। गोटीकी गिनती १०० से १३० तक होती है लेकिन कभी-कभी १,००० तक भी हो सकतो है। जब गोटियाँ निकल जाती हैं तब बुखार बहुत कम हो जाता है। गोटियां कभी-कभी अलग-अलग होती हैं कभी सटो हुई। गोटियां जितनी अधिक और जितनी सटी हुई होती हैं, रोग उतना ही भयानक होता है। पहले दिन गोटियां लाल दागको तरह दिखती है। ये ही दूसरे दिन दानेकी तरह ऊँची उठ जाती हैं। तीसरे दिन उन्हें छूनेसे वे कड़ी लगती हैं। चौथे दिनसे इनमें पानी भरता है, छठे सातवें दिनतक गोटियोंका पानी मवादमें बदल जाता है। जब गोटियोंके भीतर मवाद बनता रहता है तब जाड़ा और कँपकँपीके साथ

बुखार और भी तेज होता है। चेचकमें इसको दूसरा ज्वर (secondary fever) कहते हैं। यह बुखार भी १०३° से १०७° तक हो सकता है। आठवें दसवें दिनतक मवाद पूरा-पूरा भरकर गोटियाँ खूब ऊँची हो जाती हैं। नवें दिनसे ये ग्यारहवें दिनतक कुछ-कुछ फूटने लगती हैं और बची हुई गोटियाँ सूख जाती हैं।

चेचकके समान छूतकी बीमारी और दूसरी नहीं है। रोगीको छूनेसे, यहाँतक कि उसके वस्त्र, बिछावन या बर्तनोंके छूनेसे भी यह रोग हो जाता है। रोगीकी साँसतक छूत फैलती है। परन्तु चेचकके रोगीको छूनेसे ही रोग आ जाय ऐसा नहीं है। बहुत-से आदमी चेचकके रोगीकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, सबको तो चेचक नहीं होता। एक ही घरमें किसीको चेचक होता है किसीको नहीं होता। इसलिये केवल छूतसे ही बीमारी पैदा नहीं हो जाती, जिनके शरीरमें पहलेसे ही बहुत विजातीय पदार्थका संचय रहता है, केवल उनपर ही इस बीमारीका हमला होता है। शरीर इस तरहके जहरके भारसे दबा रहनेके कारण, लोगोंकी भीड़-भाड़ से भरी हुई गंदी जगहमें रहने, अनियमित, स्वास्थ्यके प्रतिकूल उत्तेजक पदार्थ खाने और ऋतु परिवर्तनके कारण शरीरके भीतर चेचकके कीड़ोंके विस्तार होनेकी अनुकूल अवस्था उत्पन्न हो जाती है और तभी मनुष्य रोगाक्रांत होता है।

चेचकसे बचनेके लिये टीका लेनेकी आवश्यकता बतायी जाती है; परन्तु टीकासे रोगका मूल कारण नाश नहीं होता। केवल रोगीकी प्रकृतिका परिवर्तन होता है। क्योंकि शरीरमें विजातीय पदार्थका रहना ही चेचकका मूल कारण है। टीका ले लेनेसे कुछ देरके लिये वसन्त रोगसे रक्षा मिल जाती है, परन्तु शरीरके भीतर जो दूषित पदार्थ चेचकके कीड़ोंको बढ़ानेवाले खादकी तरह मौजूद रहते हैं टीका लेनेसे भी वे पदार्थ ही रह जाते हैं। इसलिये प्रकृति जब शरीरके जहरको बाहर निकालनेका रास्ता नहीं पाती तब वे जहर ही दूसरे-दूसरे भयानक रोगोंके रूपमें आते हैं। कुछ लोग तो ऐसा भी सोचते हैं कि

संसारमें आजकल जो नयी-नयी बीमारियाँ पैदा हो रही हैं, उनका प्रधान कारण रोगोंकी दमनमूलक व्यवस्था ही है।

डाक्टर लोग टीका देकर जिस उद्देश्यकी प्राप्ति करना चाहते हैं, प्राकृतिक चिकित्साके भींगी चादरकी पैक आदिके द्वारा शरीरको रोग-मुक्त और कमर-स्नानके द्वारा शरीरमें चेचकके आक्रमणको ही असम्भव करके, हमलोग भी वही काम अच्छी तरह कर सकते हैं। उसपर भी यदि आक्रमण हो ही जाय तो आरम्भमें ही हमलोग शरीरकी साफ करनेवाली प्राकृतिक चिकित्साका सहारा लेकर बहुत आसानीसे रोगीको अच्छा कर सकते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जब शरीरका विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाता है, तब रोग आपसे-आप अच्छा हो जाता है। शरीरमें संचित दूषित पदार्थको बाहर निकालनेकी प्रकृतिकी जो-जो चेष्टाएं हैं उसीका नाम ही रोग है। कीड़ोंके द्वारा उत्पन्न विष भी इसी विषाक्त पदार्थके अन्तर्भुक्त हैं।

[२]

इस कारण पहले ही जहाँतक सम्भव हो जल्दी करके पेड़ूको साफ कर लेना चाहिये। रोगीका जाड़ा और कँपकँपी हो तो किसी तरहके बुखारमें भी उसे कमरका स्नान या पेड़ूकी पट्टी या मिट्टीकी पुलटिसका प्रयोग नहीं किया जाता। इसलिये पहले रोगीको गरम पानीका एक डूस देकर ही इलाज शुरू करना उचित है। पहले डूस देकर रोगीकी बड़ी आंत (colon) को साफ कर देनेसे अन्य बुखारोंकी तरह ही चेचककी बीमारीकी भी कमर टूट जाती है। उसके बाद भी नीबूके रसके साथ गुनगुना पानीमें रोज एक बार डूस देना उचित है।

पहले दिन डूस देनेके दो घंटे बाद रोगीको एक घंटेके लिये भींगी चादरका पैक देनेकी जरूरत है। इस समय रोगीके शरीरके चारों ओर बहुत-से गरम पानीकी बोतलें रखा देनी चाहिये।

इसके बाद जबतक बीमारी अच्छी न हो उसे खूब पानी पिलाना

चाहिये। उसकी ठंढकी अवस्था कट जानेके बाद, रोगीके पेड़ूपर ठंढी पट्टी या गीली मिट्टीकी पुलटिस बराबर चलानी चाहिये और रोज दो बार कमरका स्नान भी होना चाहिये। इस उपायसे बुखार कभी तेज नहीं होने पाता। रोगीका शिर भी बार-बार धो देना उचित है। आवश्यकता समझी जाय तो बहुत देरतक रोगीके माथेपर पानीकी पट्टीका प्रयोग भी किया जा सकता है। रोगीको कमसे कम गरम पानीसे शुरूमें ही स्नान (graduated bath) कराना चाहिये। इस बीमारीमें गुनगुने पानीसे देरतक स्नान करना बहुत लाभदायक होता है। प्रतिदिन गुनगुने पानीसे देरतक रोगीको कमसे कम दो बार पूरा-पूरा स्नान कराना चाहिये। यह भाव मनमें नहीं उठना चाहिये कि नहानेसे गोटी बैठ जानेका डर रहता है। नियमित रूपसे स्नान करानेसे बुखार तेज नहीं हो पाता और शरीरमें जहरका असर होनेका रास्ता ही बन्द हो जाता है। गुनगुने पानीमें जितनी बार इच्छा हो रोगीको स्नान कराया जा सकता है। परन्तु उसे घरके भीतर ही, इस प्रकार स्नान कराना आवश्यक है जिसमें उसके शरीरमें ठंढी हवा न लगे और स्नान करनेसे उसे आराम मालूम पड़े। स्नानके बाद यदि उसे ठंढ और कँपकँपी आये तो उसे पूरा स्नान नहीं कराना चाहिये, वरन् उसके बदले तौलिया-स्नान कराना उचित है।

गोटी निकल पड़नेके बाद शरीरको कभी नहीं रगड़ना चाहिये। रोगी यदि उठने-बैठनेसे लाचार हो गया हो तो दिनभरमें कमसे कम तीन-चार बार ठंढे पानीसे उसका शिर धोकर उसके बाद ही उसके समूचे शरीरको तौलियासे हलके हाथों स्पंज करा देना उचित है। आवश्यकता होती हैं तो सभी रोगियोंके शिरपर बहुत देरतक पानी भी ढाला जाता है। ऐसा होनेसे प्रायः दूसरा कोई उपद्रव आ ही नहीं पाता। यदि रोगीके शरीरकी गरमी १०३° से अधिक हो तब दो-दो घंटेपर उसके समूचे शरीरको स्पंज करना चाहिये। स्नान या स्पंजके बाद प्रति बार रोगीके गलेतक समूचे शरीरको कम्बल आदिसे

ढककर फिरसे उसको गरम कर देना खास तौर से जरूरी है।

इसके साथ-साथ रोगीके पेटपर गीली मिट्टीकी पट्टी देनेकी आवश्यकता है। यदि गोठी निकल जानेमें देर हो रही हो तब गरम पानीकी बोतलके साथ रोज एक बार एक घंटेके लिये भीगी चादर की पैकका प्रयोग होना चाहिए। गोटी निकलनेके बाद भी भीगी चादरकी लपेट ही सबसे बढ़िया इलाज है (महात्मा गांधी—A Guide to Health, p. 100)। इस समय भी रोगीको दिनभरमें कमसे कम एक बार पूरे घंटे भरके लिये भींगी चादरकी पैक देना जरूरी है। इससे बुखार कम होता है और गोठीका दूध सूख जाता है। रोगीका मुँह यदि फूला हुआ हो तो दिनमें तीन बार मुंहमें पांच मिनटोंके लिये गरम सेंक देकर अवशिष्ट समयके लिये खूब ठण्डे पानीकी पट्टी प्रति बीस मिनटोंके बाद बदल-बदलकर चढ़ानी चाहिये। इसके अलावे दिनमें दो बार नित्य एक घंटेके लिये गीली मिट्टीकी पुलटिसका प्रयोग करना आवश्यक है। मुंहमें यदि गोठी निकले तो लाल कपड़ा जलमें भिगाकर उसीसे पानीकी पट्टीका काम लेना चाहिये। रोगीकी कोठरीके दरवाजों और खिड़कियोंपर भी लाल कपड़े के पर्दे लटकाना उचित है। इस उपायसे रोगीके मुंहपर गोटीका दाग नहीं रहने पाता। जब गोटियोंमें बहुत अधिक जलन होती हो या खुजली हो उस समय उसपर आध इञ्च मोटा कादो चढ़ा देनेसे घाव, दर्द और खूजली बहुत जल्दी आराम हो जाती है और गोठीका दाग मिट जाता है। मिट्टीको सानकार उसे पहले सिझाना चाहिये। तब उसे ठन्ढा करके गोठीपर लगाना उचित है। गोठीपर सदा ठण्ढो मिट्टी ही चढ़ायी जानी चाहिये। मिट्टीके बदले पानीकी पट्टीका भी प्रयोग किया जा सकता है। जब गोठीके ऊपर पपड़ी पड़ने लगती है उस समय उसके ऊपर पानीकी पट्टी देना ही उसकी एकमात्र चिकित्सा है। पहले दिनसे ही रोगीको दो बार सीज-बाथ देना आवश्यक है। उसे बिछावनपर पड़े रहकर पूरा-पूरा आराम करना चाहिये।

वास्तवमें अन्य रोगोंकी तरह सेवा ही इस बीमारीका भी खास उपाय है। रोगीका बिछावन बराबर साफ रखना चाहिये और उसके बिछावनकी चादर रोज बदला जाया करे। बिछावन नरम दिया जाय, रोगीको जहाँतक हो सके एक तरफ सबसे अलग रखनेका प्रबन्ध किया जाना चाहिये। उसकी कोठरी यदि अँधेरी हो तो और भी अच्छा। उसमें हवा आती-जाती रहनी चाहिये। रोगीके घरसे सारे असबाब, खासकर आइना, निकाल देना आवश्यक है।

[३]

बीमारीके शुरूसे ही केवल नीबूके रसके साथ पानी पीकर उसे रह जाना उचित है। उसे हर घंटे एक ग्लास पानी पीनेकी कोशिश करनी चाहिये। दो-तीन दिनोंके बाद रोगी जब खानेके लिये छटपट करे तब कमला नीबू आदि फलोंका रस पानी मिलाकर उसे पिलाया जा सकता है। इसके बाद पहला बुखार कम हो जानेपर उसे फलोंका रस, कई तरहके फल, डाबका पानी, मट्ठा, छेनाका पानी और तरकारीका जूस आदि देना आवश्यक है। इसके बाद फिरसे बुखार शुरू होनेपर रोगीको नीबूके रसके साथ पानीपर ही रहना चाहिए। बीमारी जब अच्छी होने लगे और दूसरा बुखार जब कम हो जाय तो फल, तरकारीका सूप, मट्ठा और छेनाका पानी आदि देना उचित है। अच्छे हो जानेपर उसे पुराने चावलका भात, तरकारी और मट्ठा आदि दिये जायँ।

चेचक होनेका लक्षण प्रकट होते ही रोगीको मांस, मछली, देरसे पचनेवाली सभी चीजें, अनियमित आहार, अधिक खाना, नमक, प्याज, गरममसाला, अधिक मसाला, अधिक परिश्रम, रातका जगना और सब प्रकारका असंयम छोड़ देना कर्तव्य है। इस हालतमें उसे रोज थोड़ी कच्ची हल्दी खिलानेसे बड़ा लाभ होता है। चेचकके शुरू होते ही, बीच-बीचमें स्वस्थ लोगोंको भी कच्ची हल्दी खाते रहना चाहिये।

जल-वसन्त

[Chicken pox]

यह भी गोटीकी ही बीमारी है, परन्तु असल गोटी (small pox) के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं है। यह पूर्ण रूपसे भिन्न रोग है। यह बहुत छुतकी बीमारी है। टीकाके द्वारा इसे नहीं रोक सकते। यह रोग असली गोटीके रोगकी तरह मारात्मक नहीं है।

बहुत बार तो इसकी गोटी बिना बुखार हुऐ ही निकल आती है। कभी-कभी गोटी निकलनेके एक दिन पहले ही बुखार, सिर दर्द खांसी, उल्टी और वायुकी नालीमें सूजन पैदा हो जाती है। कभी-कभी रोगीको पीठ और पैरोंमें दर्द मालूम होता है। इन लक्षणोंके पहले या दूसरे दिन गोटी निकलती है। मामूली तौरसे पहले पेट और पीठमें कभी-कभी कपारमें और बहुत कम हाथ और पैरमें गोटी दिखाई देती है। इसकी गोटी मुँहमें बहुत कम होती है। इस गोटी और असली गोटीमें विशेष भेद यही है कि असली गोटी एक साथ ही सारे शरीरमें उठ जाती है परन्तु जल-वसन्तकी गोटियां कई दिनोंतक उठती जाती हैं और एक ही रोगीके शरीरमें गोटीयाँ विभिन्न अवस्थाओंमें रहती हैं। साधारण अवस्थामें केवल आठ-दस गोटियां ही सारे शरीरमें निकलती हैं, परन्तु यदि आक्रमण प्रबल हुआ तो सैकड़ों निकल जा सकती हैं। गोटी दिखाई पड़नेके पाँच-छः घण्टोंके भीतर ही, गोटियोंके भीतर रस आ जाता है और एक दिनके भीतर ही ये पक जाती हैं। जल-वसन्तकी गोटियां देखनेमें फफोले-सी लगती हैं। चार-पाँच दिनोंमें ही ये सूख जाती हैं।

असली वसन्तकी जो चिकित्सा है, जल-वसन्तकी चिकित्सा भी वही है। इसमें खूब कम चिकित्साकी आवश्यकता होती है।

प्लेग

[Plague]

[१]

यह अत्यन्त मारात्मक रोग है। चौदहवीं शताब्दीमें केवल यूरोपमें इस रोगसे दो करोड़ चालीस लाख आदमी मरे थे। साधारणतया यह तीन प्रकारका होता है—ब्यूबोनिक (bubonic), न्यूमोनिक (pneumonic) और सेप्टिसेमिक (septicemic)। अधिकतर ब्यूबोनिक यानी बाघीवाला प्लेग ही होता है। इसमें लार निकालनेवाली गिलठियों (lymphatic glands) पर हमला होता है, जिससे कांख, उरू-सन्धि, बगल और गरदनमें गिलठियाँ उठ आती हैं। ये गिलठियां कड़ी होती हैं और कभी-कभी तो अण्डे बराबर बड़ी होती हैं। साधारणतया दूसरे या तीसरे दिन ये गिलठियां निकल आती है। यदि यह गिलठी चार-पाँच दिनोंके भीतर पककर फट जाय और उसके बाद बुखार कम हो जाय तब समझना चाहिये कि शुभ लक्षण है। परन्तु यदि गिलठी बैठ जाय तो यह बहुत आशंकाकी बात होती है। प्रायः गिलठीके फटनेमें शुरूसे लेकर आठ-दस दिनतक लगते हैं। न्यूमोनिक प्लेगमें साधारणतया फुसफुस आक्रांत होता है, और इससे छातीमें दर्द, खांसी, सांस लेनेमें तकलीफ और फुसफुससे खून निकलना आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इसलिये इसे फुसफुसका प्लेग भी कहा जाता है। सेप्टिसेमिक या खूनके बिगाड़नेवाले प्लेगमें शरीरका समूचा ढांचा गलने लगता है। इससे रोगी प्रायः कई एक घण्टोंसे लेकर दो-एक रोजके अन्दर मौतका शिकार हो जाता है। कभी-कभी एक ही रोगीके शरीरमें दो जातियोंके प्लेग लक्षण दिखाई पड़ते हैं। भारतवर्षमें अधिकतर ब्यूबोनिक प्लेग ही दिखाई देता है।

रोगके प्रकट होनेके पहले रोगीका शरीर खराब मालूम होता है और वह दुर्बलता अनुभव करता है। इस प्रकारकी अवस्था कई घण्टोंसे

लेकर सात दिनोंतक भी चलती रहती है। इसके बाद, एकाएक रोग आ धमकता है। बहुत कमजोरी, शिरमें बहुत जोरोंका दर्द, पीठ, अंग-प्रत्यंग; जांघ और बगलमें दर्द, उलटी या उल्टीका उद्वेग और कभी-कभी दस्तके साथ जाड़ा लगकर रोगीको प्रबल ज्वर आता है। बुखार १०३° से १०७° तक हो सकता है। रोगीकी आँखें बैठ जाती हैं, शरीरका चमड़ा पीले रंगका हो जाता है, आवाज धीमी पड़ जाती है तथा नाड़ी और सांसकी चाल बहुत तेज हो जाती है। रोगीकी जांघ, कांख और गरदनकी गिलटी फूल जातीहै या उनमें दर्द होने लगता है और रोगीको भूखकी कमी, अनिद्रा, बकबकी या बेहोशी आदि लक्षण दिखाई देते हैं। रोगीका पेशाब कम हो जाता है, ज्यादातर तो बंद ही हो जाता है। कभी-कभी नाक, मुँह, फुसफुस, पेठ, पैखानेके रास्ते, किडनी या जननेन्द्रियोंसे खून निकलने लगता है। कभी-कभी बीमारीके पहले या दूसरे ही दिन रोगीकी दोनों आंख फुल उठती हैं और बिलकुल पक जाती है। इस बीमारीमें जिस किसी समय ही झटसे मौत हो जा सकती है। किसी-किसी समयमें तो आठ-दस घण्टे के भीतर रोगीका जीवनान्त हो जाता है। साधारणतया इसमें हार्टफेल, मेनिनजाईटिस, खूनका खराब हो जाना, न्यूमोनिया आदिसे रोगीकी मौत होती है। प्रायः इसमें ३ से ५ दिनोंके भीतर रोगीकी मौत हो जाती है। इसलिये रोगी यदि एक सप्ताह तक बचा रहे तो आशा की जाती है कि अब उसे कुछ न होगा। साधारणतया यह होता है कि गिलटी पक जानेसे बुखार कम हो जाता है, परन्तु प्लेगमें बराबर ही ऐसा होता है कि चौथे दिन बुखार कम होकर फिर छठे-सातवें दिन वह बढ़ जाता है। बीमारी सुधारकी तरफ चले तो पहले या दूसरे सप्ताहसे ही रोगी धीरे-धीरे आरोग्यके पथपर अग्रसर होता है। गिलटी सुखनेमें तो कुछ देर जरूर लग जाती है। जिन रोगियोंकी गिलटी नहीं फटती उन्हें अच्छे होनेमें ५ से आठ सप्ताहतक लग सकते हैं। गिलटीका बैठना, खून निकलना और पेठ चलने लगना आदि इसके अत्यन्त खराब लक्षण हैं।

एक विशेष प्रकारके कीड़ों (Bacillus Pestis) से यह रोग पैदा होता है। चूहे इस कीड़ेको खाते हैं। ये कीड़े प्रथम चूहोंपर और फिर चूहोंसे आदमीपर संक्रामित होते हैं। साधारणतया ये कीड़े रोगीके मल, मूत्र, खून आदिसे निकलकर किसी घावके रास्ते अच्छे शरीरमें प्रवेश करते हैं। परन्तु शरीर के भीतर एक विशेष प्रकारकी अवस्था जब मौजूद रहती है तभी ये कीड़े वहां बढ़ सकते हैं। प्लेगके कीड़ोंके विस्तारके लिये एक विशेष प्रकारकी आबहवाकी आवश्यकता है। भारत-वर्षमें वायुमंडलकी गरमी ८५ फारेनहाइटसे नीचे आ जानेपर इन कीड़ोंके बढ़नेके लायक हालत पैदा हो जाती है। वर्षके दूसरे-दूसरे ऋतुओंमें भी चूहोंके शरीरमें इसके कीड़े दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उस समय इनका आक्रमन मनुष्यपर नहीं होता। अनुकूल जलवायु और अनुकूल परिस्थिति इन्हीं दो कारणोंसे इस बीमारीके कीड़ोंके बढ़नेके लिये हालत पैदा होती है। गंदे ठसाठस भरे हुये घरोंमें ही पहले-पहल प्लेग पैदा होता है (Manson's Tropical Diseases, P. 240)। यह देखा गया कि हवा और रोशनीसे भरपुर अस्पतालके मकानों में प्लेग नहीं घुस सका। चीन देशके हांगकांग नगरमें जिस समय गंदे घरोंमें रहने वाले चीनी मर-मरकर गांवके गांव उजड़ रहे थे, उस समय यूरोपियनोंके मुहल्लेमें यह बीमारी बहुत कम थी। भारतके पश्चिमी हिस्सोंमें भी देखा जाता है कि जब सब लोग घर छोड़कर मैदानकी खुली हवामें रहनेको बाध्य होते हैं तब यह बीमारी नहीं रहती। मैदानमें चूहे नहीं रहते या मैदानके चूहोंमें प्लेगके कीड़े नहीं होते, यह बात नहीं है। किन्तु खुली रोशनी और हवामें बीमारीके कीड़े कभी पनपने नहीं पाते। गंदी जगहोंमें भी सभीको प्लेग नहीं हो जाता। जिसके शरीरमें पहलेसे ही दूषित पदार्थ संचित रहते हैं और जिसके रोग- प्रतिरोधकी क्षमता घट जाती है, उन्हींके शरीरमें अनुकूल अवस्था उत्पन्न होनेके कारण रोगका आक्रमन होता है, दूसरोंको नहीं।

[२]

इस कारण फिर दूसरे-दूसरे रोगोंकी तरह ही शरीरको भीतर और बाहरसे शुद्ध कर लेना इस रोगका प्रधान चिकित्सा है। इसलिये बीमारी शुरू होते ही गरम पानीमें नीबूका रस डालकर उससे रोगीको एक बार डूश देना चाहिये। उसके बाद भी जबतक बीमारी अच्छी न हो तबतक प्रतिदिन दो बार डूस देना चाहिये। पेशाब के साथ भी बहुत जहर बाहर होता है इसलिये पेशाब अधिक करानेके विचारसे रोगीको हर घण्टे एक गिलास गरम पानी पिलाना चाहिये। इसके बाद गुनगुना पानी देना आवश्यक है। फेफड़ेके द्वारा भी काफी जहर निकल जाता है इसके लिये उसे जहाँतक हो सके खुली हवामें रखना चाहिये। चमड़ेके द्वारा रोग-विष बाहर करनेके लिये रोगीको बिछावनपर लिटाये हुए ही गरम फुटबाथ और उसके बाद एक घण्टेके लिये भींगी चादरकी पैक देना आवश्यक है। इस समय रोगीके चारों ओर कम्बलके नीचे गरम पानीसे भरे बोतल सजाकर रखने चाहिये। जबतक बीमारी तेज रहे ऐसा प्रतिदिन करना जरूरी है। इस तरह जहाँतक हो सके शरीरको विकारशून्य बना, साथ ही उसकी बीमारीसे लड़नेकी ताकतको बढ़ाना चाहिये। इसके लिये दिनमें तीन बार रोगीका सिर धोकर उसके समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना आवश्यक है। यदि दिनमें दो बार रोगीको ठंडी मालिश दी जाय तो उसको बड़ा फायदा होता है। प्रति बार उसे भींगी चादरकी पैक अथवा कोई गरम स्नान देनेके बाद ही उसके शरीरको इस प्रकारसे ठंडा कर देना आवश्यक है। रोगीको दिनमें दो बार पेरूकी पट्टी देकर उसे खोल देनेके बाद उसके समुचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना जरूरी है।

रोगीके पेटको विशेष रूपसे ठंडा रखना उचित है। इसलिये पहले दिनके बाद जब रोगीका जाड़ा-सा लगना बन्द हो जाय तो उसके पेड़ूपर भीगी पट्टीका प्रयोग करना चाहिये। पहले-पहल तो इसको प्रत्येक आधे घण्टे अथवा इसके गरम हो जाके साथ ही बदलते रहना चाहिये। पीछे

जब बुखार कम हो जाय तो प्रति दो-दो घण्टोंके बाद इसे बदला जा सकता है।

अगर जांघ आदिमें गिल्टी निकली हो तो उसपर हर तीन-तीन घण्टोंपर गरम-ठंढा देकर उसके बाद शेष समयके लिये उसको पुरी ढकी हुई पट्टीसे ढककर छोड़ देना चाहिये। गिल्टी पक जाय तो उसमें किसी उपायसे मुंह कर दिया जाना उचित है। इसके बाद सिम्हायी हुई मिट्टी ठंढा करके गिल्टीके ऊपर मोटी पुलटिस उसीसे चढ़ा देनी चाहिये। यह पुलटिस एक-एक घंटेपर बदलना जरूरी है। इसीसे फोड़ोंके मवादके रूपमें शरीरके भीतरका सारा जहर निकलता है और रोगी जल्दी आराम हो जाता है। जिस प्लेग में फेफरों की खराबी हो उसमें छाती को पट्टी देना आवश्यक है।

रोगीको पूर्णरूपसे पृथक रखना चाहिये। यह जरुरी है कि वह बिछावनपर पड़ा रहकर पूरा-पूरा आराम करे। रोगोके पूरा आराम न होनेतक उसे किसी भी तरह बिछावनसे उठने देना नहीं चाहिये।

बीमारी अच्छी हो जानेपर भी पेट खूब साफ रहे इस बातकी कोशिश करनी चाहिये। इसके लिये आवश्यकतानुसार बीच-बीचमें डूसका प्रयोग करना चाहिये पथ्य खा लेनेके बाद भी कमसे कम सात दिनोंतक पेटकी ढकी हुई पट्टीका प्रयोग करना उचित है।

परन्तु दूसरी बीमारी हो जानेपर इलाज करने से तो अच्छा है कि बीमारी हो ही नहीं, इसका इन्तजाम किया जाय। इसलिये प्लेग का दौरा शुरू होते ही नीबूके रसके साथ डूस लेकर उसके बाद भापका स्नान, भींगी चादरकी पेक या गरम पानीका पेर-स्नान आदि किसी तरहका गरम स्नान पूरे समयतक लेना जरूरी है। इसके अलावे रसके साथ प्रतिदिन खूब ढ़ेरसा पानी पीना भी आवश्यक है और कई दिनो तक केवल फल, फलोंका रस, सलाद, उबाली हुई तरकारी, तरकारीका रस, दूध, दही और मट्ठा आदि खाना उचित है। महामारीके दिनोंमें रोज दो बार ठंढे पानीसे नहाना चाहिये। क्योंकि बीमारीसे लड़नेकी ताकत

शरीरके भीतर बढ़ानेमें ठंडे पानीके स्नानसे बढ़कर और कुछ नहीं है। इन दोनों रोज एक बार हिप-बाथ भी लेना चाहिये। इसके साथ-साथ घर द्वार, गोदाम और बगान जहाँतक हो सके, खूब साफ रखना आवश्यक है। ऐसा उपाय करना चाहिये कि चूहोंके ठहरनेकी कोई जगह न रह जाय। घरके चूहोंको भी पकड़कर मार डालना चाहिये। जो चूहा स्वयं मर गया हो उसे हाथसे न छूकर किसी दूसरी चीजसे पकड़कर जला डालना चाहिये। क्योंकि प्लेगकी बीमारीको लानेवाला चूहा ही होता है, सन्देह नहीं है। रातमें खुली जगहमें खाने पीने की कोई चीज या खाने का बचा हुआ जूठन आदि भी बाहर न पड़ा रहे, इसका भी प्रबन्ध करना चाहिये। ऐसा करनेसे बाहरके चूहे घरके भीतर नहीं आते हैं। घरमें सभी जगहपर ब्लीचिंग पाउडर या चूना छिड़क देना उचित है।

[३]

बिल्कुल अच्छे न हो जानेतक रोगीको केवल नीबूके रसके साथ पानी पीकर रहना अच्छा है। ऐसा होनेसे प्रकृतिको यह अवसर मिलता है कि वह शरीरके भीतरके विषको विभिन्न मार्गोंसे निकाल सके। इसके बाद जब बीमारीके लक्षन सब लोप हो जाय तब रोगीको पानी या मट्ठा मिला हुआ फलोंका रस या केवल मट्ठा दो-एक दिनोंतक देना चाहिये। इसके बाद इन पथ्योंके साथ-साथ उसे दो-तीन दिनोंतक केवल फलाहार पर रखकर, उसके बाद जब उसका शरीर स्वच्छ हो जाय तब हरी तरकारीका सूप, पुराने चावलका भात आदि लिया जा सकता है।

षष्ठ अध्याय

लीवर व उसके रोग

(Liver and its diseases)

हमारे शरीरके भीतर जितनी ग्रन्थियाँ हैं, इनमें यकृत सबकी अपेक्षा बड़ा है। यह वजनमें प्रायः तीन सेर है और समस्त शरीरके वजनके प्रायः चालिस भागमेंसे एक भाग है। हमारा यकृत शरीरके भीतर अनेक प्रयोजनीय कार्य साधन करता है। आँतके कई अंश या एक किडनी काटकर फेंक देनेसे भी मनुष्य अनेक दिनों तक जीवित रह सकता है। ऐसा कि पाकस्थली काटकर निकाल देनेसे भी कई मासतक जीवित रहना सम्भव है; किन्तु यकृतका काम यदि सिर्फ २४ घंटेके लिये रुक जाय तो हमारी मृत्यु हो जाती है।

शरीर यंत्रका यह एक प्रधान रासायनिक कारखाना है। इस कारखानेका काम कभी भी बन्द नहीं रहता है। दिन-रात, सभी समय, जन्मसे मृत्यु पर्यन्त इसका काम चलता रहता है।

इस कारखानेका प्रधान काम ही है पित्तका उत्पादन करना। एक स्वस्थ मनुष्य के शरीरमें प्रतिदिन प्रायः तीन पाव पित्त उत्पन्न होता है एवं वह पित्तकोषसे निकलकर खाद्योंके साथ मिश्रित हो जाता है। पित्तरस चर्बी जातीय खाद्योंको परिपाक करता है, आँतके भीतर जाकर आँतकी क्रमिगति (peristalsis) को वृद्धि करता है एवं खाद्यद्रव्यके भीतर यह यथेष्ट रूपसे मिश्रित होने से खाद्य आसानीसे सड़ नहीं पाता।

लीवरका दूसरा काम यह है कि यकृतके अलावा शर्करा खाद्योंको यह चर्बीमें परिणत करता है। प्रोटीन खाद्यसे भी इस प्रकार लीवर चर्बी उत्पन्न करता है। शर्करा खाद्यके कितने ही अंश लीवर अपने असंख्य कोषोंके भीतर शक्तिके सद्भावसे रूपमें संचित रखता है।

इसको ग्लाइकोजन कहा जाता है। अधिक परिश्रम आदिके समय जब रक्तके भीतर चीनीकी मात्रा कम हो जाती है तब लीवर उसे रक्तके भीतर डालकर शरीरमें ताप व शक्ति उत्पन्न करता है।

गाजर प्रभृति खाद्यके भीतर केरोटिन नामक एक पदार्थ रहता है लीवर उसको अपनी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा 'ए' विटामिनमें रूपान्तरित करता है। अन्यथा देहके पक्ष में वह किसी काममें नहीं आता है। यह शरीरके कोषोंके भीतर विभिन्न विटामिन पकड़कर रखता है। विटामिन-ए, विभिन्न श्रेणीके विटामिन-बी, विटामिन-डी एवं विटामिन-के लीवर अपने कोषोंके भीतर संचय कर रखता है एवं जभी जिसकी आवश्यकता होती है, उसे देहके भीतर भेज देता है। इस कारण लीवर केवल शरीरके भीतर एक प्रधान रासायनिक कारखाना ही नहीं है बल्कि विभिन्न प्रयोजनीय रासायनिक उपादानोंका यह एक गुदाम घर भी है।

इसके अलावा लीवर खाद्योंका दोष नष्ट करता है,। रक्त जब खाद्य-रस लेकर लीवरके भीतर होकर जाता है तब यकृतके कोष शरीरके लिये उपभोगी खाद्योंका रास्ता छोड़ देता है एवं उसके भीतर जो विषाक्त और अनिष्टकर पदार्थ रहता है, उसे पकड़कर पित्तके आकारमें बाहर कर देता है। इस कारण यकृतको खाद्य-परीक्षक ('food-inspector) कहा जाता है। अधिकतर लीवर रक्तका दोष नष्ट करता है, औषधके विभिन्न विषोंको ध्वंस करता है एवं जीवाणुका आक्रमण होनेपर उसका प्रतिरोधक (antibody) गठन करता है।

इन्हीं सब कारणोंसे देहके भीतर लीवरकी अपेक्षा बड़ा बन्धु हमारा और नहीं है। किन्तु विभिन्न कारणोंसे यह खराब हो जा सकता है। जिनका सामान्य कारणोंसे ही औषध खानेका अभ्यास है, उनका लीवर औषधके विषके संसर्गमें आकर क्रमशः अक्षम हो जाता है। यदि कोई निर्दोष औषध भी अधिक दिनोंतक व्यवहार किया जाय, तब भी यह लीवरको खराब करेगा ही। वास्तवमें हरेक औषध, जैसे

क्लोरोफार्म, वेदना-निवारक विभिन्न औषध (anaesthetics), आर्सेनिक व फास्फोरस प्रभृति लीवरके कोषोंका बहुत बार ध्वंस करता है। यदि देहके भीतर कोई विष-केन्द्र रहें, जैसे पायरिया (pyorrhoea), प्रदाहयुक्त टान्सिल या पुराना घाव प्रभृति, तब उनके विषके साथ दिन-दिन लड़कर अन्तमें लीवर अवसन्न हो जाता है। यदि दीर्घ दिनोंतक कोष्ठबद्धता रहे अथवा आँतके भीतर खाद्य सहज ही विकृत हो उठे, तब भी बहुत बार ऐसा होता है। कुखाद्य व अखाद्य द्रव्य भी लगातार ग्रहण करनेके परिणाम स्वरूप लीवर खराब हो जाता है।

इस प्रकार लीवर खराब होनेके कारण कभी-कभी लीवर में सूजन आ जाती है। कभी-कभी लीवर बड़ा हो जाता है, कभी पित्ताशयमें प्रदाह उत्पन्न होता है, कभी पित्ताशयमें पथरी उत्पन्न हो जाती है एवं किसी समयमें कमला रोग हो जाता है।

किन्तु लीवर की जीवनी शक्ति सीमित नहीं है। लीवर देहका एक अति आवश्यक यन्त्र समझकर भगवानने इसके भीतर इस रूपकी आश्चर्यजनक व्यवस्था कर रखी है, जिससे कि अत्यन्त संकट-कालमें भी लीवर अपने आप अपना मरम्मत कर ले सकता है। यदि विष अथवा ट्यूमर प्रभृति के द्वारा अधिकांश लीवर ध्वंस हो जाता है, तो भी अवशिष्ट पंगु लीवर ही शरीरका सारा काम कर ले सकता है एवं लीवरके ध्वंस-प्राप्त स्थानोंमें अपने आप नये कोष व पित्तनाली उत्पन्न होती है (D. M. Dunlop, M. D., F. R. C. P. and others—Text-book of Medical Treatment, P. 82, Edinburgh, 1949)।

अन्यान्य यन्त्रोंकी तरह लीवरको अच्छा करनेका प्रधान उपाय ही रक्तस्रोतको परिष्कार करना। इससे केवल लीवरकी मेहनत ही कम हो जाती है, ऐसा नहीं, स्वस्थ रक्त के द्वारा लीवरके कोष नये होकर उठते हैं। इसलिये कुछ दिनोंतक प्रतिदिन जूस, हिपबाथ, पेटको पट्टी, पैरको

पट्टी, सप्ताहमें दो दिन भींगी चादरकी लपेट एवं बीच-बीचमें वाष्पस्नान लेना कर्तव्य है।

इसके साथ लीवरके ऊपर प्रति-दिन गरम-ठंढा देना उचित है। लीवरको अच्छा करनेके लिये इस तरहकी स्थानीय चिकित्सा दूसरी एक भी नहीं है। लीवर यदि बढ़ा हो जाय, तब लीवरके ऊपर सात दिन गरम-ठंढा लेनेसे ही वह स्वाभाविक आकार ग्रहण करता है। जब लीवरका सिरसिरसे जलोदर रोग होता है, तब भी लीवर के ऊपर गरम-ठंढा देनेसे मलका रंग हलदीके रंगका हो जाता है अर्थात लीवरके पित्त उत्पादनकी क्षमता लौट आती है।

लीवरके ऊपर मालिश भी लीवरके रोगोंमें अत्यन्त फलप्रद है। इच्छा होनेपर यह स्वयं ग्रहण किया जा सकता है। एक हाथ लीवरके ऊपर रखकर घुमा-घुमाकर मर्दन करनेसे ही लीवरकी मालिश होती है।

रोगीका नीबूके रसके साथ प्रचुर जल पानकर समस्त शरीरको भीतरसे धो देना कर्तव्य है।

बीच-बीचमें उपवास इस रोगमें अत्यन्त हितकर है। देहका रक्त परिष्कार करनेके लिये उपवास जैसा और कुछ भी नहीं है। इसीलिये यह सब रोगोंकी सर्वप्रधान चिकित्सा है।

रोग आरोग्यके बाद विभिन्न आसन व व्यायाम करना कर्तव्य है।

इस रोगमें पथ्यका नियंत्रण विशेष रूपसे आवश्यक है। रोगीका पथ्य इस तरहका होना चाहिये जो सहजपाच्य, अनुत्तेजक, प्रधानतः क्षारधर्मी एवं जो विभिन्न धातव लवणों और समस्त विटामिनोंसे समृद्ध है।

रोगीको प्रधान पथ्य ही होना उचित है देशी फल,: फलोंका रस, सलाद, सिझायी तरकारी, तरकारीका सूप, मट्ठा. मधु एवं चीनीके बदले राबादार गुड़।

इस रोगमें रोगीको कभी भी अधिक परिमाणमें चर्बी-जातीय खाद्य देना उचित नहीं है। कारण, अन्नवहा नालीमें यदि यथेष्ट पित्त नहीं

रहता है तब मक्खन या घी प्रभृति तो काममें ही नहीं आता, वरन् सड़कर लीवरको ही अधिक क्षतिग्रस्त करता है। इसलिये लीवरके रोगोंमें चर्बी-जातीय खाद्योंका काम शर्करा खाद्य द्वारा चलाना उचित है। चर्बी-जातीय खाद्योंके द्वारा देहका जो काम होता है, बहुत कुछ वही काम शर्करा खाद्योंके द्वारा हो जाता है। किन्तु वह भी प्रधानतः फल, शाक-सब्जी, मधु व तरल गुड़से ग्रहण करना कर्तव्य है। ग्लुकोजके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह हृदय व लीवरके लिये एक विशेष खाद्य है किन्तु ग्लुकोज ग्रहण करनेसे जो उपकार होता है वही तरल गुड़ खानेसे भी होता है (Margery Abrahams, M. D., M. Sc., and Elsie M. Widowson, D. Sc., Ph. D.—Modern Dietary Treatment, p. 55, London. 1951)। इस रोगमें रोगीको यथेष्ट रूपसे मधु भी देना उचित है, कारण मधुके भीतर सौमें ४२ भाग ही विशुद्ध ग्लुकोज रहता है एवं ग्लुकोज ग्रहण करनेसे लीवरकी क्षति (damage) विस्तृत नहीं हो पाती है (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 1, p. 217, London, 1951)। किन्तु यदि विशुद्ध मधु न पाया जाय, तब अवश्य ही ग्लुकोज लेना कर्त्तव्य है। बारह घंटा भियोयी हुई किशमिश, अंजीर (fig) व खुबानि भी खूब बढ़िया पथ्य है। रोगी को सर्वदा ही ढेंकी छाँटा चावलका मांड़ शोषित भात एवं चोकर समेत रोटी खाना उचित है। यथेष्ट परिमाणमें उबाला हुआ भुरभुरा आलू ग्रहण करना कर्तव्य है।

प्रोटीन खाद्योंके लिये रोगीको प्रधानतः मट्ठाके ऊपर निर्भर करना उचित है। रोगकी प्रबल अवस्थामें मट्ठा खूब बढ़िया पथ्य है। धातव लवण एवं अन्यान्य जिसकी जरूरत है, सभी इसके भीतर मिलता है (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 275, New York, 1951)।

रोगीके चाय, काफी, तम्बाकू, गरममसाला, हल्दी छोड़कर ...

प्रकारका मसाला, पुलाव, खीर व मिठाई प्रभृति दुष्पाच्य चीजें दूकानका खाना एवं सब प्रकारकी भूँजी व तली हुई सम्पूर्ण रूपसे छोड़ना कर्तव्य है। रोगीको घी छोड़कर जैतूनका तेल (olive oil) (विशुद्ध) या मुंगफलीका तेल अथवा अन्य कोई विशुद्ध तेल व्यवहार करना उचित है।

रोगीका पथ्य सर्वदा ही अत्यन्त हलका होना आवश्यक हैं। कारण कुखाद्य खानेसे पाकस्थलीकी जितनी क्षति नहीं होती है, उससे बहुत ज्यादा लीवरका होता है (J. H. Kellogg, M. D.—The New Dietetics, p. 732, Washington, 1928)।

लीवरकी सूजन

[Inflammation of the Liver]

जिन सब रोगोंमें साधारणतः यकृत आक्रान्त होता है, उनमें यकृतकी सूजन एक साधारण रोग है। भारतवर्ष जैसे गरम देशमें इस रोगका आक्रमण अत्यन्त अधिक होता है। यह रोग साधारणतः लीवरको वेदना, दाहिनी ओरके कंधे तक वेदनाका विस्तार, ज्वर, परिपाक यंत्रकी विश्रृंखला, मन्दाग्नि लेपावृत जिह्वा और कोष्ठवद्धता लेकर उपस्थित होता है। यह अवस्था प्रायः शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, किन्तु अनियमित जीवनयात्राके फलस्वरूप जब यह रोग पुराना हो जाता है, तब बहुधा यकृत बड़ा हो जाता है एवं उसमें प्रायः सदा ही दर्द होता रहता है। इस अवस्थामें बहुधा बवासीर एवं कभी-कभी पीलिया रोग हो जाता है। कभी-कभी इस रोगसे लोग क्रोधी स्वभावके हो जाते हैं और जीवनमें अवसाद उतर आता है। इस अवस्थाका शीघ्र ही प्रतिकार नहीं करनेसे जीवन ही विपन्न हो जाता हैं।

साधारणतः आहार-विहारके दोषसे ही यह रोग उत्पन्न हो जाता है। जो सदा अत्यधिक तेल वा घृतयुक्त पदार्थका आहार करते हैं, विशेषतः अत्यधिक परिमाणमें भूँजी व तली हुई चीजें, कचोरी, सिंघारा,

चप, काटलेट, अत्यधिक मसाला व पुलाव प्रभृति ग्रहण करते हैं उन्हें ही यह रोग हो जाता है। अत्यधिक मद्यपानसे भी यह रोग हो सकता है। मलेरिया व पेचिशसे भी कभी-कभी यह रोग होता है, क्योंकि शरीरकी दोषयुक्त अवस्था ही इसका मूल कारण है। देहका जो विष यकृत सदा ध्वंस करता है, जब वही विष यकृतपर ही आक्रमण करता है तब उससे सूजन उत्पन्न होती है।

इसलिए रक्तको साफ करना ही यकृतको अच्छा करनेका प्रधान उपाय है। नये रोगमें कई दिनोंतक नीबूके रसके साथ रोगीको प्रतिदिन डूस, नीबूके रसके साथ प्रचुर जल-पान, यकृतके ऊपर दिनमें तीन बार गरम-ठंढा, ज्वर रहनेपर यकृत एवं पेटके ऊपर बार-बार आधे घंटेके लिये मिट्टीकी पट्टी, ज्वर नहीं रहनेपर प्रति दो घंटेके अन्तरसे बदल-बदलकर पेड़-पीठ घुमाकर पेटकी पट्टी और रोगीका सिर दिनमें तीन बार धुलाकर तौलिया-स्नान (sponge bath) देना कर्तव्य है।

किन्तु रोग पुराना हो जानेपर रोगीकी कमसे कम दो मासके लिये चिकित्सा करना उचित है। इस समय रोगीके समस्त शरीरकी मालिश, कई दिन पेट व उसके बाद कई दिनों तक लीवरपर गरम-ठंढा, बादमें डूस, गरम-फूटबाथ एवं घर्षण स्नान प्रयोग करना उचित है। इनको छोड़कर सप्ताहमें दो दिन भींगी चादरकी लपेट एवं सारी रातके लिये पेटकी पट्टी लेना कर्तव्य है। किन्तु यकृतके ऊपर गरम-ठंढा एवं पेट-पीठ घुमाकर पेटकी पट्टी ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

इस रोगमें पथ्य नियंत्रण विशेष रूपसे आवश्यक है। जिन सब खाद्योंके द्वारा देह विशुद्ध व रक्त परिष्कृत होता हैं, वे ही इस रोगको आरोग्य करनेमें सहायता करते हैं। रोगकी प्राथमिक अवस्थामें रोगीको केवल कमला नीबू, मोसम्बी, बिजोरा नीबू व अनन्नास प्रभृति फलोंके रस जलके साथ मिलाकर देना उचित है। जलके साथ मधु उसके लिये हितकर है। इच्छा होनेपर रोगी छेनाका पानी भी ले सकता है। मक्खन निकाला हुआ मट्ठा भी उसके लिये अच्छा पथ्य है। इसके बाद उसे सेब, अमरूद, व पपीता प्रभृति फल, जलमें सिझायी हुई तरह-तरहकी शाक-सब्जियाँ,

तरकारीका सूप, माँड सहित ढेंकी छाँटा पुराने चावलका महीन अन्न व चोकर समेत आँटेकी रोटी देना उचित हैं।

अन्यान्य विषयोंके लिये "लीवर व उसके रोग" देखना चाहिये।

पीलिया या कमला रोग

[Jaundice]

हमलोगोंके यकृत (liver) से जो पित्त छोटी आंतमें उतर आता है, वह यद्यपि खाद्यद्रव्यको बिगड़नेसे बचाये रहता है और पचानेके काममें सहायता करता है, तो भी वह एक कड़ा जहर ही है। शरीरके सभी यन्त्रोंसे जो जहर निकलता है, उसमेंसे कोई भी पित्तके समान जहरीला नहीं है। जब किसी कारणसे पित्तकी नाली (bile duct) बंद हो जाती है और यकृतका रस छोटी आंतमें न उतरकर खूनके साथ मिल जाता है तब शरीरके खूनका प्रत्येक कण इस जहरसे जर्जरित हो जाता है और तभी यह बीमारी पैदा होती है। इस बीमारीमें जो कमजोरी और थकावट आ जाती है उसका प्रधान कारण यही है कि इसमें पित्तका जहर शरीरके खूनमें मिलकर शरीरके सभी यंत्रोंको विषाक्त बना डालता है।

इस बीमारीमें आँख, चमड़ा, पेशाब, पसीना और नसोंकी जड़ तक सभी हल्दीकी तरह पीले हो जाते हैं और रोगी जो भी देखता है वह भी उसे पीला ही दिखाई पड़ता है। पेट तो प्रायः गड़बड़ रहता ही है। कब्जियत या दस्त, सफेद या कादोके रंगका पैखाना बहुत बदबूदार मल, पेटमें दर्द, उलटी या उसका उद्वेग, भूखकी कमी, आलस्य, कमजोरी, सुस्ती, सिर-दर्द, नींदकी कमी, मुँहका स्वाद तीता, हिचकी और नाड़ीकी चाल भारी इत्यादि इस रोगके लक्षण दिखाई देते हैं। कभी-कभी मामूली बुखार भी होता है।

जब किसी कारणसे पित्तकी नाली बंद हो जाती है और उसके कारण पित्तकी धार खुनमें सूखती जाती है तभी यह रोग पैदा होता है।

पित्तकी नाली कई कारणोंसे बंद हो सकती है। पित्त-पथरी, पित्तकी नालीका सिकुड़ जाना, ठिउमर या सूजन और फुलाव आदि कारणोंसे यह होता है। बहुत बार मलेरिया, टाइफायड, न्यूमोनिया और हृदयके रोगोंके साथ-साथ यह बीमारी आती है। बहुत क्निाइन खानेसे, तांबा या पारेका जहर शरीरमें घुस जानेसे, अनियमित आहार-विहार उद्वेग और अशांतिसे भी यह बीमारी होती है। जब सब रासानिक विष कमला रोग उत्पन्न करता है, उनमें क्लोरोफार्म और आर्सनिक प्रधान है (E. T. Bell, M. D.—A Text-book of Pathology, p. 136, Philadelphia, 1956)। वास्तवमें इन सब कारणोंसे जब शरीरके भीतर एक जहरोली हालत (toxaemia) पैदा होती है और उससे जब पित्तकी नाली आक्रान्त होती है केवल तभी इस बीमारीके होनेकी सम्भावना हो सकती है।

इसलिये सभी तरहसे जहरोंके साथ शरीरसे पित्तके जहरको निकाल देना और शरीरके विभिन्न यंत्रोंको विशेषकर लीवर, पित्तकोष और पित्तकी नालीको स्वस्थ बनाना ही इस रोगकी प्रधान चिकित्सा है।

इसलिये पहले ही भींगी कमर-पट्टी लेकर खूब फल खाकर या

डूस

नीबूके रसके साथ ज्यादा गरम पानीका डूस लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये और बराबर उसे साफ रखना कर्तव्य है। उसे दिन-रात

कमर-पट्टीका प्रयोग करना आवश्यक है। यदि बुखार न हो तब तो इसे अच्छी तरह गरम कपड़ेसें लपेटकर रखना चाहिये। बुखार होनेसे इसे घंटे-घंटेपर बदल देना उचित है।

इस बीमारीमें भापका स्नान बहुत लाभदायक है। इसलिये इलाजके शुरूमें ही पेट साफ करके, पहले रोगीको दस-पन्द्रह मिनटोंके लिये एक बार भापका स्नान करना आवश्यक है। इस बीमारीमें खूनसे पित्तको बाहर कर देना और खुजलाहट मिटानेके लिये भापका स्नान लेनेके समान लाभदादयक और दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इसके अलावे रोज भूखे पेटमें आध घंटेके लिये यकृतके ऊपर २ से ५ मिनट गरम और २ से ५ मिनट ठंढा देकर गरम-ठंढी पट्टीका प्रयोग करना उचित है। पहली अवस्थामें यह दिनमें दो तीन बार देना जरूरी है। पीछे अच्छे होनेके साथ-ही साथ कम कर देना कर्तव्य है। यदि लीवरमें दर्द हो तो इस तरह गरम-ठंढा देनेके बाद भींगी कमर पट्टीका प्रयोग करनेसे ही यह दर्द अच्छा हो जाता है। रोगीको सबसे अधिक लाभ तो तब हो सकता है, जब उसे दिनमें दो बार गरम और ठंढा हिप-बाथ दिया जाय। ऐसा किया जाय तो यकृतके ऊपर एक ही बार गरम-ठंढा देनेसे भी काम चल सकता है। पित्तकी नालीकी रुकावट दूर करनेका यही सबसे अच्छा उपाय है। बुखार हो तो रोगीको दिनमें धूप-स्नान लेना या तीनसे छः मिनटोंतक स्टीम-बाथ लेना और उसके बाद स्नान कर लेना उचित है। इसके अलावे दिनमें दो बार रोगीका माथा अच्छी तरह धोकर उसका समूचा शरीर भींगे कपड़ेसे पोंछ डालना आवश्यक है।

रोगीको नीबूके रसके साथ रोज ढेरसा पानी पिलाना जरूरी है। यदि उसे बुखार हो तो पहले दो-एक दिन उसे इसी तरह पानीपर ही रखना अच्छा है। उसके बाद कमला नीबू, बिजोरा नीबू और अनन्नास आदिका रस पानीके साथ मिलाकर बार-बार ग्रहण करना आवश्यक है। रोज रोगीको आठ-दस कमला नीबू या ऐसे ही किसी और फलका इतना सा रस ग्रहण करना चाहिये। यदि उसे उलटी आती हो तो भी

पित्तकी नाली कई कारणोंसे बंद हो सकती है। पित्त-पथरी, पित्तकी नालीका सिकुड़ जाना, ठिउमर या सूजन और फुलाव आदि कारणोंसे यह होता है। बहुत बार मलेरिया, टाइफायड, न्यूमोनिया और हृदयके रोगोंके साथ-साथ यह बीमारी आती है। बहुत क्विनाइन खानेसे, तांबा या पारेका जहर शरीरमें घुस जानेसे, अनियमित आहार-विहार उद्वेग और अशांतिसे भी यह बीमारी होती है। जब सब रासानिक विष कमला रोग उत्पन्न करता है, उनमें क्लोरोफार्म और आर्सेनिक प्रधान है (E. T. Bell, M. D.—A Text-book of Pathology, p. 136, Philadelphia, 1956)। वास्तवमें इन सब कारणोंसे जब शरीरके भीतर एक जहरीली हालत (toxaemia) पैदा होती है और उससे जब पित्तकी नाली आक्रान्त होती है केवल तभी इस बीमारीके होनेकी सम्भावना हो सकती है।

इसलिये सभी तरहसे जहरोंके साथ शरीरसे पित्तके जहरको निकाल देना और शरीरके विभिन्न यंत्रोंको विशेषकर लीवर, पित्तकोष और पित्तकी नालीको स्वस्थ बनाना ही इस रोगकी प्रधान चिकित्सा है।

इसलिये पहले ही भींगी कमर-पट्टी लेकर खूब फल खाकर या

डूस

नीबूके रसके साथ ज्यादा गरम पानीका डूस लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये और बराबर उसे साफ रखना कर्तव्य है। उसे दिन-रात

कमर-पट्टीका प्रयोग करना आवश्यक है। यदि बुखार न हो तब तो इसे अच्छी तरह गरम कपड़ेसें लपेटकर रखना चाहिये। बुखार होनेसे इसे घंटे-घंटेपर बदल देना उचित है।

इस बीमारीमें भापका स्नान बहुत लाभदायक है। इसलिये इलाजके शुरूमें ही पेट साफ करके, पहले रोगीको दस-पन्द्रह मिनटोंके लिये एक बार भापका स्नान करना आवश्यक है। इस बीमारीमें खूनसे पित्तको बाहर कर देना और खुजलाहट मिटानेके लिये भापका स्नान लेनेके समान लाभदायक और दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इसके अलावे रोज भूखे पेटमें आध घंटेके लिये यकृतके ऊपर २ से ५ मिनट गरम और २ से ५ मिनट ठंढा देकर गरम-ठंढी पट्टीका प्रयोग करना उचित है। पहली अवस्थामें यह दिनमें दो तीन बार देना जरूरी है। पीछे अच्छे होनेके साथ-ही साथ कम कर देना कर्तव्य है। यदि लीवरमें दर्द हो तो इस तरह गरम-ठंढा देनेके बाद भींगी कमर पट्टीका प्रयोग करनेसे ही यह दर्द अच्छा हो जाता है। रोगीको सबसे अधिक लाभ तो तब हो सकता है, जब उसे दिनमें दो बार गरम और ठंढा हिप-बाथ दिया जाय। ऐसा किया जाय तो यकृतके ऊपर एक ही बार गरम-ठंढा देनेसे भी काम चल सकता है। पित्तकी नालीकी रुकावट दूर करनेका यही सबसे अच्छा उपाय है। बुखार हो तो रोगीको दिनमें धूप-स्नान लेना या तीनसे छः मिनटोंतक स्टीम-बाथ लेना और उसके बाद स्नान कर लेना उचित है। इसके अलावे दिनमें दो बार रोगीका माथा अच्छी तरह धोकर उसका समूचा शरीर भींगे कपड़ेसे पोंछ डालना आवश्यक है।

रोगीको नीबूके रसके साथ रोज ढेरसा पानी पिलाना जरूरी है। यदि उसे बुखार हो तो पहले दो-एक दिन उसे इसी तरह पानीपर ही रखना अच्छा है। उसके बाद कमला नीबू, बिजोरा नीबू और अनन्नास आदिका रस पानीके साथ मिलाकर बार-बार ग्रहण करना आवश्यक है। रोज रोगीको आठ-दस कमला नीबू या ऐसे ही किसी और फलका इतना सा रस ग्रहण करना चाहिये। यदि उसे उलटी आती हो तो भी

पानी पीनेको देना जरूरी है। पहली अवस्थाके बाद रोगी मट्ठा, मक्खन निकला हुआ दूध, छेना का पानी तरकारीका शोरवा, तरह-तरहको सब्जियों (परवल, पालक, गाजर, नेनुआ चिचिंगा और तरोई आदि) का कच्चारस, सलाद, मधु और तरह-तरहके फल व फलोंका रस ले सकता है। बीमारी अच्छी हो जानेपर कुछ दिनोंतक ऐक शाम थोड़ा-सा भात या रोटी खाकर दूसरी शाम यही ऊपर बताये हुए पथ्य लेना आवश्यक है। कुछ दिनोंतक: घी, मक्खन, अधिक तेल आदि चर्बी जातीय भोजन और दूध, मांस, चाय, काफी, गरममसला, सरसों मिर्चा, अधिक मसाले-वाली तरकारी, मुश्किलसे पचनेवाले खाद्य, मिठाई सभी तले हुए और मीठे पदार्थ विशेष रूपसे छोड़ देना चाहिये। घी, मक्खन और तेल आदि चर्बी जातिका खाना भी छोड़ देना जरूरी है, क्योंकि आंतके भीतर जब पित्त नहीं रह जाता तब कोई भी ऐसा खाना पच नहीं सकता। इस हालतमें तेल और घी खानेसे आंतके सड़नेके कारण जो जहर पैदा होगा उसके सारे शरीरको नुकसान पहुँच सकता है दीर्घ अवधिसे यह मान लिया गया है कि पका हुआ चर्बी जातीय खाद्य (cooked food) से ही लीवरके रोगमें अजीर्ण व वायु आदि प्रकाश पाते हैं (D. M. Dunlop, M. D, F. R. C. P. and others—Text-book of Medical Treatment, p. 586 Edinburgh. 1949)। यदि रोगीकी तरकारीमें कोई चर्बी जातीय खाद्य देना पड़े तब पकानेके बाद उबाली हुई तरकारीके साथ मिलाकर दिया जा सकता है। और और पथ्योंके लिये 'लीवर व उससे रोग' देखना चाहिये।

यकृतकी वृद्धि

[Enlargement of the liver]

यकृतकी वृद्धि कोई रोग नहीं है। मलेरिया व यकृतका प्रदाह आदि रोगमें यकृत बढ़ जाता है। इन सभी रोगोंका ही यह एक उपसर्ग मात्र है।

यकृतके ऊपर गरम-ठंढा देना एवं पेट-पीठ घूमाकर पेठकी लपेट देना ही इसको प्रधान चिकित्सा है। साधारणतः उसे ५ मिनटके लिये गरम सेंक देकर उसके तुरंत बाद ही उसे पाँच मिनटके लिये भींगे गमछे द्वारा घर्षण कर यकृतका स्थान ठंडा कर लेना उचित है एवं इसी प्रकार एक साथ तीन बार करना चाहिये। रोगीको बाईं करवट लिटाकर पसलीके ऊपर गरम-ठण्ढा देना उचित है। इससे बढ़ा हुआ यकृत कुछ दिनोंमें केवल स्वाभाविक आकारमें ही नहीं आ जाता वरन् यकृतका रूप ही नया हो जाता है। यहाँतक कि जब यकृतकी तन्तुएं आंशिक रूपमें ध्वंस (necrosis) हो जाती हैं तब भी यकृतके ऊपर गरम-ठण्ढा देनेपर यकृत शीघ्र चंगा हो उठता है।

यकृत हमारे शरीरके लिये दरवानके रूपमें है। जिस प्रकार किलेकी रक्षामूलक व्यवस्थाका भंग किये बिना किला दखल नहीं किया जा सकता उसी प्रकार यकृत आदि यंत्रोंको बिगाड़े बिना रोग-विष साधारणतः शरीरके ऊपर प्रभाव विस्तार नहीं कर सकता। इसलिये सब रोगोंमें ही कुछ दिनोंतक यकृतके ऊपर गरम-ठण्ढा और पेठकी लपेट देना उचित है।

तथापि यकृतकी चिकित्साके साथ-साथ सर्वदा ही शरीरको दोषशून्य एवं रक्तस्रोतको विशुद्ध करनेकी व्यवस्था करनी चाहिये। अन्यथा यकृत कभी भी स्वस्थ नहीं रखा जा सकता।

—०—

सप्तम अध्याय

क्षत रोग

अँभौरी

[Prickly heat]

यह स्वेद-ग्रन्थिकी सूजनसे उत्पन्न एक प्रकारकी पीड़ा है। असंख्य छोटे-छोटे व्रणके रूपमें यह पैदा होती है। इसमें उत्पन्न हुई खूजली बहुत कष्टदायक होती है। सरधारणतः गले से पेड़ू तक छाती व पीठकी ओर इसका प्रकाश होता है। कभी-कभी इसका आगमन थोड़े समयके लिये होता हैं, फिर कभी-कभी सारी गरमी भर यह एक बार आती है और पुनः अंतर्हित हो जाती हैं। यह ग्रीष्मकालका रोग है एवं वायुमें जलीय अंश (humidity) जब ज्यादा रहे तभी वह वृद्धि पाती है। छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं, स्थूलकाय व्यक्तियों एवं जिन्हें ज्यादा पसीना आता है उन्हें ही साधारणतः ज्यादा अंभौरी होती है।

साधारणतः लोमकूप बन्द होकर ही यह रोग उत्पन्न होता है। इस अवस्थामें चमड़ेके नीचे पसीना संचित होता है और तब प्रकृति छोटे-छोटे व्रण उत्पन्न कर वह कूड़ा-करकटको बाहर कर देती है। प्रकृतिकी इस चेष्टाका नाम ही है अंभौरी।

अत: पावडर आदि द्वारा लोमकूप बन्द करना ही इसका इलाज नहीं है।

अंभौरी जब यन्त्रणादायक होती है, तब सर्वप्रथम नीमके पत्ते औटाये हुए जलसे डूस लेकर पेटको साफ कर भाप-स्नान ग्रहण करना उचित है और तौलिया-स्नान ग्रहण करके शरीरको ठंढा कर लेना कर्तव्य है।

रोगीको हर रोज दिनमें दो बार २० मिनटके लिये पेड़ूपर आधी इञ्ची मोटी कादो मिट्टीकी पुलटिस रखनी चाहिये। सारे शरीरमें कादो

मिट्टी लगाकर एक घंटा धूपमें रहनेके बाद स्नान करनेसे भी बहुत अवस्थाओंमें दो-तीन रोजमें अंभौरी अन्तर्हित हो जाती है।

रोगीको कुछ दिनों तक दिनमें एक बार २० मिनटके लिये भींगी चादरकी लपेट (cooling wet-sheet pack) देनेपर अत्यन्त उपकार होता हैं। इससे बन्द रोमकूप खुल जाते हैं एवं शरीरका बन्द उत्ताप व विष शरीरसे निकल जाता है। अतएव इसके प्रयोगसे अति सहज ही अंभौरी आराम हो जाती है।

जिन्हें ज्यादा अंभौरी होती है उन्हें सर्वदा हल्के कपड़े पहनना, ठंडे घरमें रहना, यथासंभव खुले बदन रहकर शरीरमें हवा लगाना, स्नानके पहले कुछ दिनों तक दस मिनट हिप-बाथ लेकर उसके बाद दोनों वक्त स्नान, अनुत्तेजक खाद्योंका आहार एवं कोष्ठको विशेष रूपसे परिष्कार रखना कर्तव्य है। पसीना कभी भी शरीरमें न सूखने पावे इसकी ओर ध्यान रखना आवश्यक है।

रोगीको जितना सम्भव हो कम नमक ग्रहण करना चाहिये, इससे केवल रोगसे ही छुटकारा मिलता है, ऐसा नहीं, बहुत अवस्थाओंमें रोग भी आरोग्य होता हैं (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 630, London, 1954)।

कलकल

[Scabbies]

कलकल एक तरहका क्षत रोग है। गरदनसे लेकर पैरकी उंगलियों-तक ऐसा कोई स्थान नहीं जहां कलकल न होता हो। साधारणतः हाथ पैरकी उंगलियोंकी सन्धि, हाथ और पाँवके केहुनी के पीछे जांघ तथा चुतर में होता है। छोटे-छोटे बालकोंको विशेषतः पैरमें ही अधिक घाव होता है। बच्चोंके अलावा और किसीके शिर या मुँहमें घाव नहीं होता।

इस रोगका कारण एक विशेष प्रकारके जीवाणु (Acarus

scabbies) को बताया जाता है। इन जीवाणुओंके सम्बन्धमें यथेष्ट गवेषणा भी हो चुकी हैं। इन जोवाणुओंमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्री जातिके जीवाणु ही विशेष रूपसे हानि करते हैं। क्योंकि वे चमड़ेके भीतर गढ़े खोदकर प्रायः एक-चतुर्थ भाग नीचे अंडे देते हैं। किन्तु इन जीवाणुओंको सदा ही स्वस्थ चमड़ेके उपर चलते-फिरते देखा जाता है। तो भी ये देहका कोई भी अनिष्ट नहीं कर पाते। यह सच है कि जिन लोगोंको कलकल हुआ हो उनके साथ संसर्ग करनेसे ये जीवाणु एक देहसे दूसरी देहमें जाते हैं। किन्तु जिनके शरीरमें अत्यधिक दूषित पदार्थ रहनेके कारण पहलेसे ही कलकल होनेके योग्य अनुकूल अवस्था रहती है, संसर्गके कारण केवल ऐसे ही शरीरको कलकल पकड़ता है। इसलिये कलकलको स्थान.य रोग समझना भूल है। वास्तवमें यह समस्त शरीरका रोग है। केवल उसका प्रकाश कई घावोंके द्वारा होता है। प्रकृति देहके विषाक्त पदार्थोंकी विभिन्न पथ होकर बाहर निकालना चाहती है। जब वह चर्मके भीतर होकर विशेष एक पद्धतिसे बाहर करती है तब उसे कलकल कहा जाता है। जो नाली मकानसे कूड़ा बाहर करती है, उसको बन्द कर देना जैसे अन्याय है, जिस दरवाजेसे होकर प्रकृति देहके विषको बाहर कर देना चाहती है उसको बन्द कर देना भी उसी तरहसे अपराध है। मलहम आदिके द्वारा कलकल आराम किया जाता है यह सत्य है, किन्तु उससे बीमारी अच्छी नहीं होती। कुछ दिनों तक वह रुक जाती है, उसके बाद अजीर्ण, शिर पीड़ा वा अन्य कठिन रोगोंको रूपमें आत्म प्रकाश करती है।

अतएव देहकी जो दूषित अवस्था कलकल उत्पन्न करती है और देहको जिस हालतमें कलकलका जीवाणु देहमें आसानीसे वृद्धि प्राप्त होता है, उसको दूर करना ही कलकलका सबसे प्रधान इलाज हैं।

वास्तवमें रोगीके स्वास्थ्य-सुधारके लिये जो कुछ करना प्रयोजन है वही करना चाहिये (Oliver S. Ormsby, M. D.—Diseases of the Skin, p. 112. London, 1948)।

इसलिये सर्वप्रथम नीमके पत्ते औटाये हुए पानीसे पेट साफ कर लेना कर्तव्य है एवं कलकलके न सूखनेतक इसी प्रकार प्रतिदिन धूरु लेना चाहिये। बीच-बीचमें रोगीको भाप-स्नान ग्रहण करना उचित है। इसके अलावा दिनमें एक बार हिप-बाथ, एक बार ३० मिनटके लिये पेड़पर मिट्टीकी पुलटिस एवं नीबूके रसके साथ प्रचुर जलपान करना कर्तव्य है। इस प्रकार शरीरको दोषमुक्त कर कलकलके उपर सामान्य चिकित्सा करनेसे ही कलकल आराम हो जाता है।

कलकलके ऊपर दिनमें एक बार ५ मिनटके लिये गरम सेंक देकर दिनमें दो बार एक घंटेके लिये आधा इञ्च मोटी काली मिट्टीकी पुलटिस देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। उसके बाद भी घावमें यंत्रणा होनेपर मिट्टीकी पुलटिस दी जा सकती है। यदि शरीरके बहुत-से स्थानों में कलकल हो तो जिस स्थानपर ज्यादा हो उस स्थानपर मिट्टी देना उचित है। किन्तु कलकलके ऊपर तभी मिट्टी देना चाहिये जब कलकलमें घाव उत्पन्न होता है। एक स्थानसे शरीरका विष उठ जानेपर अन्यान्य स्थानोंके कलकलका भी उपकार होता है। कलकलके ऊपर दी जानेवाली पट्टी सूख जानेके पहले ही उठा लेना अथवा बदल देना कर्तव्य है एवं कभी भी एक बारमें एक घण्टेसे ज्यादा समय तकके लिये देना उचित नहीं।

कलकलके ऊपर प्रयोग करनेवाली मिट्टी एक मिट्टीकी नयी हंडीमें एक घण्टेतक खौलाकर ठण्डा कर लेना चाहिये। रोगी यदि प्रतिदिन हिप-बाथ ग्रहण करे तो सर्वदा ही उपकार होता है।

रोगीको प्रधानतः फल, फलोंका रस, सलाद, उबाली हुई तरकारी और रोटी खाकर रहना उचित है। रोटीके साथ कुछ दिनोंतक कच्चा खानेपर अत्यन्त उपकार होता है।

व्रण

[Boil]

रोमकी जड़में कुछ थोड़ा-सा स्थान प्रदाहयुक्त होकर लाल व ऊँचा हो उठनेपर उसे व्रण कहा जाता है। यह किसी समय एक, कभी-कभी एक साथ ही बहुत सा एवं समय समयपर एक बार ठीक हो जानेपर भी पुनः झुण्डका झुण्ड आता है। शरीरमें ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ व्रणका उद्गम नहीं हो सकता है।

व्रण निकलनेके पश्चात् कुछ दिनोंतक क्रमशः बढ़ता रहता है। यह छोटे मटर-दानेके आकारसे लेकर अण्डेके बराबर तक बड़ा होता है। इसके बाद व्रणका मुँह सादा पड़ने लगता है। चार-पाँच दिनोंमें यह फट जाता है एवं इसके भीतरसे मज्जाके समान एक चीज, रक्त, पीव और गले हुए तन्तुओंके साथ बाहर निकलने लगती है और इसके बाद तीन-चार दिनोंमें ही घाव सूख जाता है।

विशेष प्रकारके एक जीवाणु द्वारा जब शरीरके तन्तु आक्रान्त होते हैं, तभी साधारणतः यह रोग होता है किन्तु स्वस्थ व्यक्तिके रोमकूपके भीतर सर्वदा ही इन जीवाणुओंको देखा जाता है, तथापि वे कुछ भी नुकसान नहीं कर सकते। सभी रोग-जीवाणु शरीरमें जमा हुआ विभिन्न कूड़ा-करकटके ऊपर वृद्धि पाते हैं और वे मृत जैव पदार्थ (morbid matter) खाकर ही जिन्दा रहते हैं (Joseph W. Bigger, M. D., F. R. C. P.—Handbook of Bacteriology, p. 185, London, 1949)। जब शरीरके भीतर रोग-जीवाणुके विस्तारके अनुकूल वह अवस्थाकी सृष्टि होती है, केवल तभी ये शरीरके अन्दर घर बनानेमें सक्षम होते हैं। इसलिये जो लोग मूत्र ग्रन्थिकी सूजन संग्रहणी (colitis) मधुमेह एवं दुर्बलता (debility) आदिसे पीड़ित रहते हैं साधारणतः उनके देहमें ही व्रणका उद्गम होता है अर्थात्

विमल रोगोंमें मल और त्याज्य (wastes) पदार्थों से शरीर भाराक्रांत होता है। और उसके फलस्वरूप शरीरकी रोग-प्रतिरोध क्षमता (resisting power) जब कम हो जाती है तभी साधारणतः व्रण होता है। इसलिये व्रणको कभी भी स्थानीय रोग समझना उचित नहीं है। यह सारे शरीरका रोग है, इसका प्रकाश केवल विशेष-विशेष स्थानपर होता है। इसलिये जिस प्रकार व्रणकी चिकित्सा करना आवश्यक है। उसी प्रकार साथ-ही-साथ शरीरको दोषमुक्त करनेकी ओर भी दृष्टि देना प्रयोजन है।

[२]

व्रणके उद्गम होते ही, बिना देरी किये उबाले हुए नीम पानीका डूस लेकर कोष्ठ साफ कर लेना कर्तव्य है एवं जितने दिन तक व्रण आरोग्य न हो, उतने दिन तक इस तरहसे डूस लेना उचित है।

व्रण उठनेके बाद दससे पन्द्रह मिनठ तकके लिये एक वाष्प-स्नान लेनेसे बहुत लाभ होता है। कठिन अवस्थाओंमें अथवा एक साथ बहुत-से व्रण उठनेपर रोगीको सप्ताहमें दो-तीन बार वाष्प-स्नान लेना कर्तव्य है। उस समय व्रणके ऊपर बड़ी व कई तह की हुई भींगी तौलिया रखना जरूरी है।

इसके साथ काफी नीबू पानी पीना कर्तव्य है। अर्थात् The organs of excretion must be assisted to get rid of the circulating toxins as soon as possible—रक्तके भीतर जो विष चक्कर लगाता है, उसे बाहर कर देनेके लिये देहके अपनयनमूलक (eliminative) यंत्रोंको सहायता करना कर्तव्य है (R. M. Handfield-Jones, M. S. F. R. C. S., and Sir Arthur E. Porrith, M. A., F. R. C. S.—The Essentials of Modern Surgery, p. ७, London, 1957)।

रोगीको प्रतिदिन एक बार ठंढे जलमें हिप-बाथ एवं दो बार नातिशीतोष्ण जलमें दीर्घ समय तक स्नान करना उचित है। उससे कभी भी खूनकी खराबी (septicemia) नहीं हो सकती। इस सब व्यवस्थाओं द्वारा रोगीका शरीर दोषमुक्त कर लेनेसे उसका स्वास्थ्य अच्छा होनेके साथ-साथ व्रण भी शीघ्रतासे आरोग्य लाभ करता है। वास्तवमें the treatment consists in improving the general health of the patient—रोगीका स्वास्थ्य गढ़ डालना ही चिकित्साकी पहली बात है। (Hamilton Bailey, F. R. C. S., and R. J. Mc Niell Love—A Short Practice of Surgery, p. 704, London)।

पहली अवस्थामें व्रणके ऊपर केवल गरम सेंक देना उचित है। यदि व्रणमें अत्यन्त वेदना हो तो सेंक देने के बाद व्रणके उपर एक घंटेके लिये दिनमें दो-तीन बार ढकी हुई पट्टी रखना उचित है। पहली अवस्थामें व्रणके ऊपर पट्टी या शीतल जलकी अनावृत पट्टी नहीं रखनी चाहिये। उससे व्रण बैठ जा सकता है। व्रणके ऊपर तेल लगाना भी कभी उचित नहीं है।

जब व्रणके भीतर पीव आता है, तब उसके ऊपर पाँच मिनटके लिये अत्यन्त मृदु सेंक देकर उसके तुरन्त बाद ही ५ मिनटके लिये शीतल जलकी पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। ऐसा एक साथ तीन बार और दिनमें दो-तीन बार करना चाहिये।

व्रण फुट जानेपर दिनमें दो बार थोड़े समयके लिये क्षतके ऊपर सेंक देकर उबालकर ठंढी की हुई स्वच्छ कादो मिट्टीकी पुलटिस या जलकी ढकी हुई पट्टी एक घंटेके अन्तरसे बदलकर प्रयोग करना आवश्यक है। मिट्टी और जलकी हमेशा भींगी रहनी चाहिये एवं कभी भी एक साथ एक घंटेसे अधिक समयके लिये रखना उचित नहीं है।

व्रण अत्यन्त साधारण श्रेणीका न होनेपर, व्रण होनेपर यथेष्ठ रूपसे विश्राम करना आवश्यक है। उसे सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य न होनेतक

हठात् अत्यधिक परिश्रम करनेसे रोग अत्यन्त भयंकर हो जा सकता है। रोगी यदि यथेष्ठ मात्रामें विश्राम न करे तो प्रायः ही रोग लौट आता है एवं बहुधा समस्त चिकित्सा ही बेकार हो जाती है।

व्रण-चिकित्साके सम्बन्धमें कितनी ही अत्यधिक कुव्यवस्था प्रचलित है। उसमें छूरी चलाना ही प्रधान है। व्रणके ऊपर कभी भी अस्त्रोपचार न करना चाहिये (Patricy Kiels, B. Sc., M.D., F.R.C.S.—Text-book of Surgery, p. 154, London 1949)। जिस किसी अवस्थामें ही व्रणके ऊपर अस्त्रोपचार करनेसे व्रणको परमायु दीर्घतर होती है (Leonard Williams, M.D.—Minor Maladies and their Treatment, p. 216)। और एक कुप्रथा है मैदा इत्यादि को पुलटिसका प्रयोग। लगातार पुलटिस प्रयोग करते-करते उस स्थानकी रोग-प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है एवं उसके फलस्वरूप मूल व्रणको केन्द्र कर और भी बहुत-से व्रण उत्पन्न होते हैं। किन्तु सबसे अधिक प्रचलित बर्बरता है व्रण चीपकर उससे पीब बाहर करना। व्रणके ऊपर दबाव देना जितना वेदनादायक है उतना ही अनिष्टकर है। व्रणके ऊपर चाप देनेसे इसके चारों ओरके तन्तु ध्वंस, हो जाते हैं, अन्ततः इनको रोग-प्रतिरोध क्षमता सम्पूर्ण रूपसे ध्वंस हो जाती है एवं व्रणके विष व जीवाणु प्रतिद्वन्दीहीन क्षेत्र पाकर उसके भीतर तेजीसे विस्तार करते हैं। व्रणका अस्त्रोपचार करनेसे इसी तरहकी क्षति होती है (Ibid p. 217)।

व्रणके घावको कभी भी जबर्दस्ती आरोग्य नहीं करना चाहिये। कारण प्रकृति व्रणके भीतरसे जो विष बाहर कर देना चाहती है व्रणके घावका मुँह बन्द कर देनेसे, प्रकृतिकी वही नाली ही बन्द कर दी जाती है। जब चेष्टा करनेसे भी घाव आरोग्य नहीं हो पाता है एवं दीर्घ दिनों तक घाव बहता रहे तो समझना होगा कि रोगीका देह एक कूड़ाखाना हो गया है। तब देहको सभी प्रकारसे दोषमुक्त करनेकी चेष्टा करना कर्तव्य है। ऐसा होनेपर निश्चित रूपसे घाव आरोग्य लाभ करता है।

यह सर्वदा ही स्मरण रखना कर्तव्य है, The various organs, the diseases of which are subdivided for treatment, are not isolated, but complex part of a complete whole—शरीर के विभिन्न अंग, चिकित्साके लिये जिनका विभिन्न रोग विभिन्न रूपसे बाँटा गया है, वे सब अलग-अलग रोग नहीं हैं, वे सभी ही पूर्ण देह-यंत्रके जटिल अंशमात्र हैं (Ronald Raven, F.R.C.S.—Surgical Care, p. 9, London, 1952)।

[२]

प्रथम अवस्थामें उपवास कराना हो व्रणकी पहली चिकित्सा है। इससे अपने आप व्रणका तेज कम हो जाता है। व्रण यदि अत्यन्त खराब जातिका होता है तब दीर्घ समयके लिये उपवास कराके रखना कर्तव्य है। किन्तु इस समय नीबूके रस के साथ प्रचुर जलपान करना उचित है, जिससे जलके साथ यथेष्ट रोग-विष बाहर हो जाता है। उसके बाद रोगकी प्रबल अबस्था रहने तक उसे फल व फलोंका रस, सलाद, कच्चे शाकोंके रस एवं जलके साथ मधु खाकर रहना उचित है। उसके बाद मट्ठा, तरकारीका सूप, सिझाई हुई तरकारी व चोकर समेत आँटेकी रोटी खानी चाहिये। रोगीको दूधके बदले सर्वदा ही मधु सहित दहीका मट्ठा देना उचित है। कुछ दिनतक रोगीको चीनी, अत्यधिक श्वेतसार जातीय खाद्य, हल्दीको छोड़कर सब मसाले, सभी प्रकारकी भूँजी और तली हुई चीजें, दूकानोंका खाना, पुलाव, मिष्टान्न प्रभृति दुष्पाच्य पदार्थ, भोज, अत्यधिक आहार व असमयमें आहार करना छोड़ देना कर्तव्य है।

मसूड़ेका व्रण

[Gum boil]

यह व्रण आकारमें छोटा होता है, किन्तु इसका दर्द खूब बड़े फोड़ेसे भी ज्यादा होता है। दांतके गड्ढेमें इसकी उत्पत्ति होती है।

एवं यह मसूड़ोंके बीचसे फूट पड़ता है। दांतकी जड़में जो सभी स्नायु मर जाते हैं एवं दांतकी जो मज्जा सड़ जाती हैं वे ही स्वाभाविक रूपसे बाहर न निकल सकनेपर प्रकृति व्रण उत्पन्न कर उसे बाहर कर देती है। समय-समयपर नष्ठ हुए दांतकी उत्तेजना (irritation) से भी यह व्रण उत्पन्न होता है।

पहले दांतमें दर्द होता है एवं क्रमशः बढता हुआ चार-पांच दिनोंतक रहता है। उसके बाद जिस दांतमें दर्द होता है उसके आसपासके मसूड़े फूल उठते हैं एवं कुछ दिनोंके बाद फूट जाते हैं। यदि उसे छोड़ रखा जाय, तो फूटनेमें बहुत दिन देरी हो सकती है।

इस व्रणका उद्‌गम होते ही गरम-ठंडी कुल्ली करना आवश्यक है। दो-तीन मिनट जितना सहन हो उतने गरम जलमें कुल्ली कर उसके तुरन्त बाद ही जितना ठंढा जल सहन हो उतने ठंढे जलमें दीर्घ समयतक कुल्ली करनी चाहिये। इसके अलावा दिनमें कम-से-कम तीन बार कोमल हाथोंसे मिट्टी द्वारा दांत मलना उचित है। अन्यान्य चिकित्सा व्रण चिकित्साके समान है। रोगीके वृणसे उत्पन्न हुआ पीव जिससे खाद्यद्रव्यके साथ मिलकर पेटके भीतर न जाय उसपर हमेशा ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये भोजनके तुरन्त पहले गरम ठंढी कुल्ली लेकर और मिट्टीसे दंतमंजन करनेके बाद भोजन ग्रहण करना उचित है। अन्यान्य चिकित्सा वृण चिकित्साके समान है।

नाकका व्रण

[Boil of the nose]

किसी-किसी आदमीकी नाकके भीतर प्रायः ही वृण उत्पन्न होता है। वह एक बार फूट जाता है एवं फिर नया होकर जन्म लेता है। यह अत्यन्त कष्ट देता है।

नाकके ऊपर तीन-चार मिनटके लिये गरम सेंक देकर एवं उसके तुरन्त बाद ही तीन-चार मिनटके लिये ठंढा देना ही इसकी प्रधान

चिकित्सा है। इस तरह गरम-ठंढा एक साथ तीन बार एवं दिनमें दो बार प्रयोग करना कर्तव्य है। अन्यान्य समस्त चिकित्सा ही व्रणोंकी चिकित्साके समान है

उँगलीका फोड़ा

[Felon]

संसारमें ऐसा कष्टदायक रोग कम ही है।

किसी एक उँगलीके विशेष स्थानपर सर्वप्रथम दर्द अनुभव होता है एवं दर्द क्रमशः बढ़ता रहता है। किसी-किसी समय दर्द इतना बढ़ जाता है कि रोगी रातको सो नहीं पाता एवं दर्दकी पीड़ासे छटपट करता है। बादमें दर्दके स्थानपर एक लाल बिन्दुकी तरह निकलता है और अंतमें वह बड़ा होकर घाव उत्पन्न करता है। उँगलीका फोड़ा कभी-कभी साधारण (simple felon) और कभी-कभी हड्डीकी सूजनयुक्त (bonny felon) हो सकता है।

यह रोग होते ही चिकित्सा शुरू करना कर्तव्य है, नहीं तो जीवन भरके लिये उँगली बेकार हो जा सकती है।

दिनमें तीन-चार बार ५ से १० मिनटके लिये खूब गरम सेंक देकर बाकी समयमें उँगली अथवा आवश्यकता होनेपर हाथका कुछ हिस्सा ठंडे जलमें डूबाकर रखनेपर ही अधिकांश समय दर्द दूर हो जाता है। जल अत्यन्त ठंढा होना आवश्यक है। इसके लिये बर्फका पानी व्यवहार किया जा सकता है। यदि दीर्घ समय तकके लिये हाथ पानीमें डुबा रखना असम्भव हो तो खूब शीतल जलमें भींगा हुआ लत्ता उँगलीमें लपेटकर रखनेसे भी चलता है। या बीच-बीचमें एक घंटेके लिये मिट्टीकी लपेट देना कर्तव्य है। यदि उँगलीमें मवाद आनेकी अवस्था हो तो घावके स्थानपर ५ मिनट गरम सेंक एवं ५ मिनट ठंढी पट्टी इस प्रकार आधे घंटेके लिये दिनमें तीन-चार बार गरम-ठंढी पट्टी प्रयोग करना उचित है। यदि उँगली पक जाय तब एक शुद्ध सूई द्वारा एक छोटा-सा

मुँह किया जा सकता है। कारण उँगलीका चमड़ा इतना मोटा है कि वह सहज ही फटना नहीं चाहता। इसके फूट जानेपर ठंढी की हुई उबाली कादो मिट्टी घावके ऊपर प्रयोग करना कर्तव्य है एवं दिनमें दो-एक बार मृदु सेंक देना उचित है। इसीसे घाव व दर्द आराम लाभ करता है। इसके साथ ही रोगीको दोनों वक्त कटि-स्नान ग्रहण करना चाहिये अथवा पेटपर पानी डालकर स्नान करना उचित है। घाव यदि सहज ही नहीं अच्छा हो तो रोगीको एक अथवा एकाधिक बार भाप-स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। पथ्यादि अन्यान्य सभी व्रण चिकित्साकी तरह ही हैं।

फोड़ा

[Abscess]

देहके किसी स्थानपर पीव उत्पन्न होनेपर किसी-किसी अवस्थामें उसे फोड़ा कहते हैं।

केवल जीवाणुसे ही जो फोड़ा होता है, ऐसी बात नहीं। जिन कारणोंसे दैहिक तन्तुके भीतर उत्तेजनाकी (irritation) सृष्टि होती है, उसीसे फोड़ा हो सकता है। इस प्रकार कई बार बन्दूककी गोलीसे अथवा एमोनिया आदि चमड़ेके नीचे भर देनेपर उससे फोड़ा उत्पन्न होता है।

फोड़ा गठित होने के पहले वह स्थान वेदनायुक्त, लाल, सख्त, उत्तप्त व फूल जाता है। मवाद होनेके साथ-साथ दर्द क्रमशः बढ़ता रहता है। फोड़ेके चारों ओर चमड़ा धीरे-धीरे पतला हो आता है, बीचका मांस भी क्रमशः नरम होता है एवं प्रबल रूप से बढ़नेके साथ-साथ फोड़ा पक जाता है एवं अन्तमें फूट जाता है। पहले पीले रंगका बहुत-सा मवाद बाहर निकलता है एव बादमें वह गड्ढा सिकुड़ जाता है। यदि फोड़ेसे जल, क्लेद अथवा हरे रंगका मवाद निकले तो बहुत डरकी बात समझनी चाहिये। वह फोड़ा अच्छा होनेमें बहुत समय लेता है।

समय-समयपर फोड़ेके साथ १०२° तक ज्वर होता है। उसके साथ कोष्ठबद्धता, दुर्गन्धयुक्त निश्वास, लेपावृत जिह्वा एवं सिर-दर्द, अनिद्रा, भूखकी कमी तथा अस्थिरता आदि वर्तमान रहती है।

रोगीको शुरूसे ही पूर्ण उपवास करना चाहिये। ज्वर जिस प्रकार उपवाससे कम होता हैं, उसी प्रकार फोड़ा भी बहुत बार केवल उपवाससे ही आराम होती है। फोड़ा यदि भयंकर क़िस्मका हो तो दो-चार दिन केवल नीबूके रसके साथ जल पान कर उपवास करनेसे बहुत-सी विपत्तियोंसे रक्षा पाई जा सकती है।

फोड़ाका प्रकाश होते ही, बिना देरी किये विश्राम ग्रहण करना कर्तव्य है। यदि शरीरके किसी स्थानपर फोड़ा उठनेवाला हो तब बहुधा व्रण केवल परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करनेसे ही फोड़ाका और प्रकाश नहीं होता। हाथ-पैरमें फोड़ा हो तो उस स्थानको हमेशा ऊँचा रखना चाहिये। ऊँचा रखनेसे ही दर्द आपसे आप कम हो जाती है (Hamilton Bailey, F. R. C. S., and R. G. McNeill Love—A Short Practice of Surgery, p. 4, London, 1956)।

अन्यान्य चिकित्सा व पथ्यादि व्रणके ही समान है।

जहरवाद

[Carbuncle]

जहरवादका संस्कृत नाम है दुष्ट व्रण। यह व्रणके ही अन्तर्गत आता है। किन्तु व्रणके साथ दुष्ट व्रणका पार्थक्य यही है कि व्रणका एक मुँह होता है, दुष्ट व्रणके अनेक मुँह होते हैं। इसमें एक ही समय सटे हुए बहुत-से व्रण हो जाते हैं। साधारणतः यह ग्रीवा, गर्दन, होठ, पीठ, जांघ एवं माथेमें होता हैं। जब यह जांघमें होता है तब इसे जानुस्तंभ कहते हैं; पीठपर होनेसे पृष्ठाघात, इसी प्रकार ये एक ही किस्मके व्रण हैं किन्तु विशेष-विशेष स्थानोंपर होनेके कारण इनके विभिन्न नाम दिये

जाते हैं। यह व्रण मुँह अथवा मस्तिष्कके चमड़ेमें होनेपर बहुत ही भयंकर होता है।

जहरवाद निकलनेके पूर्व दर्दका स्थान पहले कुछ सख्त होता है एवं थोड़ा दर्द अनुभव होता रहता है। वह स्थान रक्त मिश्रित धूमिल वर्ण-सा हो जाता है, वेदना शीघ्र बढ़ जाती है एवं यदि कोई व्यवस्था नहीं की जाय, तो सूजन चारों ओरके तंतुओंमें फैल जाता है। इस समय रोगी अत्यन्त कमजोरी अनुभव करता है। नाड़ी अत्यन्त कमजोर हो जाती है एवं कठिन अवस्थामें प्रबल ज्वर होता है। पांच छः दिनोंके बाद व्रणके ऊपर छोटे-छोटे कितने ही मुँह हो जाते हैं एवं उनसे क्लेद निकलते रहते हैं। रोग अत्यन्त धीरे-धीरे अग्रसर होता है। दो-तीन सप्ताहके पश्चात् चमड़े व तंतु सम्पूर्ण रूपसे ध्वंस हो जाते हैं, एवं एक बड़ा-सा असमतल घाव उत्पन्न होता है और इसके भीतर पीव व सड़े हुए मांसका पीले रंगका एक चक्का (slough) सा गठित होता है।

देहकी जिस दूषित अवस्थामें साधारण व्रण होता है, दुष्ट व्रण भी उसी कारणसे ही होता है। यह रोग यही प्रकाश करता है कि रोगीके शरीरमें अत्यन्त दूषित पदार्थोंका संचय हुआ है एवं उसके रक्तकी अवस्था भी बहुत ही खराब है। इसीलिये जिनकी उम्र ४० वर्षसे ज्यादा है, विशेषतः जो दीर्घ दिनोंतक बहुमूत्र रोगसे पीड़ित होते हैं, उन्हींको यह रोग होता है। बहुत बार मधुमेह होनेपर भी जहरवाद होता है इसीलिये जहरबाद होते ही मूत्र-परीक्षा करना विशेष रूपसे आवश्यक है।

इस रोगके होते ही यथासंभव शीघ्रताके साथ नीमके पत्ते औटाये हुए जलसे एक डूस देना कर्तव्य है एवं रोग सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य न होने तक इसी प्रकार डूस देना चाहिये। पहली बार डूस लेकर ही रोगीको पूरा एक भाप-स्नान प्रयोग करना कर्तव्य है। उस समय व्रण एवं उसके चारों ओर का काफी स्थान शीतल जलमें भिगाई एवं तह लगाकर मोटी की हुई तौलिया द्वारा लपेट रखना आवश्यक है। पहले ही व्रणके ऊपर दिनमें दो बार गरम सेंक देकर उसके बाद बार-बार बदलकर ठंडी

हुई लपेट प्रयोग करना चाहिये। पट्टी यथेष्ट रूपसे बड़ी व मोटी होनी उचित है। दर्द बहुत ज्यादा होनेपर थोड़े समयके लिये मिट्टी भी रक्खी जा सकती है। इसके बाद व्रणके पक जानेपर व्रणके ऊपर दिनमें दो बार गरम-ठंढा देकर बार-बार ढकी हुई लपेट प्रयोग करना कर्तव्य है। घावसे स्राव आरम्भ होनेपर व्रणके ऊपर दिनमें ५ से १० मिनटके लिये २ बार सेंक देना बार-बार ३० से ६० मिनटके लिये मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग करना उचित है।

मैकफेडनने कहा है, प्रथम व्रण गठित होते ही यदि रोग पकड़ लिया जाय एवं रोगी कुछ दिनोंतक केवल पानी पीकर उपवास करके रहें, तो प्रत्येक अवस्थामें ही यह निश्चित रूपसे आराम होगा। जो रोगविष जहरवादके भीतरसे निकलना उचित था, उसी अवस्थामें ही वह शरीरके भीतर दग्ध हो जाता है एवं व्रण किसी प्रकार भी भयंकर नहीं हो पाता। दो-तीन दिनोंके बाद चिकित्सा आरम्भ करनेपर भी दो-तीन दिन उपवास करना उचित है (Encyclopaedia of Physical Culture, pp. 1920-1923)। उपवास तोड़नेके बाद कमला नीबूका रस ही रोगीका प्रधान पथ्य होना चाहिये। इसके बाद फल, फलोंके रस, उबाला हुआ शाक, उबाला हुआ शाकका पानी, मठ्ठा और मधु-पानी रोगीका पथ्य होना चाहिये। रोगके समय चाय, तम्बाकू, चीनी, नमक, भूंजी तथा तली हुई चीजें और मसाले वर्जन करना चाहिये।

साधारण घाव

(General sore)

जिस स्वाभाविक चमड़ेके द्वारा हमारा शरीर ढका रहता है, किसी कारणवश वह कट जानेपर अथवा किसी प्रकार नष्ट हो जानेपर साधारणतः घाव उत्पन्न होता है।

घावके ऊपर दिनमें एक बार गरम सेंक देकर बीच-बीचमें जलपट्टी अथवा मिट्टीकी पट्टी प्रयोग करना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

इससे थोड़े ही समयमें वह सूख जाता है। मिट्टीकी पट्टी सर्वदा ही आध इंच मोटी एवं जरा बड़ी करके प्रयोग करनी चाहिये। उसे कभी भी एक घंटेसे ज्यादा समयके लिये प्रयोग करना उचित नहीं है। एवं सूख जानेके पहले ही उसे बदल देना कर्तव्य है। मिट्टी सर्वदा ही अच्छे स्थानसे संग्रह करना उचित हैं एवं घावपर प्रयोग करनेसे पहले मिट्टीकी हंडीमें एक घंटे तक उबालकर ठंडा होनेपर प्रयोग करना चाहिये।

घाव यदि सहज ही न सूखना चाहे, तो समझना चाहिये कि शरीर ही अच्छा नहीं है एवं प्रकृति उस घावको शरीरका विकार बाहर निकलने के लिये दरवाजेके समान व्यवहार कर रही है। अतएव शरीरको विकारमुक्त करना ही घाव ठीक करनेका प्रधान उपाय है।

अन्यान्य रोगोंके समान घावकी चिकित्साको दो हिस्सेमें बाँटा जा सकता है। एक शरीरको चिकित्सा और दूसरो घावकी चिकित्सा। The state of patients' general health must be considered an important factor in wound healing— घावके रोग नीरोग करनेमें रोगोके शरीरका साधारण स्वास्थ्य एक प्रयोजनीय विषय ऐसा समझना चाहिये (Thomas G. Orr, M. D.—Operations in General Surgery, p. 9, Philadelphia, 1958)। ऐसा न कर औषधिके द्वारा घाव बन्द करनेसे रोगी अत्यन्त आफतमें पड़ सकता है एवं चेष्टा करनेपर भी बहुत बार बन्द नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्थामें कुछ दिनोंतक नीमके पत्ते औटाये हुए जलसे डूस, घावके ऊपर भींगी मोटी तौलिया रखकर बीच-बीचमें भाप-स्नान, हिप-बाथ व पेटकी पट्टी लेकर एवं नीबूके रसके साथ प्रचुर जल पान कर शरीरको विशुद्ध कर लेना उचित है। साथ-ही-साथ घावके ऊपर दिनमें दो-तीन बार १ घंटेके लिये मिट्टीकी पट्टी अथवा सम्भव न होनेपर जलपट्टी का प्रयोग करना कर्तव्य है एवं दिनमें कमसे कम एक बार घावके ऊपर ५ मिनटके लिये गरम जलका

सेंक देना चाहिये। इस समय रोगीको प्रधानतः फल, सलाद, दही, उबाली हुई तरकारी, तरकारीका सूप, चोकर समेत रोटी एवं चीनीके बदले मधुका सेवन करना उचित है। घाव होनेपर हमेशा ही थोड़ा लहसुन खाना चाहिये।

रोगके समय रोगीको परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना कर्तव्य हैं।

यह कहा जाता हैं कि पुराना घाव विभिन्न जीवाणुओंके आक्रमणसे होता हैं किन्तु जिस अवस्थाके ऊपर जीवाणु बढ़ता है उसे दूर न कर कभी भी जीवाणुको ध्वंस नहीं किया जाता।

एक डाक्टरने कहा हैं, The treatment of infections was at one time directed at destroying the invading organisms. It is now known that this cannot be accomplished directly. It seems that changes in the tissue or fluids are of great importance. All that physician can do is to place the body in the best condition to recover spontaneously.—संक्रामक रोगकी चिकित्सा एक समय जीवाणु ध्वंसके कार्यमें निबद्ध थी। अब यह मालूम किया गया है कि सीधे सीधे इसे करना सम्भव नहीं। यह अनुमान किया जाता है कि देहके तन्तु अथवा रस व रक्तस्त्रोतके भीतर परिवर्तन लाना विशेष रूपसे आवश्यक है। रोग जिसमें अपने आप ही आराम हो जाय, शरीरके भीतर इस प्रकारकी अवस्था उत्पन्न करना ही डाक्टरोंका एकमात्र कर्तव्य है (Hobart A. Reimann, M. D.—Treatment in General Practice, Vol. 2, p. 778, Philadelphia, 1948)। केवल घाव ही नहीं, सभी संक्रामक रोगोंके लिये यही बात लागू है। जो लोग रोग आरोग्य करनेके लिये औषधिके सिवा और कुछ नहीं सोच सकते उन्हें इस पर ध्यान देना उचित है।

जिह्वाका घाव

[Ulcer of the tongue]

जिह्वाका घाव होनेपर उसे मिटानेका सर्वप्रधान उपाय ही है गरम-ठंडी कुल्ली एवं विशुद्ध मिट्टी द्वारा दंतमंजन। जीभके घावमें १ मिनट गरमके बाद एक मिनट ठंढा जल मुंहमें रखकर गरम-ठंढा ग्रहण करना कर्तव्य है एवं एक साथ तीन बार करना चाहिये। मिट्टी द्वारा भी दिनमें कमसे कम दो बार दंतमंजन करना कर्तव्य है। किन्तु जिन्हें बार-बार जिह्वामें घाव होता हो तो समझना होगा कि उनका शरीर विशेषतया पेट बहुत ही खराब है। इसीलिये घाव होते ही नीमके पत्ते औटाये जलसे डूस, पेटकी पट्टी एवं हिप-बाथ ग्रहण कर पेटको अच्छा कर लेना उचित है। साथ ही बीच-बीचमें भाप स्नान अथवा उष्णपाद-स्नान लेना आवश्यक है। कारण शरीर नहीं अच्छा रहनेपर पेट भी नहीं अच्छा रहता। रोगीका टूथब्रश विशेष रूपसे साफ रखना प्रयोजन है। कई बार अपरिष्कार ब्रशसे जिह्वापर घाव उत्पन्न होते हैं। रोगीका दाँत भी हमेशा साफ रखना कर्तव्य है। रोगीके पथ्यपर भी विशेष रूपसे ध्यान देना उचित है।

मुखका घाव

[Ulcer of the mouth]

जिस कारणसे जिह्वाका घाव होता हैं उसी कारणसे मुखका घाव होता है। इसलिये जिह्वाके घावकी जो चिकित्सा है वही चिकित्सा मुखके घावकी भी है।

बाघी

[Bubo]

जानुसंधिकी ग्रन्थिके फूल उठनेका नाम ही बाघी है। इस अवस्थामें उसमें बहुत थोड़ा प्रदाह उत्पन्न होता हैं एवं कई बार पकनेका कोई लक्षण

ही नहीं दिखाई देता। पुनः किसी-किसी समय प्रदाह इतना भयंकर होता है कि, यह जाँघके बहुत-से स्थानतक फैल जाता है।

बाघीकी पहली अवस्थामें बहुत हल्की एक गिल्टी होती है जैसे इधर-उधर हिलाया जा सकता है, किन्तु शीघ्र ही यह एक स्थानपर रुक जाता है और ऊपर के चमड़े पर प्रदाहके लक्षण दिखाई देते हैं।

अधिकांशतः यौनव्याधिका विष जानुसंधिमें संचित होनेपर बाघी उत्पन्न होती है किंतु किसी किसी समय कूदना, गिर पड़ना आदि निर्दोष कारणोंसे भी बाघी हो जाती है। तथापि जिस किसी भी कारणसे बाघी क्यों न हो, बस्ती प्रदेशमें यथेष्ट दूषित पदार्थोंका संचय न होनेपर कभी भी बाघी नहीं हो सकती।

रोगका पहला लक्षण प्रकाश पाते ही यथासम्भव शीघ्रताके साथ पेडूको साफ कर लेना चाहिये। इसके लिये नीमके पत्ते औटाये हुए जलसे डूश लेना आवश्यक है एवं रोग आरोग्य न होनेतक प्रतिदिन इसी प्रकार डूश लेना कर्तव्य है। इसके बाद रोगीके जानुसंधिमें दिनमें दो बार १५ मिनटके लिये गरम सेंक देकर अवशिष्ट समयके लिये ढकी हुई लपेट या काली मिट्टीकी ढकी हुई पुलटिस गरम होते ही ५ से ३० मिनट बाद-बाद बदलकर प्रयोग करना उचित है। रोगी जितना गरम सह सके पहली अवस्थामें उतना ही गरम सेंक प्रयोग करना आवश्यक है। इससे बाघीमें प्रायः ही मवादकी उत्पत्ति नहीं होगी। यदि दर्द बहुत बढ़ जाय तो हर दो-दो घंटेपर गरम सेंक देकर उसके बाद और सभी समय पुनः पुनः बदलकर ढकी हुई लपेट प्रयोग करना कर्तव्य है।

रोगीको दिनमें दो बार १ घंटेके लिये बस्ती देशकी पट्टी (pelvic pack) गरम थैलीके साथ ग्रहण करनी चाहिये। इससे जानुसंधिमें संचित रोगविष बहुत अंशोंमें बाहर हो जाता है एवं रोगीका शरीर बहुत हल्का बोध होता है। प्रतिदिन स्नानके पूर्व रोगीको दोनों पैरोंमें पृथक रूपसे पैरकी लपेट देना भी विशेष रूपसे आवश्यक है। जिस व्याधिके साथ यह रोग आता है, साथ-ही-साथ उस रोगकी चिकित्सा होना

उचित है। रोग आरम्भ होनेके समयसे ही रोगीको पूर्ण विश्राम ग्रहण करना चाहिये। बाघी यदि फूट जानेकी तरह हो, तो दिनमें तीन बार आधे घंटेके लिये गरम-ठंडा प्रयोग कर अवशिष्ट समयके लिये ढकी हुई लपेट प्रयोग करना आवश्यक है। बाघी फूट जानेपर घावके ऊपर बीच-बीचमें हल्का सेंक देकर बाकी समय खौलाये हुए जलमें उबाली हुई मिट्टी बार-बार बदलकर प्रयोग करनेपर भी काम चलता है। रोगीको खूब ठंढे जलमें स्नान करना उचित नहीं, किन्तु प्रत्येक दिन नातिशीतोष्ण जलमें स्नान करना आवश्यक है। आवश्यकता होनेपर रोगीका शिर दिनमें दो बार ठंढे जलमें धोकर उसे तौलिया स्नान कराया जा सकता है। अनान्य सभी व्रण-चिकित्साकी तरह हैं।

रोग आरम्भ होनेके समयसे ही रोगीको बिस्तरेपर रहकर पूर्ण विश्राम ग्रहण करना चाहिये। इस अवस्थामें चलने-फिरनेपर बाघी अत्यन्त भयानक हो सकती है।

बाघी होनेके साथ ही कुछ दिनोंतक विश्राम ग्रहण कर केवल नीबूके रसके साथ पानी पीकर रहनेपर ही बहुत बार बाघी अपने आप ही बैठ जाती है अर्थात् प्रकृतिको उस समय और दूसरा काम न होनेपर, प्रकृति उस विषको दग्ध कर देती है। अन्यान्य सभी व्रण-चिकित्साकी तरह ही हैं।

मुहाँसा (विसर्प रोग)

[Erysipelas]

यह एक प्रकारका उद्गम (irruption) है। ज्वर व रक्तदोषके साथ चर्म या चर्मके निम्नवर्ती तंतुके प्रदाहके साथ यह उत्पन्न होता है। यह प्रदाह प्रायः सर्वदा ही चर्म के ऊपर एवं उसके ठीक निम्नवर्ती तंतु (tissue) में निबद्ध रहता है। इसमें प्रायः ही पीब गठन अथवा घावकी सृष्टि नहीं होती, किन्तु बिलकुल ही नहीं होती ऐसी बात भी नहीं। यह अत्यन्त भयानक व्याधि है।

सिर.दर्द, हाथ-पांव, व पेटमें वेदना, भूखकी कमी, ठंढ महसूस होना, अल्प-अल्प ज्वर, आक्रान्त अंगका सिहरन आदि इस रोगके प्राथमिक लक्षण हैं। बादमें कँपकँपीके साथ ज्वर आता है। ज्वर १०३° से १०५° तक होता है एवं रोग आरोग्य न होनेतक प्रायः समान रूपसे ही रहता है। जिह्वा अपरिष्कार व निश्वास दुर्गन्धयुक्त होतो है तथा प्रायः ही कोष्ठबद्धता रहती है। कभी-कभी पतला दस्त भी होता है। आक्रांत अंगमें सर्वप्रथम लाल-लाल दानेकी तरह उठ आता है। तत्पश्चात् सारा स्थान फूलकर सख्त मांसकी तरह हो जाता है। लाल अंश क्रमशः आकारमें बढ़ता है एवं कभी एक ओर तथा कभी दूसरी ओर फैलता है। साधारणतः यह मुँह एवं माथेपर ही आक्रमण करता है। समय-समयपर स्फीति इतनी बढ़ जाती है कि आंख सम्पूर्ण ढक जाती है। कभी-कभी गलेकी दोनों ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं एवं समय-समयपर वे फट जाती हैं। चर्म जैसे जलता हुआ मालूम होता है एवं आक्रांत स्थानको हाथसे छूनेपर भी वेदना बोध होती हैं। पेटका गोलमाल प्रायः ही वर्तमान रहता है। मूत्र रक्तवर्ण एवं अल्प परिमाणमें होता है। कुछ दिनोंके बाद उद्गम म्लान होने लगते हैं एवं रोग मिट जाता है। यह साधारणतः दो-तीन दिनोंसे हफ्तेभर तक रहता है।

समय-समयपर यह रोग शरीरके विभिन्न अंगोंमें घूमता रहता है। उस समय इसे भ्रमणशील (Wandering) विसर्प कहते हैं। यह प्रायः ही लौट-लौटकर आता है। जब इसमें मवाद भर जाता है तब इसे Phlegmonous erysipelas कहते हैं।

केवल चर्मके ऊपर इसका प्रकाश होनेपर भी यह सारी देहका ही रोग है। अनेक समय कीड़े-मकोड़े द्वारा काटे हुए घाव अथवा आघात-प्राप्त अंगसे यह रोग फैलता है। किन्तु पहलेसे ही जिनका रक्त दूषित रहता है, केवल उन्हे ही यह रोग हो सकता है। वास्तवमें दूषित रक्त ही इस रोगका मूल कारण है (J. W. Wilson—The New Hygiene, p. 251)। इसीलिये बाहर कोई घाव या चोट न रहनेपर भी यह रोग होता है।

यह रोग होते ही नीमके पत्ते औटाये जलसे डूस देकर रोगीका पेट साफ कर लेना उचित है एवं रोग आराम न होनेतक प्रतिदिन इसी प्रकार डूस देना कर्तव्य है। इसके बाद हर दो घंटेके अंतरपर तीन-चार मिनटके लिये आक्रांत स्थानपर. मृदु सेंक प्रयोग कर अनवरत तीन मिनटसे पांच मिनटके अन्तरपर, अर्थात् गरम होते ही बदलकर उस स्थान पर भारी जल-पट्टी प्रयोग करना चाहिये। भीगे लत्तेके वदले कादो मिट्टीकी पुलटिस भी प्रयोग की जा सकती है। उसे भी १५ से २० मिनट बाद-बाद गरम होते ही बदल देना उचित है। इसके बाद आक्रांत स्थान जब निष्प्रभ रक्तवर्ण हो जायेगा अथवा विसर्पका विस्तार जब बंद होगा तब तीन-चार घंटेके अन्तरपर सेंक देकर उसके बाद बीचके समय में आवृत पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है एवं उसे १५ से ३० मिनटके अन्तरपर अर्थात् रोग आरोग्यके संग-संग क्रमशः ज्यादा समयके अन्तरपर बदल देना उचित है। आक्रांत स्थानपर कभी भी बर्फकी थैली नहीं देनी चाहिये। इससे चमड़ा उठ जा सकता है। रोगीको हर तीन घंटेके अन्तरपर तौलिया-स्नान प्रयोग करना आवश्यक है। यदि प्रवल ज्वर रहे तब नियमानुसार क्रमशः जलका ताप कम करके स्नान, सुदीर्घ समयके लिये नातिशीतोष्ण पानीसे स्नान या गीली चादरकी ठंढी लपेट प्रयोग की जा सकती है। यदि रोगीको बार-बार शीत व कँपकँपी आये तो उसे प्रचुर गरम जल पिलाना कर्तव्य है एवं उसके पांवपर गरम जलकी थैली रखना आवश्यक है। इस अवस्थामें कभी पूर्ण स्नान नहीं करना चाहिये। इसके बदले तौलिया-स्नान लेना उचित है। रोगीको कय रहनेपर उसको पाकस्थलीके ऊपर बर्फकी थैली रखना चाहिये। रोगीको ठंढ व कँपकँपी न रहनेपर उसे दिनमें दो बार कटि-स्नान प्रयोग करना विशेष रूपसे कर्तव्य है। रोगीके पेडूपर दूसरे व्यक्तिको घर्षण करना उचित है।

भूख न लगनेतक रोगीको केवल नीबूके रसके साथ प्रचुर जल पीना चाहिये। जब ठंढ महसूस हो तो गरम पानी एवं उसके बाद ठंढा पानी पीना उचित है। पथ्य साधारण ज्वरकी तरह।

पलंग-घाव

[Bed sore]

बहुत दिनोंतक बीमारी भोगनेके कारण बिछावनपर पड़े-पड़े रोगीके शरीरके हरेक स्थानमें घाव हो जाते हैं, उन्हें ही पलंग-घाव कहते हैं। चूतड़की हड्डीके ऊपर, कन्धेके पीछे, एड़ीके पीछेके हिस्सेमें और केहुनीमें साधारणतः ये घाव होते हैं। पहले ये स्थान सूजकर लाल हो उठते हैं और उसके बाद वहींपर चपटा घाव पैदा होता है।

बहुत दिनोंतक एक ही हालतमें पड़े रहनेसे एक ही जगहपर लगातार चाप पड़ता है और इसके कारण उस जगहकी ताकत कमजोर पड़ जाती है। इसीसे वहाँ घाव हो जाते हैं। इसलिये जिन जगहोंमें ऊँची हड्डी है, साधारणतया उसीके ऊपर चमड़ेमें यह घाव होता है। बहुत दिनोंके बुखार, गुर्दे, लिवर या दिलकी बीमारी या यक्ष्माके कारण जिसकी जीवनीशक्ति बहुत क्षीण हो गयी है या बुढ़ापेके कारण जो बहुत दुर्बल हो गया है, साधारणतया यह रोग उसीको होता है। जिन रोगियोंको बहुत गन्दी तरहसे रखे जाते हैं, जिनके शरीरसे निकले हुए मल, मूत्र, पसीना आदि अच्छी तरह साफ नहीं किये जाते, गंदगियाँ रुककर, उनके शरीरमें ही आसानीसे घाव पैदा करती हैं। इस गंदी हालतके भीतर जो कीड़े पैदा होते हैं, शरीरकी अनुकूल अवस्था पाकर वे ही तेजीसे बढ़ने लग जाते हैं। कई बार तो असावधानीसे बेडपैन प्रयोग करनेसे भी यह घाव हो जाता है। बिछावनपर रोटी या बिस्कुटका टुकड़ा पड़ा रह जाये तो उसकी रगड़से भी घाव हो सकता है।

शुरूसे ही यदि रोगीकी अच्छी चिकित्सा होती रहे तो यह घाव कभी हो ही नहीं सकता। घाव होनेपर भी सबसे पहले रोगीके शरीरके चमड़ेको साफ रखना चाहिये। रोगीको आवश्यकतानुसार नित्य पूरा स्नान या तौलिया-स्नान कराके शरीरके चमड़ेको अच्छी तरह साफ कर देना

आवश्यक है। बिछावनकी चादर भी साफ और चिकनी रखनी चाहिये। चादर यदि सिकुड़ी रहे तो घाव जल्द हो जाता है। रोगी अधिक देरतक एक ही करवट सोया न रहे, इसलिये बराबर उसको करवट बदल-बदलकर सोनेको कहना चाहिये। दिनभरमें कमसे कम एक बार भी रोगीके हाथ-पैरोंको टेढ़ा सीधा करके सुला देना जरूरी है। रोगीके पिछले हिस्सेमें किसी जगह दर्द मालूम हो तो उसी समय उस स्थानपर १५ मिनटोंके लिये गरम-ठंढी पट्टीका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। इस तरह दर्दकी जगहपर कभी घाव नहीं हो सकता। दर्द यदि इस हिसाबसे कम हो जाय तो फिर पट्टी चढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। एक जगह यदि घाव हो जाय तो जिससे कि यह बढ़े नहीं इस विचारसे घाव के ऊपर और उसकी चारों ओर थोड़ी देरतक दिनभरमें दो बार गरम-ठंढी पट्टी ३० मिनटोंके लिये प्रयोग करके उसपर बीच-बीचमें मिट्टीकी पट्टी लगा देनी चाहिये। यह पट्टी सूख जानेके पहले ही बार-बार बदलते रहना कर्तव्य है। सिझाई हुई गीली मिट्टी भी ठंढा करके दिनभरमें दो बार केवल एक घंटेके लिये चढ़ायी जा सकती है। घावको दिन-भरमें दो बार धोकर साफ रखना जरूरी हैं। रोगीका बिछावन मुलायम होना चाहिये। उसके शरीरको बहुत कपड़ोंसे ढक देना भी अनावश्यक है। उसका पेठ साफ रखना चाहिये, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

रोगीके पथ्यके ऊपर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। शरीरका खून दूषित हुए बिना कोई रोग उत्पन्न होता ही नहीं। इसलिये सब रोगोंमें ही रोगीको ऐसा पथ्य देना चाहिये जिससे शरीरका खून साफ होता रहे और देह-संचित हरेक विकार देहसे बाहर निकलनेमें सहायता मिलती रहे। फल, फलका रस, उबाला हुआ शाक, शाकका शोरबा, पानीके साथ मधु, छेना का पानी और मठ्ठा आदिके काफी इन्तजामसे यह उद्देश्य सफल होता है।

अष्टम अध्याय

मूत्र-यन्त्रका रोग

मूत्र-यन्त्रकी सूजन

[Nephritis]

[१]

हमलोगोंका मूत्र-यंत्र (kidney) पेटको लपेटनेवाली दो झिल्लियोंके पीछे रीढ़के दोनों बगलमें कमरपर रहता है। ये दोनों आखिरी पंजरीके द्वारा कुछ थोड़ा-थोड़ा आधे अंशमें ढके हुए हैं। इसमेंसे हर एक लम्बाईमें प्रायः चार इञ्च, बगलमें ढाई इञ्च और चौड़ाई में कोई डेढ़ इञ्च होते हैं। ये लाखों अनुवीक्षणिक फिल्टरसे बने हुए हैं। खुनसे पेशाब सोख लेना ही इन गिल्टियोंका खास काम है। इस मूत्र-यंत्रकी सूजनका नाम ही नेफराइटिस है। यह रोग हमेशा शैशव तथा किशोरावस्थामें ज्यादातर प्रकाश पाता है।

जाड़ा-जाड़ा-सा लगकर बुखार शुरू होना और गुरदोंकी जगहपर तेज दर्द होना, शुरूसे ही पेशाब कम पड़ जाना, कभी पेशाब बिलकुल बंद ही हो जाना, कभी बड़ी तकलीफसे बूंद-बूंद थोड़ा-सा पेशाब निकलना पेशाबमें बहुत गरमी और दर्द मालूम होना, पेशाबका रंग घोर लाल, कभी धुएँके रंग, अण्डकोष लाल-लाल, जलंदर, आंखके नीचेकी पलक और पेरकी गिरह कुछ-कुछ फूली फूली—दबानेसे अंगुली धस जानेका निशान पड़ जाना, बदलनेवाला शोथ (dropsy)—कभी मुँहसे पेरमें और कभी पेरसे मुंहमें चढ़ता हुआ, कभी-कभी सारा शरीर फूल जानेकी हालत. सफेद मुँह, रीढ़ और कमरमें दर्द, शिर-दर्द गंदी जीभ, पेटकी खराबी, भूखकी कमी, कब्जियत, नींद न होना और बेचैनी आदि इस रोगके साधारण लक्षण है। रोगकी तरुण अवस्थामें सदा ही-

मूत्रमें रक्त और अलव्युमीन एवं शरीरमें शोथ वर्तमान रहता है। इस रोगमें रोगीको कभी-कभी मूत्रनाश होकर मूत्ररोधकी बीमारी (uraemia) हो जाती है और ऐसा हो जानेपर बकबकी, मूर्च्छा, बेहोशीकी नींद (coma) आदि लक्षण दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो इस बीमारीसे रोगी प्लूरिसी, ब्रङ्काइटिस या न्यूमोनियाका शिकार हो जाता है। इस रोगमें वयस्क लोगोंकी अपेक्षा बच्चे ही सरलतासे आरोग्य लाभ करते हैं। तरुण रोगोंमें सैकड़ा ८० से ८५ लोग स्थायी रूपसे रोगमुक्त होते हैं; किन्तु बाकी सैकड़ा दस आदमी प्रायः यूरेमियाके कारण मृत्युके शिकार होते हैं या उनका रोग पुराना (sub-acute or chronic) रोगमें परिणत होता है। इस अवस्थामें रोग बार-बार लौट आती है और हर आक्रमणसे ही किडनी अधिकतर खराब हो जाती है। पुराने रोगमें हार्ट और किडनीकी अक्षमता (failure) एवं उच्च रक्तचाप कमवेश मात्रामें प्रकाश पाता है। रोगका पुनराक्रमण होनेसे वह दो महीनेसे लेकर वर्षसे अधिक समय तकके लिये चालू रहती है। दूसरा इस रोगमें बच्चोंकी मौत प्रायः साँस लेनेके यंत्रकी गड़बड़ीसे होती है और बड़े लोगोंकी मृत्यु होती है मूत्ररोधकी विष-क्रियाके कारण।

पाला या ठंढा लगना, बहुत अधिक हैरान होनेके बाद आराम किये बिना एकाएक ठंढ लगना, पानीमें भींगना, अधिक तम्बाकू, गांजा या शराब पीना, गुरदेके ऊपर चोट लगना और बिना आदतके रातमें जगना, इन्हीं सब कारणोंसे यह बीमारी हो जाती है। डाक्टर लोग जो सभी दवायें व्यवहार करते हैं उनमें अनेकोंसे यह रोग हो सकता है (Encyclopaedia Medica, Vol XI, pp. 431—458)। पेशाब लानेवाली दवाओंके अपव्यवहारसे भी बहुत बार यह बीमारी होती है। हमारे दो किडनी हमेशा ही औषधियोंका विष शरीरसे बाहर कर देनेकी चेष्टा करते हैं, उसके कारण विषोंके साथ संसर्ग होनेसे दोनों किडनीमें कभी-कभी सूजन पैदा होती है। कभी-कभी यह डिप्थीरिया टाइफायड, न्यूमोनिया, छोटीमाता, चेचक, इन्फ्लूएंजा, हैजा या मलेरियाके

साथ आती है। कभी-कभी गर्भवती स्त्रियोंको भी यह बीमारी होती है। परन्तु पहलेसे ही जिन लोगोंका गुरदा कमजोर रहता है उन्हें ही प्रायः यह होती है। या बीमारीके कारणसे हो या और किसी कारणसे, शरीरमें जो विष संचय होता रहता है वही जब गुरदोंपर आक्रमण कर देता है तब यह बीमारी होती है।

[२]

इसलिये शरीरको जहरसे छुड़ानेके साथ-ही-साथ गुरदोंको आराम देना और उनका पेशाबमें पानी निकालनेका काम चमड़े या आंतके द्वारा करा लेना ही इस रोगका सबसे बड़ा इलाज है। गुरदोंके आराम पाते ही प्रकृति उसको मरम्मत करनेका समय पाती है और इसीसे बीमारी हटती है। इसलिये पहले ही रोगीको अधिक और खूब गरम पानीका डूस लेकर उसे भापका नहान इस्तेमाल करना जरूरी है। इस बातका इन्तजाम करना चाहिये कि कमसे कम दो बार पेटसे मल बाहर निकले। यदि पेखाना प्राकृतिक रूपसे न हो तो जबतक बीमारीकी तेजी रहे दिनभर में कमसे कम एक बार तो डूससे पेट अवश्य साफ कर लेना चाहिये। रोगीको प्रतिदिन एक बार पैरतक गरम कम्बलका पैक देना भी आवश्यक है। उसको तबतक पैकमें लपेटे रखना चाहिये जबतक उसे पसीना न छुट जाय। आवश्यक हो तो रोगीका कम्बलको पैकसे निकलते ही एक घंटेके लिये भींगी चादरकी पैक भी दी जा सकती है। उसके बाद गरम पानीकी तौलिया स्नान देकर उसे गलेतक कम्बलसे ढक देना कर्तव्य है। ऐसा प्रबन्ध करना उचित है कि शरीरसे सदा पसीना निकलता रहे। इस बीमारीमें इलाजकी खास बात यही है। इसलिये इसके इलाजमें खास तौरसे इस बातपर खूब खयाल रखा जाता है कि रोगीके शरीरका चमड़ा ठंढा न होने पावे। इसके बाद किडनी पर ध्यान देना चाहिये, इसलिये दिनमें दो या तीन बार वक्षास्थिके ऊपर ठंढा गमछा रखकर किडनीपर सेंक देना उचित है। ३ से १० मिनटके

लिये किडनीके ऊपर सेंक देकर उसी समय वक्षास्थिके निम्नांशके ऊपर (over the lower third of the sternum) एक भींगा और ठण्डा गमछा रखना चाहिये। एक बार ऐसा करनेके बाद छातीका गीला गमछा और किडनीके ऊपरसे गरम थैली हटा लेना चाहिये। इसके बाद छातीके द्वारा दो-तीन मिनट घर्षण कर छाती गरम कर देनी चाहिये और किडनीका स्थान भी थोड़े गीले गमछेसे दो-एक मिनट ठंढा कर देना उचित है (प्रयोग विधिके लिये अन्तिम अध्यायमें किडनीकी सेंक देखिये)। ऐसा एक साथ तीन बार दिनभरमें दो-तीन बार करना चाहिये। नयी सूजनमें तो रोगी जितना सह सकता हो उतना गरम सेंक देना जरूरी है। और यह सेंक बीच और नीचेकी पीठके हिस्सेपर पड़ना चाहिये।

लेकिन किडनीपर गरम सेंक करते समय जिससे रीढ़की हड्डीपर ताप न पड़े इसपर ध्यान रखना चाहिये। इसलिए रीढ़की हड्डीपर ताप देते समय हमेशा गीला गमछा रखना कर्तव्य है।

रोगीको कभी ठंडे पानीसे स्नान नहीं करना चाहिये, यहांतक कि कमर-स्नान आदि भी इस बीमारीमें नहीं दिया जाता। परन्तु सेंक आदि देनेके बाद रोगीको गुनगुना पानीमें तीन-चार दफे तौलिया स्नानका प्रयोग करना चाहिये। रोगीको रोज एक-दो बार घर्षण-स्नान भी प्रयोग करना जरुरी है। घर्षण-स्नान (cold friction) देते समय सदा पैरके ऊपर गरम पानीकी थैली रखनी चाहिये। घर्षण-स्नानके बाद रोगीका शरीर लाल और गरम हो जाना चाहिये। घर्षण-स्नान आदि प्रयोग किये जानेके पहले रोगीको अवश्य दिनमें दो बार एक घंटेके लिये पैरकी पट्टीका प्रयोग करना आवश्यक है और पट्टी खोली जानेके बाद घर्षन-स्नान या तौलिया-स्नान आदिका प्रयोग करना चाहिये। रातमें हर रोज रोगीको भींगी कमर-पट्टी देना उचित है। इस बीमारीमें पेशाब उतारनेवाली दवाके व्यवहारसे रोगीको बड़ा नुकसान होता है। इसके बदले उसके मूत्र-यंत्रकी गरम और ठंढी पट्टी लगायी जानेसे रोगीका

पेशाब होना तुरंत बढ़ जाता है। गरम पानीका डूस, गरम पानीमें स्नान, ठंढो रगड़ और देरतकके लिये गुनगुना पानीका नहान भी पेशाव उतारनेमें बहुत सहायता करता है। यदि रोगीको उलटी आती हो तो उसको खुब गरम पानी थोड़ा-थोड़ा करके पिला देना चाहिये। रोगीका दिल यदि कमजोर हो गया हो तो उसके हृदय के ऊपर दिनभर में तीन बार ठंढो पानीकी पट्टीका प्रयोग करना आवश्यक है। इस हालतमें उसे दिनमें दो-तीन बार तौलिया-स्नान या ठंढो मालिशका प्रयोग करना भी जरूरी है। रोगीका पेशाव यदि पूरा बन्द हो गया हो तो उसके लिये उस रोगीको चिकित्सा विधि देख लेनी आवश्यक है। यह बीमारी सदा दूसरी बीमारियोंके साथमें आती है। इसलिये असली रोगके इलाजपर ही अधिक जोर देना चाहिये और उसके साथ मेल बैठाकर इसका इलाज करना चाहिये।

डा० अचलारका कहना है कि, ऐसी कोइ दवा हम नहीं जानते जिसके द्वारा इस बीमारीकी चालको रोका जा सके (The principles and Practice of Medicine, p. 700) दूसरे-दूसरे डाक्टरोंकी राय भी यही है कि मूत्र-यंत्र सूजनकी कोई दवा नहीं है। वे कहते हैं, इस बीमारीमें जो इलाजका तरीका है, वह अन्दाजसे रोगके अलग-अलग उपसर्गोंका ही इलाज है। ये सारी दवाइयां मूत्रयंत्रके असली रोगको छू भी नहीं पाती (The Lancet—Modern Technique in Treatment)। इसलिये इस रोगमें तो भूलकर भी दवा नहीं छूना चाहिये।

[२]

रोगका प्रकाश होते ही रोगीको पूर्ण उपवास रखना चाहिये। इस समय रोगीको जल भी देना उचित नहीं है। इससे देहका पानी शोषित हो जाता है। इसके अलावा रोगीको प्रतिदिन डूस देनेसे जितना शरीरके लिये जरूरी है उतना बड़ी आँत द्वारा शोषित होता है। इस तरह रोगीको सात दिन उपवास पर रखनेकी चेष्टा करना कर्तव्य है।

यदि रोगी समर्थ न हो तो तीन-चार दिनोंके बाद उसे कमला नीबू व अन्य फलोंका रस दिया जा सकता है।

इसके बाद रोगीके स्वस्थ होनेके साथ-साथ उसे क्रमशः फल, सलाद, सिझायी तरकारी, तरकारीका सूप व फलके रस सहित मधु देना उचित है। रोगीका पथ्य सौमें ८० भाग ही क्षारधर्मी होना आवश्यक है। अत्यधिक अम्लधर्मी खाद्य देनेसे रोगलक्षण बढ़ सकता है एवं रुग्ण मूत्र-यंत्र की कार्यक्षमता और भी नष्ट हो जा सकती है (Clifford J. Barborka, M. D., D. Sc., F. A. C. P.—Treatment by Diet. p. 238, London, 1948)। जलकी तरह इस रोगमें प्रोटीन खाद्य यथेष्ट रूपमें कम कर देना उचित है। कारण, किडनीका काम ही है शरीरसे जल व प्रोटीन खाद्यसे परित्यक्त पदार्थ (यूरिया) प्रभृति शरीरसे बाहर कर देना। इस कारण रोगीको मछली-मांस खाने देनेसे रोग वृद्धि पाता है। प्रथम अवस्थामें रोगीको दूध भी देना उचित नहीं है। कारण दूधके भीतर इतना प्रोटीन है कि उसे ग्रहण करनेसे रुग्ण किडनी विपन्न हो जाती है। किन्तु रोगीको यथेष्ट मात्रामें शर्करा खाद्य देना चाहिये। शर्करा खाद्यको प्रोटीनका रक्षाकारी खाद्य (Protein sparer) कहा जाता है। उसे भी प्रधानतः फल, मधु-मिश्रित फलोंके रस, एवं सिझाया हुआ आलू इत्यादिके रूपमें देना उचित हैं। चर्बी जातीय खाद्य भी यथासंभव कम खाना कर्तव्य है।

कुछ दिनोंतक रोगीको लवण विहीन खाद्य देना चाहिये। शोथ रहनेतक रोगीको कभी भी लवण देना उचित नहीं है। ऐसा होनेसे शोथ अत्यन्त वृद्धि पाता है।

पुराने रोगोंमें अधिकांश प्रोटीन परित्याग करना कर्तव्य है एवं यथा-सम्भव लवण-वर्जित खाद्य खाकर रहना उचित है।

इस रोगमें जल भी सर्वदा ही कम मात्रामें ग्रहण करना चाहिये। प्रथम अवस्थाके बाददैनिक जितना पेशाब हो उतना जलपान किया जा सकता है। उसके बाद भी कुछ समय तक दैनिक तीन पाव (२ पाँइंट)

से ज्यादा जल पीना उचित नहीं है।

रोग आरोग्यके बाद भी खूब सावधान रहना कर्तव्य है। रोग आरोग्यके बादकी व्यवस्था बहुत यक्ष्मा रोगीके अनुरूप होनी चाहिये (Sir John Conybeare, M. C., F. R. C. P., and W. N. Mann, M. D., F. R. C. P.—Text-book of Medicine, p. 538, London, 1952)। रोगीको प्रतिदिन यथेष्ट रूपसे विश्राम करना आवश्यक है। अत्यधिक परिश्रम व आहार वर्जन करना कर्तव्य है। जिससे ठंढा न लग जाय उसके प्रति सर्वदा लक्ष्य रखना आवश्यक है एवं रोगके फिरसे लौट आनेके सामान्य लक्षणके शरीरमें प्रकाश पाते ही शय्या पर पड़े रहना चाहिये।

इस रोगकी ऐसी कोई औषधि नहीं है जो प्रत्यक्ष रूपसे रोगका कारण दूर कर सकता है (Geofirey Evans, M. D., F. R. C. P.—Medical Treatment, p. 926, London, 1951), विशेषतः मूत्रकारक औषध सहज ही देना उचित नहीं है। उससे मूत्र-यंत्रके रोगमें (damage) और भी वृद्धि हो सकती है।

रोग आरोग्यके साथ-साथ रोगीको खूब धीरे-धीरे तरल खाद्यसे ठोस खाद्यका अभ्यस्त करना आवश्यक है। कारण, बहुत जल्दी-जल्दी कठिन खाद्य देनेसे रोगीको रक्तस्राव हो सकता है। रोग आरोग्यके बाद भी गरममसाला, अधिक मसाला, चाय, चाफी, तम्बाकू मछली, मांस व मद्य प्रभृति विशेष रूपसे छोड़ देना कर्तव्य है।

मूत्राशयकी सूजन

[Cystitis]

मूत्रग्रंथि (kidney) में पैदा होकर पेशाब जहांपर जाकर इकट्ठा होता है उसको मूत्राशय या (urinary bladder) कहते हैं। यह हमलोगोंके पेटमें पेड़ूके निचले भागके सामने ही रहता है। इसमें अन्दाज- डेढ़ पाव पेशाब रहा सकता है। गुरदेसे १४ से १६ इञ्च लम्बा

दो नालियों (ureter) होकर पेशाब, पेशाबकी थैलीमें आता है और फिर पुरुषोंके लिये प्रायः ८ इञ्च और औरतोंके लिये प्रायः डेढ़ इञ्च लम्बी मूत्रनाली (urethra) द्वारा यह पेशाब बाहर निकलता है। इसी मूत्राशयकी सूजनको cystitis या मूत्राशयकी सूजन कहते हैं।

मूत्राशय और मूत्रनालीमें दर्द, बार-बार पेशाब करनेकी इच्छा, पेशाब करनेमें दर्द, और कम-कम पेशाब होना, पीव मिला हुआ गंदा पेशाब, सारा पेशाब बाहर न हो जानेके कारण मूत्राशयमें उत्तेजना और वेदनाकी वृद्धि, थोड़ा या ज्यादा बुखार, बुखारका न भी होना आदि इस बीमारीके विशेष लक्षण हैं। यह बीमारी यद्यपि मारात्मक नहीं है तो भी अच्छा इलाज न होनेसे बहुत दिनोंतक आदमी इससे अत्यन्त कष्ट पाता है।

देरतक लगा हुआ पेशाब रोके रहना, एकाएक लकवा-सा होकर बहुत देरतक मूत्राशयसे पेशाबका जमा होकर सड़ जाना, मूत्र-पथरीमें उत्तेजना, गंदी सलाईका इस्तेमाल या गंवारकी तरह सलाई लगाना, ठंढ लग जाना या सूजाक हो जानेके कारण यह बीमारी पैदा होती है। परन्तु ये सब अत्यधिक उत्तेजक कारण ही हैं और सब रोगोंके जो मूल कारण हैं, इस बीमारीके कारण भी वे ही हैं।

बीमारी जैसे ही शुरू हो वैसे ही रोगीको उबाले हुए गुनगुन नीम पानीसे एक बार डूस दे देना चाहिए। रोगी जितना गरम पानी आसानीसे बर्दाश्त कर सकता हो उतना ही गरम उसे रखना चाहिये और यह भी कोशिश करनी चाहिये कि डूसमें थोड़ा अधिक पानी चढ़ा दिया जाय। परन्तु पानी इतना अधिक न दीजिये कि वह थोड़ी देरतक भी वहां ठहर न सके। कोशिश करनी चाहिये कि डूसका पानी थोड़ी अधिक देरतक पेटके भीतर ठहर जाय। गरम जल यथेष्ट रूपसे दर्दको कम करता है और पानीका जो अंश शरीरमें सूखता है वह नयी बीमारी छुड़ानेमें बहुत कुछ सहायता करता है। इसके बाद रोगीको एक बार गरम पानीका पैर-स्नान देकर उसके समूचे शरीरको भींगे गमछेसे पोंछ देना

जरूरी है या उसको घर्षण-स्नान देना चाहिये। उसके बाद उसे तीन-चार घंटे आराम देनेके बाद गरम-ठंढा कमर-स्नान (alternate hip-bath) का प्रयोग करना चाहिये। इस बीमारीमें यह उपाय बहुत लाभदायक होता है। पेडूको साफ करके, ढेरसा गरम पानी पीनेके साथ-साथ केवल गरम-ठंढा कमर-स्नान ही लेनेसे कष्ट बहुत कुछ कम हो जाता है और बीमारी बहुतं आसानीसे छूट जाती है। यह रोज दो बार देना जरूरी है। यदि स्नान करनेका ढब नहीं हो तो रोगीके मूत्राशयके ऊपर बीच-बीचमें गरम-ठंढा देकर बार-बार बदलकर ढकी हुई पट्टीका प्रयोग करना चाहिये।

इस बीमारीमें पैरकी पट्टी बहुत लाभदायक है। दिनभरमें दो बार यह एक-एक घंटेके लिये प्रयोगमें लाना कर्त्तव्य है। इसके अलावे दोनों पैर सदा गरम रखे जाने चाहिये अर्थात् ठंढे न होने पावें इसकी व्यवस्था की जाय। परन्तु इलाज ऐसा नहीं होना चाहिये कि रोगीको उससे भी कष्ट होने लगे क्योंकि यह बीमारी थोड़े समयके बाद स्वयं अच्छा होने लगती है। रोगीको ठंढे पानीमें कभी स्नान न करने दें परन्तु उसके शिरको रोज ठंढे पानीसे धो देना और कमसे कम दिनभरमें दो बार उसे तौलिया-स्नान या घर्षण-स्नान लगाना चाहिये। रोगीके पेटपर मिट्टीकी पुलटिस इस बीमारीमें नहीं चढ़ायी जाती। ठंढे पानीका हिप-बाथ भी इस रोगमें मना किया जाता है।

बीमारीमें, आरम्भसे ही ढेरसा पानी पीना चाहिये। यह विशेष आवश्यक है। क्योंकि बहुत सा पानी पीकर खूनको पतला कर लेना इस बीमारीमें बहुत लाभदायक होता है। जितना भी पानी रोगीसे पिया जा सके वह पिये। कभी-कभी तो केवल ढेरसा पानी पीनेसे ही मूत्राशयका दर्द दूर हो जाता है। पहले गरम पानी पीनेसे यदि के भी हो जाय तो भी उसे पीते जाना चाहिये। पानी इतना गरम रहना चाहिये कि उसे थोड़ा-थोड़ा करके (sip) पिया जाय। पीछे तो ठंढा पानी भी पी सकते हैं। यह इस बीमारीका खास इलाज है। यदि

रोगी पानी न पियेगा, तो बीमारीके लक्षण विशेष रूपसे बढ़ सकते हैं।

पहले दो दिनोंतक रोगीको केवल नीबूके रसके साथ पानी, शहदके साथ पानी डाबका पानी, बारह घन्टे फुलाया हुआ किशमिशका पानी, छेनेका पानी, और फलोंके रसपे ऊपर रखना चाहिये या इस समय सभी पथ्य तरल होने चाहिये। इसके बाद तरह-तरहके फल, मट्ठा, उबाली हुई तरकारी, सलाद और दूध आदि देना उचित है।

मूत्राशयसे खून निकलना

[Haemorrhage of the Bladder]

खून मिला पेशाब ही इस बीमारीका विशेष लक्षण है। खूनके भीतर हमेशा थक्का-सा (clot) रहता है, मूत्राशयसे खून निकलनेसे वह पेशाबके बाद या अंतमें उसीके साथ निकलता है।

दोनों पैरोंमें पैरकी पट्टी देकर मूत्राशयके ऊपर ठंढा देना ही इस रोगका खास इलाज है। पहले तो बराबरके लिये पैरकी पट्टी लगाकर रखना चाहिये। उसके बाद दिनभरमें तीन बार एक-एक घंटेके लिये इसका प्रयोग करना उचित है। पट्टीको इतना गरम नहीं करना चाहिये कि सारे शरीरसे पसीना छुटने लगे। शुरूमें रोगीको पेडू पर बर्फके पानीमें भींगी पट्टी या गीली मिट्टी चढ़ायी जानी चाहिये, परन्तु पहली हालत बीत जानेके बाद रोगीके पेशाबकी थैलीपर दिनभरमें दो बार खूब मामूली गरमी के द्वारा दो-एक मिनटके लिये सेंक करना जरूरी है। ऐसा न किया जायगा तो इस जगहपर एक अवसाद-सा (depression) आ जाती है। बहुत देरतक मिट्टीकी पट्टी या बर्फके पानीकी पट्टी रखे रहनेके बाद जब वह और अच्छा न लगे, तब पेड़ूपर ढकी हुई पट्टी लगानेकी आवश्यकता होती है। दिनमें दो बार कुछ-कुछ गरम पानीमें पैर डूबाकर,, ठंढे पानीमें कमर-स्नान लेनेसे भी बहुत लाभ हो सकता है। इसी समय एक बार ठंढे पानीका डूस भी बहुत लाभ पहुँचाता है। पानी

खूब ठंढा होना चाहिये। रोगीको रीढ़को भी बीच-बीचमें टंढे पानीमें भींगी हुई तौलियासे पोंछना उचित है। रोगीके चुतड़के नीचे एक तकिया रखकर उसे सदा ऊँचा करके रखना चाहिये। उसकी चारपायीका नीचेका हिस्सा भी ऊँचा कर देना उचित है। बीमारी छूट जानेके एक महीना बाद भी, उसके पेड़ूपर पानीकी मोटी पट्टी रखकर, बीच-बीचमें एक घंटेके लिये उसे भींगी चादरका पैक देना विशेष रूपसे लाभदायक होता है।

पहले दिन पूरा-पूरा उपवास कराके केवल नीबूका रस मिला पानी पीनेको देना चाहिये। उसके बाद भूख लगनेपर कमला नीबू आदि फलोंका रस देना उचित है। उसके बाद फल या दूध दिया जा सकता है। सभी प्रकारके उत्तेजक खाद्य उसको बिल्कुल ही छोड़ देनेकी आवश्यकता है।

मूत्र-यंत्रसे खून निकलना

[Haemorrhage of the Kidneys]

खुन मूत्र-यंत्रसे निकलता है या मूत्राशयसे, यह जाननेका प्रधान उपाय यही है कि मूत्राशयसे जो खून निकलता है वह पेशाबके शेषमें या उसके शेष होते-होते निकलता है। परन्तु मूत्र यंत्रसे खून निकले तो पहलेसे ही पेशाब खूनके साथ मिला हुआ होता है।

मूत्र-यंत्रकी सूजन, मूत्र-यंत्रमें अधिक खून जमा हो जाना, चोट, तरह तरहकी जहरीली दवाइयोंके इस्तेमाल और मूत्र-यंत्रकी पथरी आदि कारणोंसे यह बीमारी पैदा होती है।

चिकित्सा मूत्राशयसे खून निकलनेके रोगके समान ही है। केवल इसमें मूत्राशयके बदले मूत्र-यंत्रपर जलकी पट्टी आदि चढ़ायी जाती है। रोगीका पथ्य अधिक फलोंका रस, फल, तरकारीका शोरबा, उबाली तरकारी, सलाद और दूध आदिके भीतर ही रखना चाहिये।

मूत्रकी रुकावट

[Retention of Urine]

पेशावकी थैलोमें पेशाब जमा रहे, परन्तु वह बाहर न निकले तो उसे मूत्रकी रुकावट कहा जाता है। इसको पेशावका नाश (suppression of urine) समझ लेनेकी भूल न हो। मूत्रकी रुकावटमें पेशाब इकठ्ठा होता है पर वह निकलता नहीं है, और मूत्रनाशमें मूत्र-यंत्रके (kidney) भीतर पेशाव पैदा ही नहीं होता, इसलिये पेशावकी थैली खाली रहती है। मूत्रकी रुकावट मूत्राशय (bladder) को बीमारी है, और मूत्र-यंत्रकी बीमारीमें मूत्रनाश रोगको प्रकट करता है।

इस बीमारीमें मूत्राशय पेशावसे भरा हुआ मालूम होता है और पेशाव करने की बहुत तबियत रहती है लेकिन पेशाब होता ही नहीं। रोगीको बेचैनी हो जाती है, और बहुत तकलीफ होने लगती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है तथा मूत्राशय फूल जाता है। यदि यह हालत जल्दीसे ठीक न किया गया तो मूत्राशय किसी न किसी जगह फट जाता है, उसमें सूम पैदा हो जाती हैं और रोगी मौतके मुँहमें भी जा पड़ता है।

यह बीमारी कई कारणोंसे हो सकती है। कभी-कभी तो यह स्नायुकी कमजोरीसे भी होती है। गर्भिणी स्त्रियोंको कभी-कभी पेशाबकी थैलीपर बच्चेके दबावसे उसका रास्ता बन्द हो जाता है। कभी-कभी पेशाबकी पथरीसे दबनेसे भी मूत्ररोध हो सकता है। पेशाबकी थैलीकी सूजसे भी यह हो सकता है और पुरुषोंको तो आमतौरसे प्रास्ट्रेट ग्लेण्डकी (Prostrate gland) वृद्धिसे ही यह अधिकतर होता है। सबसे भयंकर मूत्रकी रुकावट होती है मूत्राशयके अल्पकालिक लकवासे। बहुत बार तो यह बीमारी पहलेसे मूत्रकी नालीकी सूजके कारण (urethritis) उसके छेदके सकरा हो जानेके कारण होती है। कभी-कभी शर्मके मारे

देरतक पेशाब रोक लेनेके कारण कोशिश करनेपर भी पेशाब नहीं उतरता और अन्तमें ऐसी बीमारी हो जाती है। युरोपमें टाईको ब्राही Tycho Brahi नामके एक बड़े ज्योतिषी थे। आस्ट्रियाके सम्राटके साथ भेंट करनेके समय संकोचवश वे यथासमय अपने मूत्राशयको खाली करनेमें असमर्थ रहे। इसके फलस्वरूप उनका पेशाब बन्द हो गया तथा उसी रोगसे उनके प्राण छूट गये (Michael G. Wohl, M. D, F.R.C.P. —Internal Medicine, p. 1383, Philadelphia, 1951)। कभी-कभी खूनका चक्का पेशाबकी नलीमें अटक जानेसे भी यह रोग होता है। देहके भीतर पहलेसे अनुकूल अवस्था रहनेसे ठंढ लगने, पानीमें भींगने, बहुत अधिक शराब पीने या ऐय्याशी करनेके कारण एकाएक यह बीमारी हो जाती है।

गरम पानीमें देरतक कमरे-स्नान (hip bath) लेना ही इस बीमारीका खास इलाज है। ऐसा करनेसे पेशाबका समूचा रास्ता ढीला हो जाता है और उससे होकर अपने आप पेशाब उतर जाता है। इस समय शिरपर पानीकी पट्टी देना विशेष रूपसे आवश्यक है। इन्द्रिय और पेशाबकी थैलीपर गरम पानीकी पट्टी थोड़ा बड़ा करके देनेसे भी बहुत बार काम हो जाता है। परन्तु इन सबसे अधिक आसानीसे पेशाब होता है रोगीको पेशाबकी थैलीपर गरम ठंढा देने और उसके बाद उसे खूब गरम पानीके एक भारी डूस देनेसे। जितना गरम रोगी सहन कर सके उतना ही गरम देना चाहिये। कई बार तो इतने ही से रोगीको पेशाब हो जाता है। साधारणतया रोगी जब पेशाब करने बैठे उस समय इन्द्रियपर पानी डालनेसे भी अच्छा लाभ होता है। यह खयाल रखना होगा कि रोगीको दिन-रात में कमसे कम दो-तीन बार पेशाब करा देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करनेसे पेशाबकी थैलीमें सदाके लिये लकवा लग जा सकता है।

जबतक पेशाब न हो रोगीको तरल खाद्य खानेको देना नहीं चाहिये। पर बहुत आवश्यक हो तो दो-एक दिनतक उसे केवल फलके ऊपर ही

रखना चाहिये। उसके बाद रोगीको छेना और उबाला शाक आदि दिया जा सकता है।

मूत्रनाश

[Suppression of Urine]

मूत्रयन्त्र (kidney) जब खूनसे पेशाब सोख लेनेमें लाचार हो जाता है और पेशाब नहीं पैदा होता, उसीको मूत्रनाश कहते हैं। यह थोड़ा या पूरा-पूरा होता है। मूत्र-यंत्रकी सूजन, उसमें 'खुनकी अधिकता' ऐंजा या बुखारसे गुरदा यदि गड़बड़ हो गया हो तो मूत्रनाश हो जाता है। मूत्र-यन्त्र जो जहर खूनसे खींचकर पेशाबके रास्ते बाहर निकाल देता है, जब वह इस प्रकार बाहर नहीं निकल पाता, तब सारा खून ही जहरीला हो जाता है और इसके कारण अवसन्नता, तन्द्रा, सुस्ती बेहोशी आदि लक्षण पैदा होते है।

मूत्र-यन्त्रको संजीवित करनेकी जितनी पद्धतियां हैं, उनमें गरम पानीका डूस सबसे अधिक लाभदायक है। इसलिये पहले ही रोगीको काफी गरम और अधिक पानीका एक डुस देना जरूरी है। बहुत बार केवल इसीसे रोगीको पेशाब हो जाता है। डूस देनेके बाद दो घंटेपर रोगोको भापका स्नान या गरम पैरका स्नान आदि कोई पसीना लानेवाला स्नान देना चाहिये। हर रोज एक बार ऐसा स्नान लेना आवश्यक है। ऐसा करनेसे शरीरके भीतरका वह विषाक्त पदार्थ जो पेशाबके साथ बाहर निकलता है, इसी पसीनेके साथ बाहर निकल जाता हैं। इससे पेशाब न होनेके कारण शरीरपर जो जहरका असर होता है वह नहीं होने पाता। इसके अलावे प्रति तीन घंटेके बाद रोगोके गुरदोंपर गरम-ठंढी पट्टीका प्रयोग (hot and cold renal compress) करना उचित है। (प्रयोग विधि के लिये शेष अध्याय देखना चाहिये)। बीच-बीचमें रोगीकी रीढ़को ठंढे पानीमें भींगी हुई तौलियाके द्वारा पोंछना जरूरी है। इसकी व्यवस्था होनी चाहिये कि दिनभरमें कमसे कम तीन बार रोगीको

पैखाना हो जाय। यदि अपने आप न हो तो गरम पानीके डूससे ही पैखाना करा देना उचित है। इस उपायसे जैसे शरीरसे जहर निकल जाता है वैसे ही मूत्र-यन्त्रमें भी ताकत पैदा होती है।

शुरूसे ही नीबूके रसके साथ ढेरसा गरम-गरम पानी पीना चाहिये। बीमारीकी तेजी खतम हो जाय तो गुनगुना पानी पीना उचित है। पथ्यमें रोगीको पहले छोटे डाबका पानी, मीठे कमला नीबूका रस, नीबूके रसके साथ पानी, तरह-तरहमें शाकोंका लवण-शून्य जूस, विशेषकर गाजर और पुनर्नवा शाकका जूस और पानी मिलाया हुआ कच्चा दूध दिया जा सकता है। तीन भाग पानी और एक भाग दूध मिलाकर देना चाहिये। इससे रोगीको खूब पेशाब होता है। यह इस रोगका एक भारी इलाज है। इसके बाद रोगीको ताड़का कोआ और तरबूज आदि भी ऊपर लिखे हुए पथ्योंके साथ दिया जा सकता है। अच्छे हो जानेपर उसे पुराने चावलका भात, परवल, तरोई, लौकी आदि तरकारियाँ, तीते शाक और मीठे फल मिलने चाहिये।

शोथ

[Dropsy]

[१]

शरीरके विभिन्न स्थानोंमें जल जमा हो जानेका नाम शोथ है। साधारणतया हाथ, पैर और मुँहके चमड़ेके नीचे पानी का जमाव हो जाता है। परन्तु किसी-किसी कड़ी बीमारीमें पेठ या छातीके भीतर भी पानी जमा होता है। शरीरमें पानी जम जानेसे हमेशा ही बाहरसे दिखाई पड़ता है, ऐसा नहीं। मूत्र-यन्त्रके रोगमें बाहरी दृष्टिकी ओटमें १४ पाउन्ड तक पानी शरीरमें संचित हो सकता है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1321, London, 1947)।

साधारणतः हृदयके रोग या मूत्र-यन्त्र (kidney) की बीमारीसे शोथ पैदा होता है। हृदयके रोगके कारण जो शोथ होता है, वह प्रायः परिश्रम करनेसे बढ़ता है और मूत्र-यंत्रकी बीमारीके कारण जो होता है वह प्रायः विश्राम करनेसे बढ़ता है। इसलिये हृदयके रोगसे उत्पन्न हुआ शोथ सन्ध्या समय आता है और रात्रिके शेष होनेपर चला जाता है। इस जातिके शोथमें प्रायः पैर आदि दूरके अङ्गोंमें शोथ होता है और मूत्र-यंत्रकी खराबीसे उत्पन्न शोथ प्रातःकाल बढ़ता है और जैसे-जैसे दिन अग्रसर होता हैं उसका भार भी कम होता जाता है। इसमें अधिकतर आँखोंके नीचेका हिस्सा फूलता है। कभी-कभी जब दोनों कारण वर्तमान रहते हैं तब समझना होगा कि रोग छूटना कठिन है। कभी कभी लीवरका सिरसिस (cirrhosis) रोगमें जब लीवर बहुत सख्त और छोटा हो जाता है तब आँतसे आया हुआ रक्त हृदयके रास्तेमें बहुधा लीवरके अन्दरसे जा नहीं सकता, तब वह रक्त पेटकी शिराओंके भीतर वापस आता है एवं खूनका जलीय अन्श वहांसे उदरवेष्टनी झिल्ली (peritonium) के भीतर जाकर संचित होता है, इसे ही जलन्दर कहा जाता है।

शरीरकी दुर्बलता और रक्तशून्यता आदि से भी कभी-कभी शोथ होता है। इस अवस्थामें अधिकतर पैर और तलवे शामके समय जलसे भर जाते हैं।

परन्तु खून खूब खराब न हो तो शोथ कभी हो नहीं सकता। खूनकी धारा विगड़ जानेके कारण जब हृदय आदि यन्त्रों और महीन नालियों (capillary vessels) की दीवालें खराब हो जाती हैं और खूनमें पानी का हिस्सा छनकर चमड़ेके नीचेकी तन्तुओंमें आकर संचित होता है, इसका नाम शोथ है।

[२]

इसलिये अन्यान्य रोगोंकी तरह शरीरमें खोये हुए स्वास्थ्यको लौटा लाना इस रोगकी भी प्रधान चिकित्सा है। वस्तुतः प्राकृतिक चिकित्सामें

रोगोंकी तो चिकित्सा होती नहीं है, रोगीकी चिकित्सा होती है। जिस किसी भी कारणसे रोग हो, उसे शरीरसे निकाल बाहर करके जब फटक दिया जाय तब जैसे स्वास्थ्य अच्छा होने लगता है, वैसे ही रोगोंसे भी आपसे आप छुटकारा मिलता जाता है।

इसलिये पहले ही पेड़ूको साफ कर लेना आवश्यक है। इस अवस्थामें बार-बार रोगीको भींगी कमर-पट्टीका प्रयोग करना उचित है। इस समय रोगीकी सभी चिकित्साएँ जहाँतक हो सके मृदु होनी चाहिये। क्योंकि शोथ होनेसे ही समझना चाहिये कि रोगी बहुत दुर्बल हो चुका है। इसलिये ऐसी हालतमें उसे भापका स्नान आदि कोई कड़ा इलाज (vigorous) करनेसे काम नहीं चलता क्योंकि इस समय यदि पूरे समयतक भापका स्नान आदि दिया जाय तो उससे रोगीको खतरा भी हो सकता है। उसे भींगी चादरका पैक देना भी उचित नहीं है। इसके बदले उसे सदा रहने वाली भींगी कमर पट्टीका (wet girdle) प्रयोग करना उचित है। इसको प्रति दो दो घन्टों पर बदल-बदलकर दिनमें, और बिना बदले हुए रातमें लपेटना चाहिये। केवल इसीसे जिस प्रकार पेट साफ और ठीक हो जाता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे उसके द्वारा भींगी चादरके पैक आदिका काम भी पूरा हो जाता है। परन्तु रोगीकी हालत कुछ अच्छी हो तो उसे नित्य क्रमानुसार बढ़नेवाले धूप-स्नान (graduated sun-bath) का प्रयोग करना उचित है। रोगीके लिये यह बहुत लाभदायक है। धूप-स्नान लेनेके बाद रोगीके शरीरको भींगे गमछेके द्वारा अवश्य ही पोंछ देना चाहिये। दोपहरके बाद उसे एक छोटा गरम पैर-स्नान देकर फिर उसके शरीरको पोंछ दिया जाना चाहिये। रातमें भी उसे पैरका पैक देकर उसके शरीरको पोंछना जरूरी है। इस प्रकार दिनभरमें तीन बार उसके शरीरको भींगे गमछेसे पोंछना चाहिये। रोगीको दिनमें दो-एक बार यदि तौलिया-स्नानके बदले घर्षण-स्नान दिया जाय तो उसको बहुत लाभ होता है। रोगीके

शरीरमें नया खून पैदा करने का यही सबसे अच्छा उपाय है। रोगीको अधिकसे अधिक समय-तक खुले स्थानमें रहना चाहिये। धीरे-धीरे करके अधिक समय वायु-स्नानमें लगाना बहुत अच्छा होता है। इस बीमारी-में पलंगपर पड़े रहकर पूरा आराम करना उचित है। जिस अंगमें पानी आ गया हो उसको बराबर ऊंचा रखना बहुत आवश्यक है। यदि हृदयका काम गड़बड़ होनेके कारण शोथ पैदा हुआ हो तब उसीके ठीक करने का उपाय भी साथ ही साथ करना चाहिये। यदि हृदयकी धड़कन बहुत बढ़ी हुई हो तो रोगीको थोड़ा और हल्का गरम पानीमें एक बार फुट-बाथ देकर, इसी समय उसके हृदयके ऊपर दिनभरमें दो बार दस से तीस मिनटोंके लिये पानीकी पट्टी (cold compress) का प्रयोग करना आवश्यक है। यह पहले दिन दस मिनटोंके लिये प्रयोग करके उसके बाद प्रतिदिन पांच-पांच मिनट करके बढ़ाते जाना चाहिये। प्रयोगके बाद इस स्थानको आहिस्तेसे रगड़-रगड़कर लाल और गरम कर देना जरूरी है। और यदि रोगी के हृदय की चाल खूब कम हो तो रोगीको रीढ़के ऊपरके हिस्सेपर, रोज एक बार, एक या दो मिनटोंकी सेंकके बाद एक या दो मिनटोंतक ठंढा देकर आठसे सोलह मिनटोंतक गरम-ठंढाका प्रयोग करना उचित है।
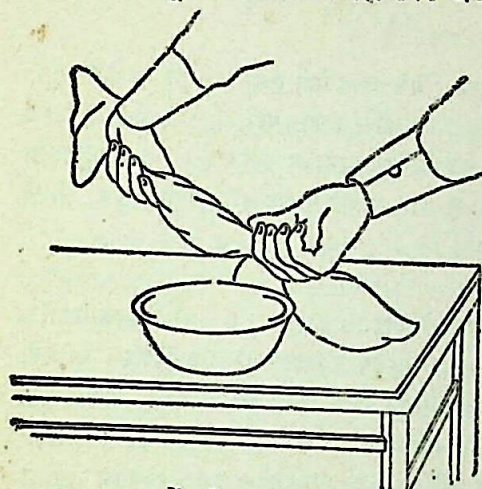
सेंककी व्यवस्था

साधारण तौरसे गरम पानीकी थैलीसे सेंक करते हैं। परन्तु यदि

वह थैली न हो तो गरम पानीमें तौलिया डुबाकर और उसे खूब निचोड़कर सेंक दिया जा सकता है।

यदि मूत्र-यंत्रके ख़राब होनेसे शोथ पैदा हुआ हो, तो रोगीके मूत्र-यंत्रपर नित्य दो-तीन बार गरम और ठण्डी पट्टी (hot and cold renal compress) का प्रयोग करना आवश्यक है। इससे मूत्र-यंत्र जल्दीसे ठीक हो जाते हैं और काफी पेशाब हो जानेके कारण आपसे आप शोथ मिठ जाता है।

[३]

पहले-पहल तो रोगीको जहांतक हो सके अधिक दिनोंतक उपवास करके रहना चाहिये। इस बीमारीमें उपवास ही एक विशेष चिकित्सा है। रोगी को पहले पहल नीबूके रसके साथ केवल पानी पीनेको देना चाहिये। परन्तु एक ही बार बहुत सा पानी न पिलाकर कई बार थोड़ा-थोड़ा पानी पीनेको देना उचित है। उपवासके बाद कई रोजतक रोगीको केवल कमला नीबू अथवा अन्यान्य फलोंका रस और छेनेका पानी तथा नेनुआका रस लेते रहना कर्तव्य है। शोथकी बीमारीके पथ्यमें छेनेका पानी बहुत लाभदायक है। नीबूके रससे फाड़ा हुआ छेनेका पानी निकालकर उसे सदा गरम-गरम पिलाना जरूरी है। इस समय रोगीको कमसे कम ६।० सेर छेनाका पानी पिलानेकी कोशिश होनी चाहिये। इसके बाद उसे ऊपर बताये गये पथ्योंके अलावे कई प्रकारके फल दिये जा सकते हैं। उसे हरी शाक सब्जियोंका शोरवा भी देना चाहिये। इसके बाद उसे दूध देना उचित है। रोगीको दूधमें मधु मिलाकर भी दिया जा सकता है। रोग पूरा अच्छा न होनेपर उसे नमक खाना पूर्ण रूपसे छोड़ देना चाहिये (Bernarr Macfadden—Home Health Library, Vol. II, p. 1669)। इसके अलावे सभी प्रकारके मसाले, विशेषकर गरममसाले, सभी प्रकारकी भुंजी हुई चीजें तथा पुलाव, खीर और पिस्ता, बादाम आदि देरसे पचनेवाली सभी चीजें रोगीको छोड़ देना आवश्यक है।

यूरेमिया

[Uraemia]

हमलोगोंके पेशाबसे प्रकृति हर एक तरहके विषैले पदार्थ शरीरसे निकालती है। जब वे सब पदार्थ बाहर निकल नहीं पाते और खूनके भीतर रह जाते हैं, तभी मूत्ररोध विकार या यूरेमिया पैदा हो जाता है।

पेशाबकी कमी, बराबरके लिये शिर-दर्द, शिर घूमना, कैको इच्छा, कभी-कभी उलटी भी, बहुत समयतक अङ्गोंका ऐंठन, अचेतन निद्रा आदि इस बीमारीके लक्षण हैं। शरीरका ताप पहले कुछ बढ़ता है परन्तु तुरन्त ही स्वाभाविककी अपेक्षा कम भी हो जाता है। रोगीके बिछावन और उसके शरीरसे पेशाबके तरहकी दुर्गन्ध निकलने लगती है।

जो विष शरीरके भीतर रहकर इन सब रोगोंका लक्षण पैदा करता है उसे शरीरसे बाहर कर देना और मूत्र-यंत्र (kidney) को सबल बनाना ही इस रोगकी प्रधान चिकित्सा है। गरम पानीका डूस ही इस बीमारीमें बहुत लाभदायक होता है। यह पेटको साफ कर देता है और उसीके साथ-साथ मूत्र-यंत्रकी ताकतको भी बढ़ाता है। रोगीको कमसे कम प्रति दिन एक बार यथेष्ट रूपसे गरम पानीका डूस देना उचित है। रोगीके रोमकूपके भीतरसे भी काफी विष बाहर कर देना आवश्यक है। इसलिये उसको प्रतिदिन एक बार भापका स्नान और दूसरी बार भींगी चादरके पैकका प्रयोग करना कर्तव्य है। पसीना निकालनेवाले स्नान इस बीमारीमें इतने उपकारी हैं कि बीमारी शुरू होनेके पहले ही एक बार इस तरहका स्नान दे दिया जाय तो उससे प्रायः इस रोगका आक्रमण रोका या व्यर्थ कर दिया जा सकता है। प्रतिदिन दोपहरके बाद ठंढे और गरम पानीमें कमरका स्नान लेना आवश्यक है। गरम पानीमें ४ से ८ मिनटोंतक स्नान लेकर उसके बाद दो से तीन मिनटोंतक ठंढे पानीमें कमर-स्नान लेना कर्तव्य है। इस प्रकारसे एक समयमें दो-तीन बार करना उचित है। इस अवस्थामें सर्वदा ही शिरपर भींगा

गमछा लपेटना आवश्यक है। रोगीके मूत्र-यंत्रके ऊपर गरम सेंक आदि छातीकी हड्डीके नीचले हिस्सेमें ठंढा देकर दिनभरमें कमसे कम चार बार मूत्र-यंत्रका इलाज करना चाहिये ; प्रयोगकी विधिके लिये शेष अध्याय देखिये)। रोगीके मूत्र-यंत्रमें पेशाब पैदा करनेका यही सबसे खास उपाय है। उसको हमेशा ढेरसा पानी पिलाना चाहिये। फलोंका रस, पानी मिला हुआ दूध, डाबका पानी, छेनेका पानी, पुनर्नवा आदि हरे शाकों और गाजरका रस आदि रोगीका प्रधान पथ्य होना चाहिये। अन्यान्य चिकित्साओंकी विधिके लिये मूत्र-यंत्र सूजनकी चिकित्सा देखनी चाहिये।

नवम अध्याय

स्नायविक रोग

शिर-दर्द

[Headache]

शिर-दर्दको लोग एक विशेष बीमारी समझते हैं, पर असलमें यह बीमारी नहीं, बीमारीका उपसर्ग है। शिरमें दर्द हो तो समझना चाहिये कि इसके पीछे-पीछे और कोई एक रोग छिपा हुआ है और शिर-दर्द उसका उपसर्ग है। शिर-दर्दको साधारणतः तुच्छ रोग ही समझा जाता है। यद्यपि अधिकांश परिस्थितियोंमें यह नगण्य रोग लक्षण होता है, तो भी इसको कभी भी तुच्छ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि बहुत स्थलोंमें पेट दर्दकी तरह यह नाना प्रकारके कठिन रोगोंके अग्रदूतके रूपमें उपस्थित होता है (Howard F. Conn, M. D.—Current Therapy, p. 682, London, 1954)।

अधिकतर तो कब्जियतसे ही शिर-दर्द पैदा होता है। पैखानेकी थैलोंमें बिगड़े हुए पदार्थ जब नीचेके रास्ते बाहर निकल नहीं सकते हैं, तब उसका दूषित रस तरह-तरहसे सारे शरीरके भीतर छितरा जाता है। जब ऊपर उठकर यह शिरतक जाता है तब वही शिर-दर्द पैदा करता है। चेचक, सन्निपातका बुखार, इन्फ्लूएंजा, मलेरिया आदि बीमारियोंसे जब खूनके भीतर जहरीला, रस छूटता है और वे जब शिरपर हमला करते हैं तब भी शिर दर्द होता है। इस जातिके शिर-दर्दको विषाक्त शिर-दर्द (toxaemic headache) कहते हैं। इससे समूचे शिरमें दर्द होने लगता है। बहुत बार नाक, आंख दांत. कान, पेट और लीवरको बीमारियोंसे भी शिरमें दर्द हो जाता है। जिनका स्नायु अत्यन्त दुर्बल

(delicate) होता है, उनको साधारणतया ऐसा ही शिर-दर्द होता है। इससे प्रायः ललाटमें दर्द होता है। इसको सहानुभूति सूचक शिर-दर्द (sympathetic headache) कहते हैं। कभी-कभी शिरमें खूनकी अधिकतासे शिर दुखने लगता है। इससे मुँहतक लाल हो उठता है और शिर तथा गरदन की खूनवाली नालियाँ कांपने लगती है। जो लोग शराब, गंजा, तम्बाकू आदि अधिक पीते हैं और अधिक मस्तिष्कका परिश्रम करते हैं उन्हें इसी तरहका शिर-दर्द होता है। बहुत बार तो मासिक स्रावके समय ठंढ लग जानेसे जब खूनका निकलना बंद हो जाता है, तब जवान लड़कियोंको ऐसा ही सिर दर्द होने लगता है। इस तरहका शिर-दर्द बहुत कष्टदायक होता है। इसको खूनकी अधिकताका शिर दर्द (congestive headache) कहते हैं। फिर कभी-कभी खूनकी कमीसे भी शिर-दर्द होने लगता है। जिन लोगोंको किसी तरहकी दिलकी बीमारी है और इस कारण जिनके शिरमें काफी खून नहीं पहुंच सकता या जो बूढ़े हो गये हों या जिनको नींद न आनेकी शिकायत हो उनको इसी प्रकारका शिर-दर्द होता है। इसमें साधारणतया शिरके पिछले हिस्सेमें या तालूके दाहिने तरफके हिस्सेमें दर्द होता है। इस जातिके शिर-दर्दमें खड़ा होने या चलनेसे दर्द बढ़ता और लेट जानेसे कम हो जाता है। इसे खूनकी कमीका शिर-दर्द (anaemic headache) कहते हैं। कभी-कभी बहुत भीड़-भाड़वाली जगहोंमें देरतक रहने, हवा जहाँ न जा सके ऐसी तंग कोठरीमें सोने, अधिक परिश्रम, थकावट और मानसिक उद्वेगसे और स्नायुकी कमजोरीसे रोगग्रस्त लोगोंके शिरमें दर्द होता है तथा इससे वे बहुत कष्ट पाते हैं। बहुत बार यह दर्द आधे ललाटमें ही होता है। इसको स्नायविक शिर-दर्द (nervous headache) कहते हैं। इसके अलावे अन्यान्य कारणोंसे भी शिर-दर्द होते हैं।

यदि रक्तदोषसे शिर-दर्द होता हो (toxaemic headache) तो पहले रोगीके पेड़को साफ करके उसे गरम पैर-

स्नान आदि कोई पसीना निकालनेवाले स्नानका प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद फिर उसके शरीरको ठंडा कर देना भी आवश्यक है। क्योंकि प्रायः कब्जियतके कारण ही शिरमें दर्द होता है, इसलिये पेट साफ होते ही अधिकांश अवस्थाओंमें शिरका दर्द आराम हो जाता है। इसलिये रोगीको सदा पेट साफ रखना कर्तव्य है। उसके बाद उसे रोज नीबूके रसके साथ ढेरसा ठण्डा पानी पिलाना चाहिये। जहांतक हो सके अधिक देरतक रोगीको ठंढी खुली हवामे बाहर रहना चाहिये। दूसरी किसी बीमारीके साथ जो सिर-दर्द (sympathetic headache) होता है वह उस रोगके जानेपर ही चला जाता है। इसीलिये ऐसी हालतमें असली बीमारी छुड़ानेकी ओर ध्यान देना चाहिये। अधिकतर तो शिरमें खूनकी अधिकतासे ही शिरमें दर्द होता है। पेड़ूको अच्छी तरह साफ कर लेनेके बाद पैरोंपर गरम और शिरपर ठंढा देना ही इसका खास इलाज है। इसमें शिर-दर्द शुरू होते ही शिरपर मोटी भींगी तौलिया रखकर और हर पाँच-पाँच मिनटोंपर उसे बदल-बदलकर रोगीको बीस मिनटके लिये एक गरम पैर-स्नान देनेसे जादूकी तरह शिर-दर्द छूटता है। बीच-बीचमें पैरकी पट्टी भी देनी चाहिये। शिर और गरदनको सदा उठाये रखकर रोगीको आराम करनेको कहना जरूरी है। सदा पेट भी साफ रखना आवश्यक है। इस प्रकारके रोगीको खुब हलका खाना मिलना चाहिये। और चाय, काफी, शराब और सब प्रकारके उत्तेजक पदार्थ छोड़ देना चाहिये। इसमें कमरका स्नान भी बहुत लाभदायक है। इस समय दोनों पैरोंको गरम पानीमें डुबाये रखकर शिरपर भींगा गमछा रखना जरूरी है। खूनकी कमीके कारण शिरमें दर्द हो तो गरदनके पीछे थोड़े समयके लिये गरम पानीकी थैली रखनेसे लाभ होता है। रोगीको चाहिये कि सोनेकी चारपाईके सिरहानेको नीचा करके उसपर पूरा आराम करे। इसके साथ ही खूनकी कमी मिटानेवाला इलाज भी करना चाहिये। स्नायविक शिर-दर्द (nervous headache)

जिस दिन शिर-दर्दकी पारी हो उसके पहले दिन रोगीको एक बड़ा डूस लेना जरूरी है। रोगोकी अवस्थाके अनुसार उसे रोज कमर-स्नान, सीज-बाथ, तौलिया-स्नान, ठंढी मालिश या धीरे-धीरे कम ठंढा होनेवाले गरम पानीका स्नान आदि उद्दीपक स्नान (tonic treatment) लेना आवश्यक है। रोज रातमें भींगी कमर-पट्टी लगाकर सोना चाहिये। जहांतक अधिक हो सके उसे खुली हवामें बाहर ही बाहर रहना चाहिये। सभी तरहकी जल्दीबाजी और सोच-फिक्र छोड़ देना ठीक है। इस बातकी खासकर कोशिश होनी चाहिये कि अच्छी नींद आवे। रोगीको जहांतक हो सके फल, फलोंका रस, सलाद दूध और मट्ठा आदि खाकर रहना उचित है। सभी अवस्थाओंमें कच्चा दूध ही पीना चाहिये (Philip Karell, M. D.—The Milk-cure, p. 9)।

तभी भी एक ही इलाजसे सब प्रकारका शिर दर्द मिट सकता है। शिर-दर्द कितना ही कठिन क्यों न हो, हर रोज मालिश, हाथ पाँवमें मालिशकी गति उपरसे नीचे, पेटपर गरम-ठंढा, गुनगुने नीबू पानीसे डूस, शिर धोकर और शिरपर गीला गमछा लपेटकर ९ मिनटके लिये फूटबाथ और उस समय हर तीन मिनटके बाद शिरका गमछा बदल देना ही इस इलाजकी मूल बातें है। साथ-साथ पेटकी लपेट भी रखना जरूरी है।

अनिद्रा

[Insomnia]

अनिद्रा अत्यन्त कष्टदायक है। यदि यह अवस्था कुछ अधिक दिनोंतक चलती रहे तब शरीर बहुत खराब हो जाता है और अनेकों बार इसके कारण आदमी पागल भी हो जाता है। जब मनुष्य समझे कि रातमें उसे नींद नहीं आती और उसे सारी रात जगते ही रह जाना पड़ता है तब उसको चाहिये कि इसके लिये तुरंत ही उपाय करे। नींद न आनेके कई कारण हो सकते हैं। कब्जियत, बुखार, गठिया आदि बीमारियोंके कारण

खूनमें जो कई तरहकी चीज घुस जाती हैं उसीसे यह बीमारी पैदा होती है। हृदयके रोग, हँफनी और शिर-दर्द आदिसे भी मस्तिष्कमें खूनका आधिक्य हो जाता है और स्नायुमें उत्तेजना उत्पन्न कर अनिद्रा ले आता है। दर्दके रोगियोंको भी कभी-कभी रातमें नींद नहीं आती है। सोनेके पहले बहुत मानसिक परिश्रम या अधिक खा लेनेसे भी नींद नहीं आती। रातमें अधिक खा लेनेसे जैसे नींद नहीं आती वैसे ही जाड़ेकी रातमें खाली पेट सोनेकी कोशिश करनेसे भी नींद नहीं आ सकती हैं। यदि बिलकुल ही मिहनत न करें तब स्वस्थ अवस्थामें भी नींद नहीं आ सकती है। कभी-कभी चाय,काफी, तम्बाकू या मद्यपानसे भी लोग इस बीमारीको बुलाते हैं। परन्तु नींद न आनेकी बीमारी चाहे किसी तरह भी हुई हो, इसके तीन कारण होते हैं। पहला कारण मस्तिष्कमें रक्तकी वृद्धि, दूसरा कारण स्नायु उत्तेजना (nervous excitement) और तीसरा रक्तकी दोषयुक्त अवस्था। नींद क्यों नहीं आती यह पहले समझकर उसीके अनुसार उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

नींद न आनेकी बीमारियोंमें पहले पेट साफ कर लेना और उसके बाद एक भींगी चादरके पैकका प्रयोग करना आवश्यक है। इस बीमारीमें सभी प्रकारके गरम स्नानोंमें भींगी चादरका पैक सबसे अच्छा है। इसके बाद रोज ढेरसा पानी पीनेसे ही शरीर साफ होकर यह बीमारी दूर हो जाती है। शिरमें खूनके दबाव होनेके कारण यदि नींद न आती हो तो शिरको अच्छी तरह धोकर और माथेमें एक भींगी तौलिया लपेटकर नौ मिनटके लिये एक गरम पाद-स्नान लेनेसे माथेका खून नीचेकी ओर सरक आता है। और इससे रोगीको नींद आ जाती है। गरम पाद-स्नानके बाद पैरोंमें अलग-अलग पैरकी पट्टी एक घंटेके लिये प्रयोग करके माथेपर ठंढे पानीकी पट्टी चढ़ानेसे और अधिक लाभ होता है। भींगी कमर-पट्टी भी इस बीमारीमें तुरंत लाभ पहुंचाती है। क्योंकि वह भी माथेके खूनको नीचे लाती है। इसलिये हिप-बाथ भी लाभदायक है। इस बीमारीमें दिनभरमें कमसे कम दो बार कमरका

स्नान लेना जरूरी है। स्वस्थ अवस्थामें भींगे घास के ऊपर चलना भी इस बीमारीमें लाभ पहुंचाता है। नस नाड़ियोंके कारण यदि नींद न आवे तो सोनेके पहले आधे घंटेतक गुनगुने पानीसे शरीरको रगड़-रगड़कर स्नान करना भी इसका एक बड़ा उपाय है। एक डाक्टरने कहा कि डाक्टरोंके पास नींद लानेकी जितनी दवाएं हैं उन सबसे सोनेके पहले मातदिल पानीका स्नान अधिक उपकारी होता है। जाड़ेके दिनोंमें कुछ गरम पानीमें स्नान करना आवश्यक है। सोनेके पहले भींगी चादरका पैक (neutral wet-sheet pack) २० मिनटोंके लिये लेकर सोनेसे बराबर लाभ होता है। सोनेके समय भींगे हाथसे समस्त शरीरको पोंछ देना और ऊरूसन्धि आदि स्थानोंको अच्छी तरह ठंडा कर लेनेके बाद लेटनेसे नींद अवश्य आ जाती है।

सीज-बाथ लेना नींद लानेका सबसे बड़ा साधन है। सोनेके पहले १५ से ३० मिनटोंतक सीज-बाथ लेकर उसके बाद समस्त शरीरको भींगी तौलियासे पोंछ लेना और माथा धोकर जहाँतक हो सके खुली हवामें, सोनेसे, ऐसा नहीं हो सकता कि नींद न आये। बिछावनपर पड़े-पड़े भी यदि नींद न आये तो उसके लिये सांसका व्यायाम करनेसे प्रायः नींद आ जाती है। जितनी सांस एक बारमें आसानीसे खींची जा सके उतनी खींचनेके बाद उसको धीरे-धीरे छोड़ना चाहिये। इसको एक मिनटमें करीब-करीब १० बार करना चाहिये। तकियापर शिर रखकर ऐसा कुछ मिनटोंतक करनेसे कब नींद आयी इसका भी होश नहीं रहता है। साधारणतया दो तीन दिन ऐसा करनेसे ही बड़ा लाभ हो जाता है। बहुत बार बिछावनपर सोकर किसी खास विषयमें मन लगा देनेसे आँखें अपने आप झपकने लगती है। रातमें सोये-सोये नींद: टूट जाने पर जब फिर न आये तो सारी रात जगे न रहकर ठंढे पानीमें हाथ डुबाकर उससे सारा शरीर पोंछिये और थोड़ी ठंढी हवा लगाकर बिछावनपर फिर जाइये तो फिर उसी वक्त नींद आ जायगी। मुसलमान लोग जिस तरह वजू करते हैं सोनेके

पहले उसी तरह हाथ-पैर धोकर सोनेसे शरीरकी उत्तेजना कम होती है और आसानीसे नींद आ जाती है। जब किसी उपायसे नींद न आवे तब बिछावनपर पड़कर शरीरको ढीला छोड़ देनेसे भी नींद आ सकती है। शरीरको ढोला-ढाला छोड़ देनेका (relaxation) अभ्यास डाल लेनेसे स्नायु (nerve) की उत्तेजना और नींद न आनेकी शिकायत तुरन्त जाती रहती है। योगशास्त्रमें इसको 'शवासन' कहते हैं।

शवासन

जिन कारणोंसे नींद न आनेकी बीमारी हुई हो उसको दूर करना सबसे पहले जरूरी है। दिमागमें खूनका दौरा अधिक होनेसे यदि नींद न आती हो तो पलंगका सिरहाना थोड़ा ऊँचा कर लेना चाहिये। संध्याके बाद ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे उत्तेजना आनेका अवसर आये। एक अंधेरे परन्तु हवादार और ठंढे घरमें सोना आवश्यक है। पहले अभ्यास हो या आदत लगा ली जाय तो खुली हवामें बरामदा आदिमें सोना नींद न आनेका दुश्मन है। सोनेके समय शरीरको कपड़ोंसे जकड़कर रखना या कपड़े लगाये सोना नहीं चाहिये। सोनेके समय गंजी और सेमोज आदि भी हो सके तो छोड़ देना चाहिये। परन्तु जाड़ेके दिनोंमें इतना कपड़ा रखना चाहिये जिससे कि शरीर ठंढा होकर नींद न खुल जाय।

नींद न आवे तो उसके लिये कभी दवा खानी नहीं चाहिये। नींद लानेवाली दवाओंमें प्रायः अफीम आदि डालते हैं। ये सब जहर ही हैं। बीमारीके समय जब शरीरकी जीवनीशक्ति बढ़ानेकी आवश्यकता है, उस समय इस तरहकी जहरीली दवाएं लेनेसे शरीरकी

वही ताकत और कमजोर पड़ती है। अफीम मिली दवाओंसे नींद होती हो ऐसी बात नहीं है, वास्तवमें जहरके असरसे एक तरहका नींदकी हालत-सी हो जाती है। उसको ही लोग नींद समझकर भूल करते हैं। यदि स्वाभाविक रूपसे तीन-चार घंटे भी सोया जाय तो दवाके जोरसे इससे दुगुने समय सोनेसे भी वही अच्छा होता है। मारफिया आदिके प्रयोग करनेसे पहले नींदके समान अवस्था होनेपर भी उसके बाद उससे और कड़ी अनिद्रा ही आती है।

दवाके व्यवहारके विरुद्धमें दूसरी प्रधान आपत्ति यह है कि उसे हमेशा शरीरके सम्पूर्ण रूपसे बाहर न किया जाय। बहुत जानकार डाक्टरोंकी राय है कि अत्यधिक औषधिका व्यवहार ही अधिकांश समयमें पुराने रोगोंका दूसरा एक प्रधान कारण है (Cyril Scott—Sleeplessness, p. 20, London)।

रोगीको नीबूका रस डालकर काफी पानी पीना उचित है। चाय, काफी, गरममसाला और सभी प्रकारके उत्तेजक पदार्थ छोड़ देना आवश्यक है। ऐसी बीमारीमें अनुत्तेजक खाद्य ही पथ्यमें लेना उचित है। पेटको सदा साफ रखना जरूरी है, क्योंकि हाजमेके गड़बड़ होनेसे ही स्नायुकी कमजोरी और अधिकतर स्नायुकी बीमारियाँ पैदा होती हैं (Milton Powell—How to Train Your Nerves, pp. 1—14)।

मूर्च्छा

[Fainting]

मस्तिष्कमें रक्तके अभावसे जो बेहोशी आ जाती है उसको मूर्च्छा कहते हैं। थकावट, दीर्घ उपवास, एकाएक अधिक खून बहने लगना, तेज दर्द या चोट, साँसके साथ जहरीली गैसका ग्रहण करना, शोक, दुःख, आनन्द आदिका मनपर बहुत अधिक दबाव, बहुत गरम स्थान अथवा जनाकीर्ण गृहमें रहनेसे भी लोगोंकी मूर्च्छा आ जाती है।

जो लोग स्वभावतः दुर्बल हैं, जिनका शरीर पहलेसे ही खराब है, जिन लोगोंको स्नायुकी कमजोरी है, वे ही लोग साधारणतया आसानीसे होश खो दैठते हैं। इसलिये पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अधिक मूर्च्छा आती है।

मुंहका रंग पीला पड़ जाना, ललाटपर ठंढा पसीना, थकावटकी अवस्था, शिर घूमना, आँखोंसे साफ न दीखना, आँखोंके सामने अंधेरा लगना, और इसके बाद वेहोशीका आ जाना, इस बीमारीका प्रधान लक्षण है। ऐसे समय रोगीके हृदय और उसके भीतर फुसफुसका काम इतना दुर्बल रह जाता है कि हाथमें लेनेपर नाड़ीकी चाल भी मालूम पड़ती है या नहीं अन्दाज नहीं लगता और रोगीकी सांसें भी प्रायः मालूम नहीं होती। रोगी दो-एक मिनटोंसे लेकर और भी अधिक समयतक वेहोश हो जाता है और बादमें ओठों और आँखोंकी पलकोंको कंपाकर एक या एकसे अधिक लम्बी सांस और काफी पसीना निकलकर उसे होश आता है। अन्य जातिकी मूर्च्छाओंसे इसका पार्थक्य समझ लेना उचित है। हिस्टीरिया या मिरगीमें जो लोग मूर्च्छित हो जाते हैं वह मूर्च्छाकी बीमारी नहीं है। वे विलकूल ही दूसरी बीमारीयां हैं।

रोगीके शिरमें खून ले आना ही इसकी चिकित्सा है मुर्च्छा आते ही रोगीको इस प्रकार सुलाया जाता है कि शरीरसे शिर नीचेको

हलासन

ओर झुका रहे। इससे खून शिरकी तरफ दौड़ता है। पैर ओर

घुटनोंको भी ऊँचा करके रखनेका इन्तजाम करना चाहिये। रोगीको एक खाटके ऊपर सुलाकर उसके पैरकी ओर एक डेढ़ हाथ ऊँचा करके कुछ देरतक रखना जरूरी है। इस उपायसे रोगीकी शिरकी ओर खूनके दौड़नेसे तुरन्त मूर्च्छा छूट जाती है। पहले ही रोगीकी छाती, गरदन और कमरके कपड़ेके बन्धन खोलकर सांस लेनेकी बाधाओंको दूर कर देना चाहिये। इसके बाद उसे खुली हवामें रखकर उसके मुहपर ठंढे पानीका छींटा देना चाहिये। यदि इससे लाभ न हो तो उसकी समूचो रीढ़पर ठंढा-गरम पट्टीका प्रयोग करना चाहिये। यदि अधिक देरतक मूर्च्छा रहे या यदि रोगीको फिरसे मूर्च्छित हो जानेके लक्षण दिखाई दें, तब सर्वदा ऐसा ही करना चाहिये। रोगीके हाथ-पैर ठंढे हो जायँ तो उनको सेंक देना बहुत जरूरी है। होश आ जानेके बाद भी जबतक रोगीकी नाड़ी और साँस ठीक-ठीक न चलने लगे और जबतक उसके गालोंमें खून न आ जाये, तबतक उसे सुलाये रखना आवश्यक है। बेहोश आदमीको बैठाये रखना या झटपट उठाकर बैठा देना खतरनाक है। रोगी यदि मूर्च्छित होने जैसा भाव अनुभव करे तब जल्दी-जल्दी उसके पैर मलकर और उसके पेड़ूको दोनों हाथोंसे चाँपकर उसके शिरको नीचेकी ओर झुकाना कर्त्तव्य है। पेटको जोरसे दबाकर रखनेसे इस स्थानका खून शिरकी तरफ जाता है और शिर झुकाकर रखनेसे भी शिरमें खून चढ़ना है। इसलिये इस प्रकार मूर्च्छाका आना रोका जा सकता है। मूर्च्छा होनेसे ही समझना चाहिये कि सारे शरीरकी हालत खराब है। इसलिये रोगीके अच्छे हो जानेके बाद भी उसके पेड़ूको साफ करके बीच-बीचमें उसे दो-एक बार भींगो चादरका पैक देना जरूरी है। मूर्च्छाके रोगीको सीज-बाथ और हिप-बाथसे बहुत लाभ पहुंचता है। स्वस्थ हो जानेपर जहांतक हो सके अधिक समयतक बाहर खुली हवामें रहना आवश्यक है। रोज खुली हवामें टहलना भी चाहिये और पेटको सदा साफ रखना चाहिये। प्रतिदिन स्नान से पहले धूप स्नान लेकर उसके बाद स्नान करना उचित है।

खैंच

(Convulsions)

शरीरके एक अंग या सभी अंगों के अनिच्छासे अपने आप सिकुड़ने और खुलनेको खैंच कहा जाता है। मस्तिष्क अथवा स्नायुमें भयंकर गोलमाल या तेज बुखारके समय साधारणतया यह दिखाई भी देता है। इसको एक कठिन लक्षण समझना चाहिए।

पहले ही घर के दरवाजे, जंगले खोलकर रोगी को हवामें रखना कर्तव्य है। उसके बाद ही रोगीकी छाती और गरदनके कपड़े खोलकर उसके मुंह और गरदनपर बार-बार पानी का छींटा देना आवश्यक है। एक बार में यदि लाभ न हो तो तीन-चार दफे ऐसा करना जरूरी है। और रोगी अचेत हो जाये इस उपायसे यदि उसको होश न आये या इससे कोई लाभ न हो, तो जितनी जल्दी हो सके रोगीके दोनों पैरोंको पहले गरम पानीमें डुबाकर और उसके बाद उसके पैरोंपर पट्टा चढ़ाकर उसके मुंहपर लगातार ठंढे पानी का प्रयोग करना आवश्यक है। पैरकी पट्टोके ऊपर बार-बार गरम पानीकी थैली रख देनी चाहिये। रोगीकी रीढ़को बार-बार बर्फके पानीमें भिगोई तौलियाके द्वारा पोंछ देना कर्तव्य है। रोगीके पैरोंपर गरम पानीकी थैली रखकर उसे दिनमें दो बार आधे घंटेके लिये ठंढी मालिशका प्रयोग भी करना चाहिये। इस उपायसे साधारणतथा खैंच रुक जाती है। रोगी के शिरको कुछ ऊँचेपर रखना जरुरी है। यदि खैंच बहुत कड़ी हो या वह समस्त शरीरमें हो गयी हो और बुखार न हो, तो १० मिनटोंके लिये उसे गरम पैक कम्बलका एक मोड़क देना उचित है। ऐसे समयपर शिरपर बर्फ रखना चाहिये। पेशाब रुक जानेसे पैदा हुए विकारसे यदि खैंच होती हो तो उसमें यह अधिक लाभदायक होती है। सभी अवस्थाओं रोगी को बिछावनपर सुलाकर सोज-बाथ दिया जा सकता है। रोगीके हाथ-पैर सदा गरम रखने चाहिए।

बीमारीकी तेजी घट भी गयी हो तो भी रोगीसे ध्यान हटाना उचित नहीं है। इसलिये पूर्णरूप से अच्छे हो जानेपर भी, उसके पेड़को साफ करके रोज दो बार उसको तौलिया-स्नान, कमर स्नान और दो बार उसे सीज-बाथका प्रयोग करना आवश्यक हैं। फलोंका रस और नीबूका रस मिला पानी रोगीका प्रधान पथ्य होना उचित है।

प्रलाप

[Delirium]

प्रलाप एक प्रकार की सामयिक उन्मत्तता अथवा मानसिक गड़बड़ी है। सामान्य मानसिक चंचलता और असंलग्न अवस्थासे रोगीके प्रबलताके अनुसार इसमें सामयिक पागलपन भी आ सकती है। साधारणतया रोगीको किसी विषयमें एक प्रकारकी भ्रांति होती है प्रायः रोगी रातमें ही अधिक प्रलाप करता है। नींद टूट जानेपर भी वह बहुत बार प्रलाप करता है। अधिकतर तो कड़े बुखारमें रोगीको प्रलाप होता है। आगमें जल जानेपर या देरतक खून निकलते रहने पर या शरीरमें चोट लगकर खूब बड़ा-सा घाव हो जानेसे अनेकों बार प्रलाप होता है। ज्वरके आरम्भमें रोगीका प्रलाप ठीक पागलके समान होता है। रोगी बहुत उत्तेजना दिखाता है और हाथापाई भी कर लेना चाहता है। अंतिम अवस्थामें वह स्वयं हार कर बिछावनपर पड जाता है और अपने मनमें बकबक करने लगता है जब प्रलाप के समय बड़ी उत्तेजना हो तब अधिकांश अवस्थाओंमें रोगी के दिमाग में सूजन या उसमें और कोई बीमारी पैदा हो गयी है ऐसा समझना चाहिए।

रोगीको बुखार हो तो उसके शिरपर बर्फका पानी लगातार डालते हुए बीच-बीचमें गीली मिट्टी, बर्फकी थैली या खूब ठंढे पानीमें भिगोई हुई तौलिया प्रयोग करना चाहिये। गरदन और माथेके नीचेके भागमें जिससे ठंढा लगे, इसका उपाय करना आवश्यक है।

रोगीकी रीढ़के ऊपरके भागको बीच-बीचमें गरम पानीसे पोंछकर उसके बाद ही उतने समयतक उसे ठंढे जलसे पोंछना आवश्यक है। ऐसा करते समय रोगीका शिर जरूर ही भींगी तौलियामें लिपटा रहेगा। इसके साथ ही साथ रोगीको कमसे कम दिनभरमें तीन बार पैरकी लपेट देनी जरूरी है। और प्रतिबार पट्टी खोलकर उसके सारे शरीरको पोंछ देना भी जरूरी है। दिनभर में दो बार उसको आधे घंटेके लिये भी घर्षण-स्नान प्रयोग करना उचित है। ऐसे वक्त माथा और रीढ़पर विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है। घर्षण-स्नान करते समय सदा रोगीके शिरपर भींगी तौलिया और बीच-बीचमें पैरपर गरम पानीको थैली रखना आवश्यक है। इसमें यह विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है कि रोगी का बुखार कम हो जाय। इसके लिये उसको तीनसे पांच बारतक दिनमें अलग-अलग ५ से १० मिनटोंके लिये भींगी चादरका ठंढा पैक देना जरूरी है। अंतिम पैक आधे घंटेतक भी रखा जा सकता है। विभन्न समयमें इन सभी स्नानों का प्रयोग करके रोगीके बुखारको काबूमें रखना जरूरी है। रोगीके पेड़ू पर बार-बार पानी की पट्टी या गीली मिट्टीके पुलटिसका भी प्रयोग करना उचित है। रोगीका बुखार जिस समय सबसे कम रहे उस समय थोड़ी भी देर न करके उसका पेट साफ कर लेना जरूरी है। और पीछे ऐसा करना चाहिये जिससे कि वह बराबर साफ रहे। रोगीका शिर ठंढा और उसका हाथ-पैर गरम रखना उचित हैं। रोगी कहीं बिछावनसे कूदकर भागे नहीं इसके लिये विशेष सतर्कतासे उसपर पहरा देना चाहिये। उसके साथ कभी तर्क नहीं करना चाहिये। उसे समझा-बुझाकर सब काम करना जरूरी है।

अचेतन निद्रा

[Coma]

वह एक ऐसी अवस्था है जिसमें गहरी नींद लगती है। इस

अवस्थामें, ऐसा लगता है, मानो रोगीकी सारी मानसिक क्रिया ही बन्द हो गयी हो। उसे प्रायः सांस लेनेमें कष्ट होता है, कभी-कभी नाक बजती है और मुंह सीसे को तरह फीका हो जाता है। रोगका जहर जिस समय शरीरके सभी यंत्रको, विशेषकर दिमागको अवसन्न कर देता है। उस समय यह अवस्था आती है। अत्यन्त मारात्मक अवस्थामें ही यह हालत होती है।

यदि रोगीको कड़ा बुखार हो तो उसके अनुसार उसके शरीरको बारबार ठंडो तौलियासे पोंछ देना कर्तव्य है। बुखार खूब तीव्र हो तो उसके शरीरको बार-बार ५ से १० मिनटोंके लिये भींगी चादरका ठंडा पैक प्रयोग करके आखिरी पैकको आधे घंटे के लिये छोड़ देना जरूरी है। यदि बुखार कम हो तो शुरूमें ही आध घंटेका पैक दिया जा सकता है। रोगीकी रीढ़पर हर दिन तीन-तीन घंडोंके बादसे २० मिनटोंके लिये गरम-ठंढाका प्रयोग करना अत्यावश्यक है। शरीरमें कम बुखार हो तो दिनभरमें तिन बार उसके पेड़ूमें हलका गरम-ठंडा देकर उसके बाद एक-एक घंटेपर बदले जानेवाली पेडूको पट्टीको लगातार देते रहना चाहिये। उसका शरीर यदि ठंडा हो तो २० मिनटोंके लिये उसे गरम फुट-बाथ देकर फिरसे भींगी तौलियाके द्वारा उसके शरीरको ठंडा कर लेना जरूरी है। हाथ-पैर उसके सदा गरम रहने चाहिये। इसके लिये इन स्थानोंमें बार-बार गरमीका प्रयोग करना और उन्हें मल-मलकर गरम कपड़ेसे ढककर छोड़ देना चाहिये। रोगीके पैरपर प्रतिदिन कमसे कम दो बार पेरकी पट्टी देनी जरूरी है। यदि पैर ठंडा रहे तो जांघको चारों ओर पट्टी देनी जरूरी है।

रोगीको जब होश आ जाय तो उसे नीबूके रसके साथ क्रमशः बढ़ाकर बहुत-सा पानी पिलाना चाहिये। परन्तु बलपूर्वक यह पानी देना उचित नहीं है। उसको कभी तंग नहीं करना चाहिये और चिकित्सा बहुत कम करना चाहिये।

दशम अध्याय

कान, नाक व गलेके रोग

कान पकना

[Otorrhoea]

हमलोगोंके दोनों कान अति जटिल यन्त्र हैं। इन्हें श्रवणेन्द्रियाँ कहा जाता है। यह यन्त्र तीन भागों में बँटा है। कानके परदेकी ओर जो नल (tube) गया है, उसके साथ कान के समस्त बाहरी भागके अंशको बाहरी भाग का कर्ण (external ear) कहते हैं। कर्णके परदे (drum) को मध्य कर्ण (middle ear) कहते है। यह एक नलके द्वारा गलेके साथ मिला हुआ है। भीतरी कान (internal ear) ही सबसे अधिक जटिल है। यह एक गोरख धंधेकी तरह है। इसके साथ ही मस्तिष्कसे श्रवण-स्नायु (auditory nerve) आकर मिला हुआ है।

जिसे कानका पकना कहते हैं, यह साधारणतः मध्यकर्णका रोग है। इससे मध्यकर्णमें सूजन हो जाती है एवं प्रायः ही कानके परदेमें छेद हो जाता है। सूजन जब अधिक रहती हैं तब कानसे पीले रंगका गाढ़ा पीब निकलता है एवं जब हालतमें तरक्की होती है तब पीब पतला एवं पानीके समान होता है। यदि चिकित्सा न होती है तब पीब अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हो उठता है। कानकी हड्डी यदि रूग्ण रहे तो भी बहुधा इसी तरह हो जाता है।

साधारणतः ठंढा लगनेके फलस्वरूप यह रोग होता है। किन्तु ठंढा लगने के फलस्वरूप सभी को यह रोग होता है, ऐसा नहीं। देहके भीतर जब विभिन्न विष व दूषित पदार्थ संचय होता है और उनके द्वारा आक्रान्त होता है, तभी इस रोगका प्रकाश होता है। इस कारण छोटी माता आदि ज्वरके अन्यतम उपसर्गके रूपमें यह प्रकाश पाता है।

बहुत अवस्थाओंमें यह टान्सिलके सूजन के साथ वर्तमान रहता है।

कानका जो कोई रोग ही क्यों न हो, उसका यथासम्भव तुरन्त चिकित्सा होना उचित है। कारण दोनों कान बहुत प्रयोजनीय यन्त्र हैं एवं रोग पुराना हो जानेपर उसे आरोग्य करना कठिन हो जाता है।

बहुतोंकी धारणा है कि कानसे पीब निकलना एक तुच्छ रोग है। किन्तु यह अत्यन्त गलत धारणा है। कानके पकने के साथ-साथ अल्पाधिक बधिरता रहती है एवं यदि दीर्घ दिनोंतक यह रोग चलता रहे तब कानके भीतर, ऐसा कि मस्तिष्ककी खोपड़ी (skull) के भीतरतक फोड़ा उत्पन्न हो सकता है।

रोग प्रकाश होते ही रोगीको उबाले हुए नीम पानीका हलका व कुछ गरम जलका एक डूश लेकर रोगीका कोष्ठ साफ कर लेना उचित है एवं उसके बाद भी कानका पकना आरोग्य न होनेतक सर्वदा ही कोष्ठ साफ रखना उचित है। इसके लिये प्रतिदिन पेडूकी पट्टी लेनी भी विशेष रूपसे आवश्यक है।

प्रतिदिन स्नानके पहले दश मिनटके लिये फुट बाथ लेकर उसके बाद स्नान करना उचित है। फूट बाथ लेनेके समय भींगा गमछा द्वारा रोगीका कान, आँख व माथा ढके रखना आवश्यक है। रोगीको नीबूके रसके साथ प्रतिदिन प्रचुर जलपान करना चाहिये।

इन सब चिकित्साओंके साथ कानकी सामान्य चिकित्सा करनेसे ही कानका पकना आरोग होता है।

अच्छी तरहसे माथा धोकर कानपर गरम-ठण्डा देना ही उसकी प्रधान चिकित्सा है। कानपर गरम-ठण्डा प्रयोग करनेकी एक विशेष पद्धति है। कानमें इस तरह से सेंक देना होगा जिससे गरमी कान का वेदनाकी ओर पूरे गालके उपर लगे एवं किसी तरह भी दाढ़ों (Jaws) को पार न करे। इसके साथ दाढों (चोओं) व कानके नीचेकी ओर गलेके ऊपर खूब शीतल जलसे भींगो हुई एक तौलिया रखना आवश्यक है। गरम व ठण्डा दोनों ही दो से पांच मिनटके लिये प्रयोग

करना कर्तव्य है। उसके बाद दोनों पट्टी ही हटाकर उत्ताप प्रयुक्त स्थानको आधे मिनटके लिये ठण्डा कर देना उचित है एवं मछेके ऊपर घर्षण करके उस स्थानको गरम कर लेना उचित है। इसके बाद पुनः कान व गालपर सेंक एवं कान व दाढ़ोंके नीचे गलेके ऊपर ठण्डा देना आवश्यक है। इस तरह एक समयमें इसे तीन बार करना कर्तव्य है। गरम-ठण्डा देनेके पहले माथेको अच्छी तरह धो लेना उचित है एवं माथा गरम रहनेपर कानमें गरम-ठण्डा देनेके समय समस्त माथेको भीगे। गमछेसे आवृत कर लेना उचित है। यदि दोनों कानोंमें सूजन उत्पन्न हो तो एक कानमें सुबह और दूसरे कानमें संध्याको या दूसरे दिन गरम-ठण्डा देना उचित है।

यदि रोगीको सर्दी हो तो छातीकी पट्टी लेकर उसे आरोग्य कर लेना चाहिये। इस रोगमें कानके परदेके भीतर जो छिद्र हो जाता है। उसके लिये अधिक चिन्तित होनेकी जरूरत नहीं है। कानके परदेमें सामान्य छेद होनेसे ही उसके फलस्वरूप कठिन बधिरता उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। यदि छिद्र खूब बड़ा न हो तो वह कभी भी सुननेमें व्याघात नहीं पहुँचाता। यदि जल्दी कानकी सूजन को दूर किया जाय एवं देहको दोषशून्य किया जाय तब आप ही कान स्वस्थ हो जाता है।

अच्छी तरह चिकित्सा न होनेपर कानकी सूजन बहुत अवस्थाओं पुराने रोगमें बदल जाती है। सर्वदैहिक चिकित्साके साथ-साथ स्थानीय चिकित्सा करनेसे रोग धीरे-धीरे आरोग्य हो जाता है।:

पथ्यमें यथेष्ट मात्रामें देशी फल, सलाद, सिझायी तरकारीका सूप खाना उचित है। प्रतिदिन कुछ लहसुन खा सकनेसे बड़ा लाभ होता है। चीनीके बदले मधु व तरल गुड़ ग्रहण करना चाहिये।

कान-वेदना

[Earache]

कानकी वेदना साधारणतः कानकी सूजनसे उत्पन्न होती है एवं कानकी सूजनकी चिकित्सा करने से ही यह साधारणतः आरोग्य लाभ करती है।

नाकसे रक्तस्राव

[Bleeding from the nose]

यह एक अत्यन्त साधारण रोग है। जिस किसी उम्रके लोगोंको यह हो सकता है। किन्तु साधारणतः अल्प वयस व बुढ़ापेमें ही यह अधिकतर होता है।

साधारणतः नाकके आधा इञ्च भीतरकी ओरकी दीवालसे रक्त-स्राव होता है। विभिन्न कारणोंसे नाकसे रक्तस्राव हो सकता है। नाकमें चोट, सूखा घाव, कुकुरखाँसी नासिकाके भीतर मांसकी वृद्धि (polypus), नासिकाकी सूजन एवं ब्लड प्रेसरसे भी साधारणतः नाकसे रक्तस्राव होता है। शरीरकी परिपूर्ण अवस्थामें जिस तरह रक्तस्राव होता है, उसी तरह रक्तकी अत्यन्त दुर्बल अवस्थामें नाकसे रक्तस्राव होते देखा जाता है, किन्तु बहुत-सी अवस्थाओंमें ऐसे किसी कारणको छोड़कर भी नाकसे रक्तस्राव होता हैं। इसलिये साधारण अवस्थामें नाकसे रक्तस्राव होने पर कोई चिकित्सा करना आवश्यक नहीं है। बहुत अवस्थाओंमें विशेष कुछ करना उचित नहीं है। किन्तु यदि बार-बार रक्तस्राव हो अथवा अधिक परिमाणमें हो अथवा किसी रोगके कारण हो तो अविलम्ब यथोचित व्यवस्था करना आवश्यक हैं।

नाकसे रक्तस्राव बन्द करनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय ही रोगीके सिरको धोकर बर्फ जल या खूब शीतल जलमें कपड़ा भिंगाकर, उस कपड़ेको मुँह, गला एवं उर्ध्व मेरुदण्डपर प्रयोग करना चाहिए। उस समय पैर ठण्ढा रहनेपर, दोनों पैरोंको शीघ्र गरम कर लेना उचित है। इसके लिये रोगीको छः मिनटके लिये उष्ण-पादस्नान दिया जा सकता है अथवा गरम पानीकी थैलीके द्वारा पैर गरम कर लिया जाय। पैरपर उत्ताप प्रयोग करनेके समय गला व उर्ध्व मेरुदण्डपर ठण्ढे जलको पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। दोनों पैर गरम कर अविलम्ब रोगीको एक घण्टेके लिये एक पैरकी पट्टी देना उचित है। पैरमें पट्टी देनेसे रक्तकी गति

परिवर्तित होकर पैरमें आती है एवं आप ही नाकसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

रोगीके दोनों हाथोंपर बर्फ रखनेसे अथवा रोगीके दोनों हाथ बर्फ जलमें डुबाकर रखने से भी नाकका रक्तस्राव अति सहज ही बन्द हो जाता है। जब और सब चेष्टायें व्यर्थ होती हैं तब भी इससे आश्चर्यजनक फल होता है। यदि सहज ही रक्त बन्द न हो तब दोनों हाथ माथेके ऊपर रखना उचित है।

नाकसे रक्तस्राव होते ही रोगीके कपड़े खोलकर बिछावनपर सुला देना उचित है। उस अवस्थामें उसे अविलम्ब शवासन ग्रहण करना कर्तव्य है एवं उसके बाद भी शान्त भावसे पड़े रहना आवश्यक है।

यह रोग रहनेपर कभी भी बिना कारण नाक छूना उचित नहीं है। किसी- किसी समय जब शरीर में ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है, तब नाकसे रक्तस्राव होने लगता है। यदि प्रकृति उस समय नाककी कोई शिरा तोड़कर रक्त बाहर कर देती तो हो सकता था कि वह मस्तिष्ककी कोई शिरा छिन्न कर संन्यास रोग उत्पन्न कर देती (Alfred Martinet, M. D—Clinical Therapeutics, PP 847–48)। इस कारण उस तरहके रक्तस्रावमें उपकार ही होता है। इस अवस्था में कभी भी रक्तस्राव में बाधा देना उचित नहीं है।

यदि किसी कारणके बिना अथवा अत्यधिक मात्रामें नाकसे रक्तस्राव हो, तो तर्जनी व वृद्धा अंगुली द्वारा नाकके समस्त कोमल अंशको दो-तीन मिनटके लिये जोरसे चापकर रखनेसे प्रायः ही रक्तस्राव बन्द होता है (Albert P. Selter, M. D., F. A. C. S.—Diseases of the Eye, Ear, Nose and Throat, P. 202, New York, 1950)। अथवा जिस नाकसे रक्तस्राव हो उस नाकको वृद्धा अंगुलीके द्वारा चापकर रखनेसे भी काम हो सकता है।

रोगीको बीच–बीचमें उपवास करना कर्तव्य है एवं प्रधानतः फल, सलाद, दही, कच्ची, हरी शाक-सब्जीका रस, सिझायी तरकारी व

तरकारीका सूप खाकर रहना उचित है। चीनीके बदलेमें रोगीको तरल गुड़ व मधु खाना चाहिये। प्रतिदिन दूब घासका थोड़ा-सा रस मधुके साथ लेना उचित है रोगीको ढेंकी छाँटा चावलका माड़ सहित भात एवं चोकर समेत आटेकी रोटी ग्रहण करना कर्तव्य है। चाय, काफी, तम्बाकू, अत्यधिक मसाले, विशेषतः गरममसाले, मूँगी व तली हुई चीजें छोड़ देनी चाहिये।

अत्यधिक नासास्राव होनेसे लीवरके स्वास्थ्यकी ओर यथेष्ट ध्यान रखना चाहिये विभिन्न खाद्यसे लीवर विटामिन 'के' संग्रह कर लीवरमें रखता है। जितने दिन लीवर स्वस्थ रहता है एवं प्रयोजनानुसार विटामिन 'के' देहमें प्रदान करता रहता है। उतने दिनतक शरीरके स्थानसे व्यर्थ रक्तस्रावका भय नहीं रह जाता (Boris Sokoloff, M. D —The Civilised Diseases : You can cure them. P. 60 London)।

इसके अलावे रक्तस्राव युक्त रोगोंमें यथेष्ट मात्रामें 'के' विटामिन प्रधान खाद्य ग्रहण करना कर्तव्य है।

विटामिन 'के'का प्रधान उद्गम है। पालकका शाक, बंधगोबी, गाजरकी शाक, टमाटर, विभिन्न हरे शाक, अण्डेका पीला हिस्सा लीवर और दाल। यह विटामिन केवल चर्बी जातीय पदार्थमें घुलनशील है। इसलिये जिस किसी तरहका थोड़ा तेल इन सब खाद्योंके भीतर रखना उचित है।

७० टान्सिलकी सूजन

[Tonsilitis]

तालूकी जड़में जो दो ग्रन्थियां (tonsils) हैं, उनकी सूजनको ही गलग्रन्थिकी सूजन कहते हैं। ये विभिन्न श्रेणीकी होती हैं। किसी किसी समय ग्रन्थिकी तन्तुमें ही सूज जाती है। कभी-कभी सूजन उसके चारों ओरके तन्तुओंतक सीमित रहती है। किसी-किसी क्षेत्रमें

यह रोग गलग्रन्थिके बाहर फोड़ाकी तरह उत्पन्न होता है। कभी-कभी गलग्रन्थिके चर्ममें घाव हो जाता है। फिर यह नये व पुराने रोगोंके आकारमें प्रगट होता है।

पाँच-छः वर्ष नीचेके बच्चोंमें एवं प्रौढ़ावस्थाके बाद यह रोग कदाचित कभी-कभी दीख पड़ता है। साधारणतः ज्वर व गलेकी वेदना लेकर यही रोग प्रकाश पाता है। ज्वर साधारणतः १०३° से १०५° तक होता है। साथ-साथ शिर दर्द पीठ व अङ्गप्रत्यंगमें वेदना आरम्भ होती है। गलेकी वेदना कानतक विस्तृत हो जाती है एवं खाद्य ग्रहणकी चेष्टा करनेपर वेदना बढ़ती है, साथ-साथ जिह्वा लेपावृत एवं श्वास-प्रश्वास दुर्गन्धयुक्त हो जाती है एवं गलेकी आवाज बिगड़ जाती है। इस समय टान्सिल फूल उठता है। रोगीको साधारणतः कोष्ठबद्धता रहती है एवं मूत्र थोड़ा व गाढ़ा रंगका होता है। साधारणतः ठंडा लगनेके कारण यह रोग होता है किन्तु ठंडा लगनेसे ही यह रोग होता है ऐसा नहीं। जिनका साधारण स्वास्थ्य खराब होता है उन्हींको साधारणतः यह रोग होता है। इस कारण जो दूषित गैसयुक्त घरोंमें रहते हैं, अत्यधिक परिश्रम करते हैं, वातव्याधि भोग रहे हैं एवं कोष्ठ-बद्धतासे पीड़ित हैं उन्हें साधारणतः यह रोग हो जाता है।

दोनों टान्सिलके बड़े होते ही, उन्हें काटकर रास्तेमें फेंक दिया जाता है। किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है जो टान्सिल काटकर फेंक देनेसे ही सर्दी खाँसी कम हो जाती है अथवा कमजोर हो जाती है। वास्तवमें देखा गया है कि जिन सब बच्चोंके टान्सिलकी आपरेशन हुआ है, उन्हें न्यूमोनिया बल्कि बेशी होता है (Hobart A. Reimann, M. D.—Treatment General Practice, Vol. 1, P. 32, Philadelphia, 1948)। किसी यंत्रको भगवानने बिना कारण सृष्टि नहीं किया है। टान्सिल दो पहरेदारोंकी तरह मुँहके पीछे गलेके दोनों पार्श्वमें अवस्थित है। दोनों टान्सिलोंका काम ही है मुंह और नाकके भीतरसे शरीरमें जो रोग-

जीवाणु प्रवेश करते हैं उन्हें बाधा देना। टान्सिलके चारों ओर जो श्लैष्मिक आवरण रहता है, उसमें विभिन्न रोग-जीवाणु अटक जाते हैं एवं इस यंत्रके भीतर जो असंख्य श्वेतकणिकायें रहती हैं, वे जीवाणुओंको ध्वंस कर देती हैं। इन दोनोंको काटकर फेंक देनेसे देहके दरवाजेपर जो प्रहरी, प्रकृतिने बैठाकर रक्खा है, उन्हें विदा कर दिया जाता है और तब बाहरके जीवाणु अबाध गतिसे शरीरके भीतर प्रवेश करते हैं।

किन्तु वास्तवमें दोनों टान्सिल देहके ही विशेष अंश हैं। दूषित गैसयुक्त घरोंमें रहने आदिके कारणसे जब देहका रक्त ही विषाक्त हो उठता है एवं उसके द्वारा टान्सिल आक्रान्त होता है तभी टान्सिलकी सूजन हो जाती है। इस कारण दोनों टान्सिलोंको काटकर फेंक देना ही टान्सिलकी कोई चिकित्सा नहीं है। उससे देहकी दोषयुक्त अवस्था (toxaemia), जो रोगका मूल कारण है, वह नहीं जाती, वह देहके भीतर रह जाती है एवं बादमें अन्य दुर्बल अंगोंपर आक्रमण करती है। इसलिये शरीरको दोषयुक्त करनेके साथ-साथ टान्सिलकी ओर दृष्टि रखना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

इस रोगका प्रकाश होते ही उबाले हुए गुनगुने नीम पानीसे रोगीको एक डूस देना उचित है एवं जबतक ज्वर नहीं चला जाय तबतक प्रतिदिन रोगीका डूस देना कर्तव्य है।

रोगीका शिर दिनमें तीन बार, सुबह, दोपहर व सोनेके पहले धुलवाकर सारे शरीरको गीले गमछेसे पोंछ देना उचित है। जबतक बुखार रहे रोगीके गलेमें दिनमें तिन बार ताप-बहुल गरम ठंढा प्रयोग करना चाहिये एवं मध्यवर्ती समयमें १५ से ३० मिनटके लिये बार-बार ढकी हुई पट्टीका प्रयोग करना उचित है। ज्वर कितना ही अधिक रहे उतना ही कम समयके लिये पट्टीका प्रयोग करना चाहिये। पट्टी अत्यधिक गरम होते ही उसे बदल देना कर्तव्य है। ज्वर कम होनेपर पट्टी थोड़े अधिक समयके लिये रखी जा सकती है। पट्टी सदा ही आरामप्रद होनी चाहिये। टान्सिल और स्वरयंत्रकी सूजनमें गलेकी पट्टी अत्यन्त फलप्रद है

(American Medical Association — Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation, P. 176. Philadelphia, 1950)। ज्वर मिटनेके बाद पट्टी कभी एक या डेढ़ घण्टेसे कम समयके लिये नहीं होना चाहिये।

इच्छा करनेपर रोगीको गरम-ठंढो कुल्ली भी दी जाती है। किन्तु रोग कठिन होनेपर रोगी के लिये कुल्ली करना असम्भव हो जाता है।

रोगीको दिनमें दो बार एक घंटेके लिये पैरकी पट्टी देना उचित है। उसे खोलते ही उसका सारा शरीर गीले गमछे द्वारा पोंछ देना आवश्यक है।

यदि रोगीको सर्दी रहे तब दिनमें कमसे कम एक बार उसे छातीकी लपेट देनी चाहिये।

रोग प्रगट होते ही, बिछावनपर रहकर रोगीको परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना कर्तव्य है। इस समय नीबूके जलके साथ प्रचुर जल पान करना उचित है। ज्वर व सूजनकी तीव्र अवस्था समाप्त हो जानेतक रोगीको कभी कोई सख्त खाद्य खाने देना उचित नहीं है। उसका प्रधान पथ्य ही होगा फलोंका रस, मधु-जल व तरकारीका सूप।

रोग पुराना हो जानेपर पुनः पुनः डूस, पेटकी पट्टी, स्टीमबाथ, भींगी चादरकी लपेट, गलेमें टान्सिलके ऊपर बाहरसे गरम-ठंढा एवं भीतरसे अँगुली द्वारा टान्सिलके ऊपर मर्दन करना कर्तव्य है। रोगीका प्रधान पथ्य ही होना चाहिये फल, सलाद, तरकारीका सूप, सिझायी तरकारी, चीनीके बदले मधु, चोकर समेत आँटेकी रोटी एवं मांडसमेत ढेंकी छाँटा चावलका भात।

भात व रोटी कम खाकर अधिकतर फल व तरकारी ग्रहण करना कर्तव्य है।

गला बैठाना

[Hoarseness]

यह एक साधारण रोग है (common disease)। इस रोगमें गलेकी आवाज अस्फुट व कर्कश हो जाती है। रोगीका गला कुटकुटाता है और शुष्क हो जाता है। समय-समय रोगीको सूखी खांसी रहती है एवं कभी-कभी उसे श्वासकष्ट भी होता है।

देहमें संचित विष स्रोतके आक्रमनके फलस्वरूप गलेके यंत्र दुर्बल हो जानेपर, ठंढा लगनेपर, जोरसे बोलनेपर, गाने व चिल्लाने आदि कारणोंसे गला बैठ जाता है।

पहली अवस्थामें डेढ़ घण्टेके लिये एक गलेकी पट्टी देनेसे ही यह रोग छूमन्तर हो जाता है। यदि इसके साथ रोगीको सर्दी या छातीमें अन्य किसी तरहका दोष रहे तब गलेकी पट्टीके साथ अवश्य ही छातीकी लपेट डेढ़ घण्टेके लिये प्रयोग करना कर्तव्य है। किन्तु यदि उससे लाभ न हो तो पेडू साफ करके छाती व गलेकी पट्टी देना आवश्यक है एवं उसके प्रयोगके पूर्व गलेमें तीन बार गरम-ठंढा प्रयोग करना कर्तव्य है। पट्टी खोलनेके बाद खूब ठंढे पानी द्वारा व छाती पोंछकर तभी रगड़कर लाल व गरम कर लेना आवश्यक है। यदि बीच-बीचमें गला बैठ जाय, तब समझना होगा कि रोगका मूल कारण सारे शरीरमें फैला हुआ है। इसलिये वाष्प-स्नान या उष्णपाद-स्नान प्रभृति को लेकर देहको दोषमुक्त करना कर्तव्य है। ऐसा कर लेनेपर अति सहज ही गला बैठना आरोग्य होता है एवं फिर सहज ही प्रगठ नहीं होता। पथ्य टान्सिलकी सूजन जैसा।

गलनालीकी सूजन

(Pharyngitis)

मुख गह्वरके शेष भागमें प्रायः ५ इञ्च लम्बा माँसपेशी निर्मित

स्थानोंको गलनाली (pharynx) कहते हैं। उस स्थानकी सूजनका नाम है गलनालीकी सूजन या फेरिंजाईटिस

इस रोगकी प्रथम अवस्थामें गलेके भीतर सुरसुरी व शुष्कताका बोध होता है एवं रोगी पुनः पुनः कफ निकालनेकी चेष्टा करता है। उसके बाद निकलनेके समय दर्द होता है एवं शेषमें गलनालीके साथ-साथ तालू मूलतक फूल जाता है। कभी-कभी गलेके बीचकी श्लेष्मिक झिल्लीमें घाव उत्पन्न होता है। साधारणतः शीत व अल्प ज्वरके साथ यह रोग आरम्भ होता है। यदि गलग्रन्थिमें सूजन हो जाती है तब ज्वर अत्यन्त बढ़ जाता है। समय-समय सूजन कानकी ओर होती है एवं अल्पाधिक बधिरता उत्पन्न करती है। इस रोगका नया आक्रमण कुछ ही दिनोंके लिये होता है; किन्तु सुचिकित्सा न होनेपर यह प्रायः ही पुराने रोगमें बदल जाती है; एवं बार-बार लौट आती है।

साधारणतः पुरानी सर्दीसे पाकस्थलीके रोग, वातव्याधि अथवा लीवरके रोगसे जो भोगते हैं, अत्यधिक धूम्रपान करते हैं, धूलसे भरे जगहोंमें रहते हैं, अथवा घरमें बैठे रहना ही जिनका अभ्यास है, उन्हें ही यह रोग होता है। अत्यधिक उच्चस्वरमें भाषण देना व गाना अथवा श्वासके साथ विषाक्त गैस लेने इत्यादि कारणोंसे ही यह रोग उत्पन्न हो जाता है। किन्तु वास्तवमें अन्य सभी सूजन जिस तरह देह-संचित विभिन्न विजातीय व दूषित पदार्थोंके आक्रमणसे उत्पन्न होती है, गलनालीको प्रदाह उसी प्रकार उत्पन्न होती है।

इसलिये देहको विषमुक्त करनेके साथ-साथ गलेको स्वस्थ कर लेनेकी चेष्टा ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। टान्सिलकी सूजनकी जो चिकित्सा है, इस रोगकी चिकित्सा भी वही है।

स्वरयंत्रकी सूजन

[Laryngitis]

हमारी गलनाली (pharynx) के सामनेकी ओर अवस्थित वायु-

नालीके अग्रभागको स्वरयंत्र कहते हैं। यह शब्द उत्पन्न करनेका दैहिक यंत्र है। इसका भीतरी भाग श्लैष्मिक झिल्ली द्वारा बना हुआ है। इस श्लैष्मिक झिल्लीकी सूजन का नाम ही है स्वरयंत्रकी सूजन (inflammation of the larynx)।

ठंडा लगना, जोरकी हवा लगना, नम स्थानमें बास, वाकूयंत्रका असंगत व्यवहार, अत्यधिक संगीत अथवा चित्कार, मद्यपान, अस्वास्थ्यकर खाद्याहार, धूल या विषाक्त वाष्प श्वासके साथ लेने आदि कारणोंसे स्वरयन्त्रकी सूजन उत्पन्न हो जाती है। किन्तु इनमेंसे कोई भी मूल कारण नहीं है—मात्र उत्तेजक कारण हैं, जिन सब कारणोंसे अन्य समस्त रोग होते हैं, वही इस रोगका भी कारण है। इसलिये जिसकी हाजमाशक्ति कमजोर है, श्वास प्रश्वास अथवा मूत्रयंत्र दुर्बल है, जिनका पेट खराब है जिन्हें इन्फ्लुएंजा, छोटी माता, कुकुरखांसी व वसन्त प्रभृति रोग हुए हैं विष परिभ्रमण करता है उनके द्वारा स्वरयंत्र जब आक्रांत होता है तब यह रोग हो जाता है। सर्वदा घरके भीतर रहना, वायु चलाचलहीन धूलिपूर्ण स्थानमें बास, सर्वदा गरम कपड़े-लत्ते पहनकर रहनेका अभ्यास, गुलबंद प्रभृति द्वारा सर्वदा गलेको बाँधे रखना एवं ठंडा लगनेके भयसे सर्वदा ताजी हवासे बचकर चलना प्रभृति कारणोंसे देहके भीतर इस रोगकी अनुकुल अवस्थाकी सृष्टि होती है।

टान्सिलकी सूजनकी जो चिकित्सा है, स्वरयंत्रकी सूजनकी भी वही चिकित्सा है।

———

एकादश अध्याय

चक्षु-रोग

आंखकी बिलनी

[Styes]

पलकोंके किनारे जो छोटा व्रण होता है, उसे ही आँखकी बिलोनी कहते हैं। पहले पलकोंके ऊपर यह एक लाल चिन्हकी तरह प्रगट होता है, उसके बाद यह दर्द करने लगती है। बिलनी जरा खराब होनेपर समस्त पलकें फूल उठती हैं। जब यह फूट जाती है, तब वेदना कम हो जाती है।

बिलनी प्रगट होते ही उसके ऊपर पांच मिनटके लिये गरम सेंक देकर उसके ऊपर बार-बार ढकी पट्टी रखना कर्तव्य है। और सभी व्रण चिकित्साके समान हैं।

यदि बार-बार केवल बिलनी हो तब General health must receive attention—साधारण स्वास्थ्यकी ओर दृष्टि देना आवश्यक है (Sir Stewart Duke-Elder, Ph.D., D.Sc., M.D., F.R.C.S.—Parson's Diseases of the Eye, p. 523, London, 1954)।

आँख उठना

[Conjunctivitis]

नेत्र व पलकोंकी आभ्यन्तरिक झिल्लीकी सूजनका साधारण नाम आंख उठना है। यूरोप, अमेरिका, मध्यपूर्व व चीन प्रभृति देशोंमें जो सब चक्षु-रोग देखा जाता है, यही उसका एक प्रधान अंश धारण किये रहता है (Conrad Berens, M.D., F.R.C.S.—The Eye and Its Diseases, p. 363, Philadelphia, 1950)।

ठंढा लगना, उत्तेजक धुआँ अथवा गैस आँखमें लगना, किसी उत्तेजक वस्तुका आँखोंमें प्रवेश, अत्यधिक आँख का व्यवहार एवं किसी सूक्ष्म कार्यमें अत्यधिक लगे रहना, प्रभृति कारणोंसे यह रोग उत्पन्न हो सकता है। किन्तु ये समस्त ही उत्तेजक कारण हैं। विभिन्न जातिके रोग-जीवाणुओंको इस रोगका कारण कहा जाता है। इसलिये अन्य रोगीके संसर्गसे बहुत अवस्थाओंमें यह रोग हो जाता है। कन्तु उन सब जीवाणुओंके आंखके भीतर वृद्धि करनेकी अनुकूल अवस्था रहनेपर ही तब वे रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिये आँख उठते ही समझ लेना चाहिये कि आंखों पर सिर्फ जीवाणुओंका हमला हुआ है, ऐसा ही नहीं, जीवाणुओंके आक्रमणके पीछे देहकी एक दोषयुक्त अवस्था वर्तमान रही है।

आँख उठनेके रोगको जितना सहज समझा जाता है उतना सहज वह नहीं है। बहुधा इस रोगसे मनुष्य अन्धा हो जाता है एवं किसी-किसी समय रोगका कठिन आक्रमण होनेपर चिकित्साके लिये मात्र कई घंटोंका समय मिलता है। इसलिये रोग प्रगट होते ही चिकित्सा आरम्भ करना उचित है।

आँख उठते ही आँखके ऊपर ठंढा देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। जितनी देर ठंढा अच्छा लगे उतनी देरतक ही ठंढा देना उचित है। एक छोटी तौलिया या चिथड़ेको बरफ जल या मिट्टीके कूंडेके ठंढे जलमें डुबाकर बार-बार बदलकर जलपट्टी देना उचित है। अथवा साफ जगहसे ली गई मिट्टी २० मिनटके लिये बन्द आँखोंके ऊपर प्रयोग किया जा सकता है। मिट्टीके साथ आँखोंसे यथेष्ट क्लेद, जीवाणु व विष निकल जाता है। किन्तु व्यवहारके पहले उसे मिट्टीकी हाँड़ीमें एक घंटा उबालकर ठंढा कर लेना उचित है। इस तरह १२ से २४ घन्टोंतक आँखोंपर ठंढा देना कर्तव्य है। इसके बाद आँखपर गरम देना उचित है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, p; 473, Philadelphia, 1918)

इसके लिये नम गर्मी (moist heat) व्यवहार करना कर्तव्य है। शुष्क उत्तापकी अपेक्षा नम उत्ताप अधिक फलप्रद है (American Medical Association—Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation p. 266, Philadelphia, 1950)। इस समय प्रत्येक दो-तीन घंटे के अन्तर पर आंखसे कपाल पर्यन्त समस्त स्थानके ऊपर १० मिनट से १५ मिनटतक गरम सेंक देकर बचे हुए समयमें जलपट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। आँखके ऊपर खुब बढ़ाकर सेंक देना कभी भी उचित नहीं है। तीन अथवा चार वर्ग इञ्च परिमाणमें पाँच-छः तह पतला फलानेल खूब गरम जलमें डुबाकर बन्द आँखोंके ऊपर प्रयोग करना कर्तव्य है एवं प्रत्येक दो-तीन मिनटके अन्तरसे बदल देना चाहिये। प्रथम अवस्थामें प्रत्येक दो-तीन घन्टेके अन्तरसे सेंक देना उचित है। जलपट्टी भी खूब शीतल जलमें भिगाकर प्रत्येक २ से १० मिनटके अन्तरसे बदल देना कर्तव्य है। आक्रमण अधिक होने पर बरफ-जलमें भींगोए पट्टोका प्रयोग करना उचित नहीं है। सूजन अधिक रहनेतक जलपट्टी खूब जल्दी-जल्दी बदलना चाहिये एवं वेदना जितनी ही कम होगी उतने वेशी समयके बाद-बाद पट्टी परिवर्तन कर देना चाहिये। जलपट्टी भौओंका अतिक्रमण न करेगी। आँखोंके ऊपर कभी पट्टी अधिक समयके लिये प्रयोग करना उचित नहीं है। आँखोंको इस रोगमें कभी बैन्डेज नहीं करना चाहिये। कारण, उससे आँखोंका स्राव बन्द हो जाता है (Sir Stewart Duke-Elder, Ph.D. M.D., F.R.C.S.—Parson's Diseases of the Eye, p. 134, London, 1954) एवं उसके फलसे आँखोंकी गुरुतर क्षति हो सकती है।

रोगीको पहलेसे ही कोष्ठ साफ रखना कर्तव्य है। इसलिये रोग प्रकाश होते ही, उबाले हुए नीम पानीसे डूस देकर कोष्ठ साफ कर देना चाहिये एवं प्रतिदिन इसी तरहसे कोष्ठ साफ कर लेना कर्तव्य है। रोगीका माथा दिनमें तीन बार धुलाकर सारा शरीर गीली तौलियासे;

पोंछ देना कर्तव्य है। यदि रोग प्रबल होकर प्रगट हो तो तब प्रतिदिन दो बार दोनों पावोंमें पैरकी पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। इसे खोलते ही शरीर पोंछ देना चाहिये।

प्रतिदिन दस-बारह मिनटके लिये गरम जलमें फुटबाथ देकर ३० मिनटके लिये घर्षण-स्नानका प्रयोग कर सकनेसे रोगीका बड़ा उपकार होता है। फूटबाथ देनेके समय माथा व आँख एक मोटी भींगी तौलिया द्वारा ढके रहना कर्तव्य है एवं गरम हो उठते ही बदल देना चाहिये। इस तरह रोगीको वाष्पस्नान भी प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु ज्वर रहनेपर तापजनक स्नान प्रयोग नहीं करके दैनिक घर्षण-स्नान प्रयोग करना कर्तव्य है।

आंख उठनेपर रोगीको कभी अन्धेरे घरमें बन्द कर रखना उचित नहीं। कारण, जो सब जीवाणु चक्षुरोगमें देखे जाते हैं, वे प्रकाशमें बढ़ नहीं पाते हैं। इसके अलावे प्रकाश ही चक्षुरोग आरोग्य करनेमें विशेष रूपसे सहायता करता है (Moore's Family Medicine & Hygiene for India, pp. 405—9, Delhi, 1936)। इसलिये, प्रकाश यदि अधिक प्रखर न हो तो, जब ही रोग सूक्ष्म हो तभी उसे घरके बाहर जाने देना उचित है। किन्तु सतर्कता रखनी होगी जिससे धूल व धुआं उसकी आंखोंमें प्रवेश न कर सके। रातको सोनेपर आंख यदि सट जाय तब उसे जोर करके खोलना कभी उचित नहीं है। जबतक आंख अपने आप नहीं खुल जाय तब तक लगातार शीतल जल द्वारा आंखोंको भिगाना कर्तव्य है। किन्तु सोनेके पहले आंखोंपर मक्खन अथवा दूधकी छाली लगाकर रखनेपर आंखें कभी भी सट नहीं जाती है। प्रत्येक दिन दो-तीन बार रोगीकी आंखें खूब अच्छी तरह धो देना कर्तव्य है। आंखें साफ नहीं रहनेसे रोग आरोग्य होनेमें बहुत देर होती है। किन्तु उस समयको छोड़कर दूसरे समय कभी भी आंखों-पर हाथ नहीं लगाना चाहिये। रोगीकी तौलिया आदि दूसरे किसीको व्यवहार नहीं करना चाहिये।

रोगीके पथ्यपर भी विशेष रूपसे ध्यान देना उचित है। भूख नहीं लगनेतक रोगकी प्रथम अवस्थामें रोगीको उपवास करना वांछनीय है। इससे रोगका मेरुदंड ही टूट जाता है। उसके बाद रोगीको फलोंका रस, डावका पानी, मट्ठा, विभिन्न देशी फल, एवं १२ घंटा भिगोये किशमिशका पानी खाकर रहना उचित है। उसके बाद रोग कम हो जानेपर उबाली तरकारी, तरकारीका सूप एवं चोकर समेत आँटेकी रोटी खाना कर्तव्य है। सर्वदा ही हरी शाक-सब्जीपर जोर देना उचित है। ज्वर रहनेपर ज्वरका पथ्य ग्रहण करना कर्तव्य है। रोगीको सर्वदा ही नीबूके रसके साथ प्रचुर जल पान करना चाहिये।

आंखसे पानी गिरना

[Epiphora]

आँखके साथ नाकके मध्यभागका संयोग है। उस रास्तेसे आँखसे जल नाकके भीतर चला आता है। इस कारण अधिक रोनेपर लोगोंकी आँखों व नाकका पानी एक हो जाता है। जब किसी कारणसे वह रास्ता बन्द हो जाता है एवं आँखका पानी नीचे नाकके भीतर नहीं उतर सकता तब आँखके ऊपरसे बाहर होकर गालके ऊपरसे नीचे गिर पड़ता है।

कभी-कभी आँखमें किसी प्रकारका उत्तेजक पदार्थ पड़ जानेके कारण आँखमें अधिक जल उत्पन्न होता है एवं समय-समयपर वह बाहर हो आता है।

आँखोंपर गरम-ठंढा देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। प्रथम बंद आँखोंपर दो मिनट गरम सेंक देकर उसके बाद दोनों आँखें अच्छी तरह ठंढी कर लेनी चाहिये एवं एक साथमें इसे तीन बार करना उचित है। गरम-ठंढा गरमसे आरम्भ कर ठंढेमें शेष करना चाहिये। इस तरह कई एक दिन गरम-ठंढा लेनेसे यह दुखदायी रोग गायब हो जाता है।

आँखका घाव

[Cornial ulcer]

आँखोंके जिस स्वच्छ आवरणसे होकर प्रकाश भीतर प्रवेश करता है उसमें समय-समय घाव उत्पन्न हो जाता है। यह आवरण अत्यन्त पतली झिल्ली द्वारा निर्मित है। यदि समयानुसार इसकी चिकित्सा नहीं हो तो बड़ी विपत्ति उपस्थित हो सकती हैं। घाव यदि अधिक दिनों-तक रहे तो वह आँखपर एक घावका दाग छोड़ जाता है एवं दृष्टिमें बाधा उत्पन्न होती है। शरीर यदि अत्यन्त खराब हो तो यह आँखके भीतर छेद कर दे सकता है। इससे आँख कभी-कभी नष्ट हो जाती है।

इसलिये आँखमें किसी तरहका घाव होनेपर उसे कभी तुच्छ नहीं समझना चाहिये। साधारण: चोट लगनेसे घाव हो जाता है। चोट लगते ही साफ तौलिया ठंडे जलमें भिगोकर आँखपर प्रयोग करना आवश्यक है। आँखमें दर्द रहनेपर बार-बार तौलिया भिगोकर प्रयोग करना कर्तव्य है। यह आवश्यकतानुसार दिनमें तीन बार दिया जा सकता है। साधारण: आँखका घाव आरोग्य करनेके लिये यही यथेष्ट है। किन्तु यदि इससे आरोग्य न हो तो दूसरे दिन आँखोंपर गरम-ठंडा देना उचित है एवं नीम पानीसे डूस लेकर पेटको साफ कर लेना चाहिये। घाव रहनेतक दिनमें दो बार १८ से ३० मिनटतक लेना [illegible] है एवं बार-बार साफ भींगी तौलिया आँखोपर रखना कर्तव्य है। [illegible]भी आवस्थाओंमें आँखोंको साफ रखना चाहिये। इसलिये आँखोंके स्रावको सर्वदा ही धोकर साफ कर लेना आवश्यक है। घाव यदि सहजमें आरोग्य न हो तो सर्वदैहिक चिकित्सा करनी चाहिये। इसलिये आँखोंके ऊपर भिगोया गमछा रखकर अविलम्ब १५ से २० मिनटके लिये एक स्टीमबाथ देना आवश्यक है। रोगीको कई दिनों-तक फल व सलाद खाकर रहना कर्तव्य हैं।

द्वादश अध्याय

रक्त परिभ्रमण सम्बन्धी यन्त्रोंके रोग

संन्यास

[Apoplexy]

[१]

मस्तिष्ककी किसी दुर्बल नाड़ीके हठात् छिन्न होकर उसके भीतर रक्तस्राव होनेसे उसको संन्यास रोग कहा जाता है। साधारणतः ब्लड प्रेसरसे ऐसा होता है। किसी-किसी समय रक्तका कोई एक चक्का (clot) दिमागकी किसी खून बहानेवाली नाड़ीमें अटककर खूनके आवागमनमें बाधा उत्पन्न करता है और तब उसीसे यह रोग होता है। इसको थ्रोमबॉसिस (Thrombosis) कहा जाता है। मस्तिष्कके भीतर रक्तस्रावके फलस्वरूप जितना संन्यासका आक्रमण होता है, उससे अधिक होता है खूनका चक्का अटक जानेपर। ऐसे दोनों श्रेणीके संन्यासके भीतर यही अन्तर होता है कि थ्रोमबॉसिसमें रोगी प्रायः ही आरोग्य लाभ कर लेता है और धमनीके फट जानेके कारण जो संन्यास होता है, वह आरम्भ होनेके थोड़ा समय बाद प्रायः हमेशा ही रोगी प्राण त्याग करता है (Frederick W. Price—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1630, London, 1947)। रोगी स्वाभाविक अवस्थामें चलते फिरते घुमते समय हठात् गिर जाता है और सम्पूर्ण या आंशिक भावसे बेहोश हो जाता है।

रोग प्रकाश होनेके पूर्व साधारणतः रोगीके शिरमें भार बोध, माथा घरना, माथेका घूमना—विशेषतः शिर हिलाने ऐसा मालूम होना, कानोंमें आवाज, कमी-कमी सामयिक बहरापन, दृष्टिहीनता या एक वस्तुको दो

देखना, नाकसे लगातार खुन निकलना, वमनोद्वेग, अंग-प्रत्यंगकी अचलता अधम और दुर्बल नाड़ी एवं हठात् क्रोध आदि लक्षण प्रकाश होते हैं। साधारणतः तीन तरहसे इस रोगका आक्रमण होता है। कभी-कभी हठात् बदहवास होकर गिर जाता है, हिल-डोल नहीं सकता, उसका मुँह लाल हो उठता है, नाकसे आवाज होने लगती है और गंभीर निद्राके लक्षण आ जाते हैं। रोगीकी आंखकी तारिकायें फैल जाती हैं अथवा एक फैलती और दूसरी सिकुड़ जाती है। नाड़ी पूर्ण और कोमल हो जाती है। कभी-कभी गापेक्ष प्रकट होता है और मूंहसे फेन निकलने लगता है। रोगी बदहोशीमें ही मल और मूत्र त्याग करता है। सांस लेने छोड़नेके समय रोगीके गाल एक बार फूलते और दूसरी बार पिचक जाते हैं। अथवा रोगी दर्दका अनुभव करके सहसा मूर्च्छित हो पड़ता है। पीलापन, वमनोद्वेग, जब-तक वमन, माथा धरना, अचैतन्य अवस्था अथवा थोड़ा-थोड़ा होश आदि लक्षण प्रकाश पाते हैं और रोगी क्रमशः अचैतन्य और जड़वत् होने लगता है।

किसी-किसी रोगीके एक तरफके अंगमें पक्षाघात होता है। रोगी हिल डुल तो नहीं सकता है पर उसे ज्ञान रहता है। साधारणतः रात्रिमें यह आक्रमण होता है और रोगी नींदसे जगकर देखता है कि उसके शरीरके एक अंगमें पक्षाघात हो गया है। रोगीकी बकनकी इच्छा रहती है और कभी-कभी नाकसे रक्तस्राव होने लगता है। दिमागकी रक्त-वाहिनी नलिकामें सहसा खूनका चक्का अटक जानेसे स्वस्थ हालतमें ही ऐसा हो जाता है। दिमागके जिस ओर खून संचालन बन्द हो जाता है उसकी उलटी तरफ लकवा होता है।

यदि आक्रमण मारात्मक न हो तो कुछ घंटोंके बाद ही चेतना लौट आती है। इस समय कुछ ज्वर होता है और शरीरके एक ओरके अंगोंमें लकवा हो जाता है। रोगीकी मांशपेशियां सख्त हो जाती हैं और दो-चार दिनोंसे लेकर दो-चार सप्ताहोंतक यही अवस्था रहती है। साधारणतः आक्रान्त अंग एकदम निस्पंद नहीं हो जाते। यदि आक्रमण

साधारण हो तो रोगीको मामूली कुछ दिनोंसे लेकर चार सप्ताहके बीच आराम मिलता है, किन्तु आक्रमण प्रबल हो तो उसी अचेतन अवस्थामें ही रोगी मृत्युको प्राप्त होता है। इस रोगमें फंसकर रोगी या तो मर हो जाता है अथवा उसके शरीरका अर्धांग पक्षाघात-ग्रसित हो जाता है।

यह रोग साधारणतः ४० वर्ष की अवस्थाके बाद होता है, क्योंकि इस अवस्थामें शरीरकी रक्तावाहिनी नलिकाएं कमजोर हो जाती हैं। लेकिन ४० सालके बाद सभी लोगोंको संन्यास हो जाया करे ऐसी बात नहीं है। जिन्हें वातरोग, उपदेश, स्थूलता (obesity) इत्यादि रोग होते हैं, जो लोग अत्यधिक शराब पीते हैं, अत्यन्त कड़ी उत्तेजनाके भीतर रहते हैं, अत्यधिक मानसिक अथवा शारीरिक परिश्रम करते हैं, अधिक मांस खाते हैं, साधारणतः अधिक भोजन लेते हैं, उनके शरीरमें ही इस रोगकी वृद्धिके उपयुक्त अवस्था उत्पन्न होती है। कोष्ठबद्धता इस रोगका सबसे प्रधान कारण है। पेड़ूमें मल घूसकर फूल उठनेसे खूनके आवागमनमें बाधा पड़ती है और इसके कारण शिरकी ओर अधिक रक्त दौड़ता है। जिनका कोष्ठ बराबर साफ रहता है उन्हें संन्यास रोग नहीं होता (J. W. Wilson—The New Hygiene, pp. 151—153)।

किन्तु यह समझना भूल है कि किसीको भी हठात् संन्यास रोग हो सकता है। शरीरमें विभिन्न रोग-विष रहनेके कारण अथवा दीर्घकालसे होते रहनेवाले अत्याचारके फलस्वरुप देहको शोचनीय अवस्थामें ले जानेसे ही यह रोग संभव होता है। संन्यास रोगका आक्रमण हठात् कभी नहीं होता। जो सम्भावना बहुत दिनोंतक देहके भीतर चलती रहती है, वही एक दिन सचमें परिणत हो जाता है।

[२]

सबसे पहले रोगीको लेकर खुली हवामें सुलाना चाहिये। रोगीका सिरहाना ऊंचा कर देना उचित है, किन्तु उसके शिरके नीचे तकीया नहीं देना चाहिये। उसे एक तख्तपोशपर सुलाकर उसके पायेके नीचे

सिरहानेकी ओर ईंट देकर ऊंचा करना जरूरी है। जहांतक जल्द हो सके रोगीकी गरदन और कमरका कपड़ा खोलकर ढीला कर देना चाहिये। उसके बाद खूब ठण्डे पानीसे उसका माथा, मुंह और गरदन धोकर बर्फके पानीमें भिगोई तौलिया उसके माथेके चारों ओर लपेटना और बीच-बीचमें उसके सिरपर पानी डालना कर्तव्य है। गांवमें, जहां बर्फ नहीं पाया जाता रोगीके सिरपर बार-बार गीली मिट्टीकी ठंढी पुलटिस दी जा सकती है। इससे अपेक्षाकृत अधिक उपकार और लाभ होता है। माथेमें भींगी तौलिया लपेटकर गरदनके चारों ओर भी एक भींगा गमछा लपेटना चाहिये। गरदनवाले गमछेमें गलेसे लगी हुई तहमें यदि बर्फका चूर्ण रखा जा सके तो अत्यन्त उत्तम फल होता है। अथवा गरदनपर कादी मिट्टी देकर गलेमें भींगी तौलिया लपेटनेसे भी चल जाता है। मतलब यह है कि इस भागपर विशेष रूपसे ठण्डक पहुंचानी चाहिये। इसीके साथ दोनों पैरोंमें अलग-अलग पट्टीका प्रयोग अवश्य होना चाहिये। पहले पहल दो-दो घन्टेपर एक घन्टेके लिये इस पट्टीका प्रयोग होना आवश्यक है। पट्टीका प्रयोग इस तरहसे करना उचित है कि पट्टीके नीचे ताप उत्पन्न हो। पैर ठंढा रहनेपर पट्टी देनेके पहले बारह मिनटके लिये उष्ण-पादस्नानका प्रयोग करके उसके बाद पट्टी देना उचित है और पैरोंपर बीच-बीचमें गरम थैली रखकर पैरको गरम रखना कर्तव्य है। हाथ ठंढा रहें तो हाथके ऊपर बार-बार सेंक देकर पांवकी तरह हाथमें भी पट्टी देना उचित है और पट्टीके ऊपर बीच-बीचमें गरम बेग रखना कर्तव्य है। माथेपर ठंढा और हाथ-पांवपर गरम देनेसे ही हाथ और पैरोंकी तरह खूनका दौड़ान फिर जाता है। यही संन्यासरोगकी सर्व-प्रधान चिकित्सा है। किन्तु रोगीका शरीर कभी बहुत गरम नहीं कर देना चाहिये। रोगीके बदनमें यदि पसीना आ जाय तो हाथ और पैरकी पट्टीको हटाकर थोड़ा गरम पानीमें भींगी तौलिया के द्वारा उसके समस्त शरीरको पोंछ देना कर्तव्य है। यदि रोगीके श्वास-प्रश्वासमें कष्ट हो तो रोगीका माथा और गरदन ऊंचा रखकर एक करवट सुला देना चाहिये।

रोगीकी प्रथम अवस्था कट जानेपर उसे एक ठंडे हवादार कमरेमें लेकर रखना जरूरी है। किन्तु साथ ही इस बातकी व्यवस्था कर देनी चाहिये कि घरके भीतर मनुष्योंकी अधिक भीड़भाड़ न होने पावे। रोगके आक्रमणसे सात-आठ दिनोंतक अर्थात् रक्तके चक्केके चारों ओर सूजन उत्पन्न हो जानेका भय सम्पूर्ण रूपसे कट जानेके समयतक शिरपर पानीकी पट्टी चलाना कर्तव्य है। रोगीके पांव विशेष रूपसे गरम रखने चाहिये। रोगीको बिछावनपर सुलाये रखकर ही प्रत्येक दिन उसके पेटको एक बार साफ कर देना उचित है। रोगके आक्रमणके साथ ही साथ जितनी जल्दी संभव हो एक डूस देकर रोगीका पेट साफ कर लेना चाहिये। अभिज्ञ व्यक्तिके द्वारा दिये हुए डूससे रोगीके विश्राममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. II, p. 34, London, 1950-1)। दस्त हो जानेसे ही अपने आप रोगीके माथेका रक्ताधिक्य कम हो जाता है।

जिस समयतक मस्तिष्कका उत्तेजना और सूजनका भाव रहे तबतक पक्षाघातकी व्यवस्था करना उचित नहीं है। दूसरे अथवा तीसरे सप्ताहके अन्तमें आक्रान्त अंगोंको सीधा-टेढ़ा करके और गरदनपर पक्षाघातकी चिकित्सा आरम्भ करना आवश्यक है। देहकी जोड़ें कड़ी न पड़ जायें इसके लिये प्रायः हर एक जोड़को चलानेकी चेष्टा करनी चाहिये। अधिक न थके इस भावसे रोगी स्वयं ही अपने हाथ-पांव हिलानेकी चेष्टा करे तो ज्यादा अच्छा है। यदि वह ऐसा करनेमें अक्षम हो तो उसे केवल चेष्टा करनेको कहना चाहिये और कोई दूसरा आदमी उसके हाथ-पैरोंको चलायेंगे। रोगीके लिये ऐसी चेष्टा करना अत्यन्त प्रयोजनीय है। प्रारम्भमें इस प्रकार अंग संचालन दिनभरमें एक बार पांच मिनटके लिये करना चाहिये और क्रमशः समय बढ़ाकर दिनभरमें दो बार करके २० मिनटोंतक यह क्रिया करना जरूरी है। ताकत पाते ही रोगीको उठकर चलने और सभी अंगोंके संचालन करनेकी चेष्टा ... किन्तु

अत्यधिक परिश्रम करना संगत नहीं। पहले नित्य कुछ गरम पानीके द्वारा रोगीके सम्पूर्ण शरीरको पोंछ देना आवश्यक है। उसके बाद रोगीकी मास-पेशियोंका कड़ापन जब कट जाये, तब पहले ठंढे पानीमें हाथ डुबाकर उसके द्वारा उसके समस्त शरीरको पोंछना उचित है। इसके अभ्यस्त हो जानेके बाद रोगीको तौलिया-स्नान कराके पुनः मर्दन कर उसके शरीरको गरम कर देना कर्तव्य है। जो-जो स्नान अचल हो गये हों, इन सभी स्थानोंमें चेतना वापस लानेके लिये रोगी जितना सहन कर सके उतने गरम पानीके द्वारा इस स्थानको पोंछना उचित है। चेतना वापस लानेके लिये यह सर्वश्रेष्ठ उपाय है। यदि इन सभी मुर्दे स्थानोंको गरम पानीसे कुछ क्षणतक धो धोकर उसके बाद ठंढे पानीके द्वारा इससे कम समयतक उसको पोंछ दिया जाय, तब खूब अच्छा होता है। रोगीको नित्य रातभर भीगी कमर-पट्टी प्रयुक्त करनी चाहिये इससे उसको नियमित भावसे मल-त्याग होगा, किन्तु यदि ऐसा करनेपर भी टट्टी न हो तो पेटके ऊपर गरम ठंढा देकर उसे डूस देना कर्तव्य है। उसे नित्यशः दो बार मल-त्याग करना ही चाहिये।

[३]

पहले पहल नीबूके रसके साथ रोगीको पानी देनेके अलावे दो-एक दिनतक उसे और कुछ खाने देना उचित नहीं। रोगीको खानेकी क्षमता न होनेसे यदि उसे खिलाया जाय तो सांस बन्द होकर उसकी मौत भी हो जा सकती है। पानी भी पहले उसे बूंद-बूंद करके दिया जाय उसके बाद चायके चमचे भर और यों ही धीरे-धीरे जलकी मात्रा बढ़ानी चाहिये। उत्कट अवस्था कट जानेपर उसे थोड़ा-थोड़ा फलका रस देना उचित है। बादमें विभिन्न फल एवं नाना जातिकी हरी शाक-सब्जियोंका जूस, दूध और पानीके साथ शहद दिया जा सकता है। रोगीके अच्छे हो उठनेपर भी उसे प्रधानतः इन्हीं सब खाद्यों और सलादके ऊपर निर्भर रहना चाहिये। सर्वदाके लिये रोगीको तम्बाकू, चाय, काफी, मद्य, मांस, घी, गरममसाला और सभी तरहके उत्तेजक पदार्थ एवं अधिक

आहार वर्जन करना उचित है। नमक भी छोड़ दिया जाय तो बहुत अच्छा। भोजनके बाद तुरन्त ही रोगीको कभी सोनेके लिये जाना उचित नहीं। भोजनके बाद थोड़ा चल-फिरकर खाये पदार्थोंके थोड़ा पच जानेके बाद शयन करना उचित है।

हठात् क्रोध, हर्ष आदि मानसिक उत्तेजना, अत्यधिक आहार अथवा ज्यादा परिश्रम होनेसे रोग फिर लौट आ सकता है। इसलिये रोगीका सभी स्वास्थ्य-विधियोंको मानकर चलना चाहिये। जिनके शरीरमें रक्त अधिक होता है अथवा जिनकी देह मोटी होती है उन्हें ही इस रोगका अधिक भय होता है। शरीरको स्वाभाविक बनानेकी चेष्टा करना, खूब कम खाना, महिनेमें दो-तीन दिन उपवास करना एवं कोष्ठ सदा साफ रखनेकी चेष्टा करना कर्तव्य है। रोगीको उचित है कि वह विशेष भावसे संयत जीवन यापन करनेकी चेष्टा करे। प्रतिदिन सुबह और शामको खुली हवामें टहलना और हो सके तो खुले बरामदेमें सोनेका इन्तजाम करना उचित है। उसको चाहिये कि जहांतक संभव हो दिमागी काम करना छोड़े।

जीवनी-शक्तिका निमज्जन

[Collapse]

शरीर, स्नायु और अन्यान्य सभी यंत्रोंकी चरम अवसन्न अवस्थाका नाम कोलेप्स या जीवनी-शक्तिका निमज्जन है। इसमें शरीरके सभी यंत्र इस प्रकार निर्जीव हो जाते हैं कि उनकी स्वभाविक क्रिया बन्द हो जाती है। अत्यन्त मारात्मक रोगके अन्तमें अनेक बार ऐसी अवस्था हो जाती है।

इसमें मुँहका रंग विवर्ण हो जाता है, उसमें चमक नहीं रहती, कभी-कभी ललाटपर ठंढा पसीना निकलने लगता है, आवाज बहुत धीमी, साँसें हलकी, कलेजा कमजोर, नाड़ी बहुत तेज और इतनी पतली हो जाती है कि कभी-कभी कुछ पता नहीं चलता, और शरीरकी गरमी भी प्रायः साधारणतया ९६ डिगरीसे नीचे चली जाती है। इस अवस्थामें रोगी प्रायः चित होकर लेटा रहता है और उसके चारों

और क्या हो रहा है, इसपर उसका ध्यान नही जाता।

आराम ही इस बीमारीका पहला इलाज हैं। बहुत बार शरीरको पूरा आराम मिलनेसे ही उसकी जीवनी-शक्ति फिरसे लौट आती है। रोगीके शरीरमें इस लक्षणके प्रकट होते ही उसे आधा गिलास या उससे अधिक गरम पानी पिलाना चाहिये। हाथ पैर ठंढा हो तो तेज गरमी देकर उसे गरम करना चाहिये। रोगीको सुलाये रखकर गरम पानीका डूस देनेसे अधिक लाभ होता है। जब जिन्दगी डूबने लगती है, उस समय गरम पानीका एक डूस देनेके समान लाभदायक प्राकृतिक चिकित्सामें और कुछ नहीं है। सान्निपातिक ज्वर या हैजा आदिमें रक्तदोषसे जब यह अवस्था आये तो, उस समय डूससे और अधिक लाभ होता है। डूस देनेके बाद रोगीको कुछ देरतक कई कम्बलोंसे गलेतक ढककर रखना चाहिये। रोगीका हाथ, पैर ठंढा होने लगे तो तुरन्त ही उसे एक गरम कम्बलका पैक देकर उसके बाद ठंढे पानीसे दो-तीन आदमी मिलकर उसके शरीरको अच्छी तरह रगड़ दें तो मृतप्राय रोगी भी फिरसे जी उठता है। आवश्यक हो तो प्रति दो दो; तीन-तीन घंटेके बाद ऐसा किया जा सकता है। रोगीकी रीढ़पर बीच-बीचमें तापबहुल गरम ठंढेके प्रयोगसे भी बहुत लाभ होता है। यह अवस्था एक बार व्यतीत हो जानेपर यदि दुबारा फिर बीमारीके आनेका डर हो तो रोगीको देरतक गुनगुने पानीमें (९२ से ९५ फारेनहाइट गरम) स्नान करानेसे बहुत लाभ होता है। अच्छा हो जानेके बाद कई दिनोंतक रोगीको इस प्रकारसे पानीमें नहाना उचित है। अच्छे हो जानेपर दूध ही उसका खास भोजन होना चाहिये। परन्तु भूख न हो तो नींबूके रसके साथ गरम पानी छोड़कर उसे और कुछ भी खाने-पीनेको देना नहीं चाहिये। उसके बाद फलोंका रस, पानीके साथ मधु, छेनेका पानी आदि उसे दिया जा सकता है। रोगीका इलाज तो कम ही करना चाहिये। किन्तु वह जिससे सो जाये इसीका प्रबन्ध विशेष प्रकारसे कर देना आवश्यक है।

त्रयोदश अध्याय

दुर्घटनाएँ

[Accidents]

दुर्घटना कोई रोग नहीं है किन्तु दुर्घटना होनेसे जल्दसे जल्द उसकी चिकित्सा होनी चाहिये, नहीं तो अन्य रोगोंकी तरह ही, पहले जो सहज था, वही कठिन हो सकता है अथवा जीवन ही विपन्न हो जा सकता है।

बहुधा; रोग आनेके पहले यह मालूम पड़ता है जैसे कुछ आ रहा है। किन्तु जीवनमें दुर्घटना आती है बिना नोटिश दिये। इस कारण दुर्घटना आनेपर किस अवस्थामें क्या करना चाहिये उसे हमेशा जानकर रखना आवश्यक है।

रोगकी तरह दुर्घटनाकी परिणति सबोंके शरीरमें समान नहीं होती है। बहुधा देखा जाता है कि थोड़ा कट जानेसे ही वह बड़े घावमें परिणत हो जाता है अथवा एक जोड़में मोंच आ जानेसे उसके बादमें कठिन सन्धिकी सूजन उत्पन्न हो जाती है। यह एक आकस्मिक घटना है, ऐसा नहीं। जिसके शरीरमें रोगके विस्तारकी अनुकूल अवस्था वर्तमान रहती है, उसके देहमें ही आसानीसे रोग कठिन हो जाता है अथवा साधारण घटनाके फलस्वरूप गम्भीर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

साधारणतः विभिन्न दुर्घटनाओंमें विभिन्न व्यवस्था अवलम्बन करना आवश्यक है। किन्तु जिस दुर्घटनाके लिये जो अवस्था ही अवलम्बन किया जाय, अति शीघ्र शरीरको दोषशून्य कर पानेसे दुर्बलता जनित घाव प्रभृति सहज ही आरोग्य लाभ करता है। इसलिये कोई कठिन दुर्घटना होनेपर ही साधारण उपचारके संग-संग नीम पानी से डूस,

पेठकी पट्टी, नीबूके रसके साथ जलपान, व उपवास प्रभृति द्वारा देहको यथासम्भव शीघ्र ही दोषशून्य कर लेना आवश्यक है।

कुचला घाव

कोई स्थान चोट लगकर कुचल जानेपर शीघ्र ही उसे ठंढे पानीमें डुबाना उचित है। डुबाते ही दो-एक मिनटके भीतर दर्द कम हो जाता है। किन्तु यदि न कम हो तो समझना चाहिये कि पानी खूब ठंढा नहीं है। उस समय और भी अधिक ठंढा पानी व्यवहार करना चाहिये। चोट अधिक लगनेपर पानीसे हाथ निकालने के बाद पुनः दर्द होता है। इसलिये जबतक दर्द अच्छी तरहसे न कम हो तबतक चोट लगे हुए स्थानको पानीमें डुबा रखना उचित है। उसके बाद उसे पानीसे निकालकर एक भींगे लत्ते द्वारा उस स्थानको लपेट देना चाहिये एवं उस स्थानको हमेशा गीला रखना आवश्यक है।

यदि ऐसे स्थानपर चोट लगे जो पानीमें न डुबाया जा सके तो वहां मिट्टीकी पुलटिस या बर्फके पानीमें भींगी हुई तौलिया प्रयोग कर गरम होते ही या दर्द बढ़ते ही बदल देना चाहिये। माथेमें चोट लगनेपर इसी प्रकार चिकित्सा करना उचित है। चोट लगनेसे ही पानीका पट्टी (cold compress) या बर्फकी थैलीका व्यवहार करनसे सूजन, दर्द, एवं अंगचालनमें असुविधा कम हो जाती हैं (Hobart A, Reimann, M.D. — Treatment in General Medicine, Vol. 4, p. 453, Philadelphia, 1948)।

यदि अत्यधिक समयके लिये ठंढा प्रयोग करनेकी आवश्यकता हो सो ठंढा अच्छा न लगे तो बीच-बीचमें उस स्थानपर गरम-ठंढा प्रयोग करना उचित है। हर बार दो-तीन मिनटके लिये गरम सेंक देकर पुनः वह स्थान ठंढा कर लेना चाहिये एवं एक साथ इस प्रकार तीन बार करना जरूरी है।

मोंच

[Sprains]

बहुत-सी अवस्थाओंमें ही चोट लगनेके फलस्वरूप हाथ-पांव आदि स्थानोंमें मोंच आ जाते हैं। इस अवस्थामें चोट लगे अंगपर ठंडे पानीकी पट्टीका प्रयोग ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। पट्टी लगाकर ठंडे पानीकी धाराके नीचे आघात-प्राप्त अंग रखनेपर और भी ज्यादा उपकार है। पहले दिनके बाद दर्द रहनेपर दर्दके स्थानमें दिनमें दो बार गरम-ठण्डा देना ही उचित है। मालिशसे भी अत्यन्त उपकार होता है। इसमें आघात-प्राप्त स्थानके ऊपर मालिश नहीं करनी चाहिये। उसके ऊपरी हिस्सेमें मृदु घर्षण कर रक्तको दिलकी ओर इस प्रकार लाया जाय जिससे रोगी आराम अनुभव करे एवं दर्द न हो। इससे आघात-प्राप्त अंग सख्त नहीं हो सकता एवं आहत अंगोंको पुनः सुगठित होनेकी सुविधा मिलती है। पहलेसे ही उस अङ्गको परिपूर्ण रूपसे विश्राम देना आवश्यक है।

कटा घाव

[Wounds]

कटा घाव विभिन्न रूपसे उत्पन्न होता है। बहुत-सी अवस्थाओंमें चाकू आदिके द्वारा कट जानेपर घाव पैदा होता है। इसे कटा घाव (incised wound) कहते हैं। किसी-किसी समय सूई या किसी नोकीले अस्त्र द्वारा शरीर बिंध जानेपर उसे छिद्रयुक्त घाव (punctured wound) कहते हैं। चमड़ा यदि बहुत अधिक कट जाय एवं मांस बाहर आ जांय तो उसे विदारित घाव (lacerated wound) कहते हैं। यदि बहुत-सा स्थान कुचल जानेके साथ-साथ घाव उत्पन्न हो तो उसे कुचला घाव (contused wound) कहते हैं।

शरीरका कोई स्थान कट जानेपर रक्तस्राव बन्द करना ही पहली बात है। इसलिये घावके स्थानको उंगली द्वारा दबाकर रखना आवश्यक है। उसके बाद पुनः पुनः जलपट्टीका प्रयोग एवं जल डालकर उस स्थानको सर्वदा ठण्डा व गीला रखना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है (J. H. Kellogg; M. D.—Rational Hydrotherapy, p. 799, 1928)। इसीसे अधिकांश घाव एक-दो दिनमें सूख जाते हैं।

यदि घाव खूब बड़ा हो और मांस बाहर आ जाय तो घावको अवश्य ही सिलवा लेना उचित है। किन्तु तीन-चार दिनोंके अन्दर सिलाई खोल देना चाहिये।

छिद्रयुक्त घावमें बहुत बार लकड़ी आदिका बारीक टुकड़ा घुस जाता है। वह हमेशा ही चिमटी आदिके द्वारा निकाल लेना उचित है। यदि वह शरीरमें ज्यादा गहरा घूस जाय तो ऊपरसे कभी भी घाव बन्द करना उचित नहीं। चोट लगे हुए स्थानको यथासंभव विश्राम देकर उसके ऊपर सारी रातके लिये फलानेलसे ढकी मिट्टीकी पट्टी प्रयोग करनी चाहिये। यह कुछ दिनोंतक करना आवश्यक है। इससे लकड़ीके टुकड़े वगैरह अपने आप बाहर निकल आते हैं।

हाथ या पाँवका कोई भी स्थान कुचल जानेपर उसे शीघ्र यथासम्भव काफी समयतकके लिये ठंढे पानीमें डूबा रखना चाहिये (कुचला घाव की चिकित्सा देखिये)।

कटा घाव चाहे जिस प्रकारका भी हो यदि पक जाय तो शीघ्र घावकी चिकित्सा आरम्भ करना उचित है। इसके लिये घावकी चिकित्सा देखिये।

रक्तस्राव

[Haemorrhage]

शरीरका कोई स्थान कट जानेसे साधारणतः रक्तस्राव होता है।

बहुत-सी अवस्थाओंमें सूक्ष्म नली कटकर रक्तस्राव (capillary haemorrhage) होता है। यह सहज ही बन्द हो जाता है। किन्तु कभी–कभी धमनी कट जानेके फलस्वरूप रक्तस्राव (arterial haemorrhage) होता है। कभी-कभी शिरा कटकर रक्तस्राव (venous haemorrhage) होता है। धमनी कटकर रक्त निकलनेपर रक्तका रंग लाल होता है एवं रक्त पिचकारीकी तरह निकलता है। शिराका रक्त कुछ मटमैला–सा लाल रंगका होता है एवं धीरे-धीरे समान रूपसे निकलता है। यदि रक्तस्राव तेजीसे हो तभी यह अत्यन्त मारात्मक होता है।

यदि आहिस्ते-आहिस्ते शरीरका ८० प्रतिशत रक्त भी बाहर हो जाय तब भी रोगी जिन्दा रह सकता है। किन्तु यदि थोड़े ही समयमें शरीरका आधा रक्त निकल जाय तब वह कभी जिन्दा नहीं रहता। साधारणतः शिशु और बूढ़े मनुष्य रक्तपातके फलस्वरूप अधिकतर क्षतिग्रस्त होते हैं किन्तु वृद्धकी अपेक्षा शिशु ही जल्दीसे आरोग्य लाभ करता है। साधारणतः औरतें मर्दसे कम तकलीफ पाते हैं।

ज्यादातर रक्तस्राव होनेसे चमड़ा ठंढा हो जाता है, देहका ताप अत्यन्त कम हो जाता है, मांसपेशियाँ शिथिल हो जाती है, नाड़ी दुर्बल सूतके समान, तेज व असम होती है, मुँह विवर्ण हो जाता है, आँख कठोरोंमें घुस जाती है और उसके चारों ओर काला दाग पड़ जाता है। रोगी प्रायः ही भीत व चंचल हो जाते हैं। समय–समय अधिक कानमें आवाज, वमनोद्वेग, बमन, दृष्टिशक्तिकी आंशिक कमी, विद्युत दर्शन व श्वासकष्ट प्रभृति लक्षण प्रकाश पाते हैं। इस समय आनेवाले धक्के (secondary shock) से मृत्यु हो जाती है।

रक्तपात सबकी अपेक्षा विपज्जनक है जब धमनी कट जानेके फलस्वरूप रक्तस्राव होता है। कोई एक बड़ी धमनी कट जानेपर यदि उसी समय रक्तस्राव बन्द न किया जाय तब कुछ ही मिनटोंके भीतर रोगीकी मृत्यु भी हो सकती है। [illegible] होता है,

वह प्रायः कभी भी विपज्जनक नहीं होता एवं अनायास ही बन्द हो जाता है। सूक्ष्म नालियोंसे रक्तस्रावको सर्वदा नगण्य गिना जाता है।

प्रकृतिने इस तरहसे शरीरकी रचना की है कि देहकी कोई एक रक्तवहा नाली कट जानेसे वह संकुचित हो जाती है एवं रक्त जम कर घावका मुँह बन्द कर देता है। तब अपनेसे रक्त बन्द हो जाता है। इसलिये रक्तपात होनेपर ऐसा कुछ करना चाहिये जिससे प्रकृति उसके इस काममें सहायता दे सके।

यह उद्देश्य प्राप्त किया जाता है देहका कोई स्थान कट जानेके फलस्वरूप, रक्त बाहर होते ही, यदि वह स्थान अंगुली द्वारा चापकर रखा जाय। यही रक्त बन्द करनेका सर्वप्रधान प्राकृतिक उपाय है। All you need is pressure—इस समय जो आवश्यक होता है, वह होता है चाप (Louis H. Merker, M.D.—Until the Doctor comes, p. 151, Toronto 1953)। चाप देनेसे रक्तवहा नाली बन्द हो जाता है एवं रक्त जमाठ बाँधनेके फलस्वरूप आप ही स्राव बन्द हो जाता है। यदि घावके मुंहसे अत्यधिक रक्त निकले तब डोरीसे अङ्गको बाँधकर रक्तके मूल उद्गमको ही बन्द कर देना चाहिये। घावसे लाल रक्त निकलने पर समझना चाहिये कि कोई धमनी (artery) कट गई है। तब घावके ऊपरकी ओर घावके मुंहसे प्रायः दो इञ्च दूरीपर रुमाल प्रभृति द्वारा अङ्गको सख्तीसे बाँध देना आवश्यक है। और यदि घावसे कालापन लिये रक्त निकले तब समझना चाहिये कि कोई शिरा छिन्न हो गई है। तब घावके नीचेकी ओर बाँधना चाहिये। बन्धनके फलस्वरूप मूल धमनी या शिराका रक्त संचालन जब बन्द हो जाता है तब निश्चित रूपसे रक्तस्राव बंद हो जाता है।

यदि गाँठ खूब कसकर बाँधा न जाये एवं उसके फलस्वरूप रक्तपात होता हो, तब रस्सीके नीचे एक पेन्सिल या कलम डालकर उसके द्वारा पाक देना पड़ता है। उससे अविलम्ब रक्त बंद हो जाता है।

हाथ-पाँव कटकर रक्तस्राव होनेपर सदा ही आघात लगे स्थानको ऊँचा करके रखना चाहिये। उससे उस अंगमें रक्तका चाप कम हो जाता है एवं रक्तस्राव धीमा पड़ जाता है। बँधे रहनेपर भी हाथ-पांव ऊंचा रखना आवश्यक है।

उसके बाद आघातप्राप्त स्थानपर खूब शीतल जलकी भारी पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। प्रयोजन हो तो बर्फ जलकी पट्टी बड़ा कर प्रयोग किया जा सकता है।

माथा, मुंह, स्कन्ध व पीठ प्रभृति जिस स्थानसे ही चोट लगनेके फलस्वरूप रक्तस्राव हो, पहले अंगुलीके द्वारा दबाकर उसके बाद इसी तरह ठंढा प्रयोग करना कर्तव्य है।

रक्तस्रावका कारण उपस्थित होते ही उसी क्षण रोगीको सुला देना उचित है। परिपूर्ण विश्राम एवं शान्ति पहली आवश्यकता है। इस समय रोगी सारा शरीर शिथिल कर ले सके तो बड़ा ही लाभ होता है। उससे रक्तस्राव कभी बढ़ नहीं सकता। रक्तस्राव बन्द होनेपर शीघ्र समयतक बिछावनपर रहकर शान्त भावसे विश्राम करना चाहिये। इस समय कभी भी उसे उत्तेजक औषध देना उचित नहीं। रोगी जिससे विरक्त, उत्तेजित या भीत हो, इस समय ऐसा कुछ करना उचित नहीं। रोगीको बिछावनपर लिटाकर पहले ही जिससे उसका माथा नीचा रहे, इस तरहसे खाटके पायतानेकी ओर ऊंचा कर देना कर्तव्य है एवं उसके माथेसे तकिया हटा लेना उचित है। रोगीका हाथ-पैर यदि ठंढी हो जाय तो सतर्कतासे मृदु गरम थैली द्वारा हाथ-पाँव गरम कर लेना आवश्यक है। किन्तु कभी भी शरीर अत्यधिक गरम नहीं कर लेना चाहिये। उससे रक्तस्राव बढ़ ही जा सकता है। Overheating defeats its own ends—अत्यधिक ताप ताप-प्रयोगके उद्देश्यको ही व्यर्थ कर देता है (R. M. Handfield Jones, M. S., F. R. C. S. —The Essentials of Modern Surgery, p 149, London. 1957)।

पहली अवस्थामें रोगीको केवल नीबूका रस मिला हुआ पानी थोड़ा-थोड़ा बार-बार देना उचित है। उसके बाद उसे कोई तरह खाद्य देना चाहिये। इस समय रोगीको लोह प्रधान खाद्य देना विशेष रूपसे आवश्यक है। इसलिये उसे विभिन्न जन्तुओंके यकृत (lever) का सूप, हरी साग सब्जीका सूप एवं १२ घन्टा भियोगी खुबानीका जल अत्यन्त हितकर है। पालक व सरसों शाकके सूपपर सर्वदा अधिक जोर देना चाहिये।

जला घाव

[Burns and Scalds]

विभिन्न कारणोंसे देह दग्ध हो जाता है। शुष्क तापसे शरीर जिस प्रकार जल जाता है, सिक्त तापसे भी शरीरकी उसी प्रकार हानि होती है। आग या आगसे गरम लोहा, गरम जल या उत्तप्त तेल या जलनशील तिजाब आदिके स्पर्शसे तथा बिजलीकी करेन्ट लगनेपर बहुत-सी अवस्थाओं में शरीर दग्ध हो जाता है।

ये सभी शरीरके भीतर समान रोगलक्षण उत्पन्न करते हैं एवं इनकी चिकित्सा भी एक ही प्रकार है।

जलन अति साधारणसे व्यापक व गम्भीर हो सकता है। जलनकी तीव्रताके अनुसार इसे विभिन्न श्रेणीमें विभक्त किया जाता है। साधारण अवस्थामें जलनके फलस्वरूप केवल चमड़ा ही लाल हो जाता है। इसमें केवल दो दिनोंतक दर्द रहता है। उसके बाद अपने आप दर्द कम हो जाता है। यदि जलनके बाद फफोला पड़ जाय तो उसे द्वितीय श्रेणीके अन्तर्गत समझना चाहिये। तृतीय श्रेणीके जलनमें सारा चर्म ध्वंस हो जानेके फलस्वरूप उन्मुक्त घाव प्रकाश पाता है।

अग्निदाहके पश्चात् पहला उपसर्ग ही दर्द है। किन्तु जलन यदि व्यापक व प्रबल हो तो सारा शरीर अवश एवं दिल आदि यंत्र कमजोर हो जाते हैं। इसे शॉक (shock) कहते हैं। यदि छाती जल जाय

तो प्रायः ही ब्रङ्काइटिस, न्यूमोनिया व प्लूरिसी उत्पन्न होती है। सिर व गर्दन जल जानेपर बहुत बार मेनिनजाइटिस हो जाता है। इसलिये सिर, गर्दन व छातीके जले हुए घाव, हाथ व पांवके बड़े घाव की अपेक्षा भी अधिक भयानक होते हैं। अग्निदाह व्यापक होनेपर शिशु व वृद्धोंके लिये ही वह अधिक प्राण हानिकर होता है।

शरीरका कोई स्थान आगमें जल जानेपर तत्क्षण उसे खूब ठंडे पानीमें डुबा रखना कर्तव्य है। ठंडे जलमें डुबाते ही सारी यंत्रणाएं एवं जलन दूर हो जाते हैं। यदि जलन दूर न हो तो समझना चाहिये कि पानी काफी ठंढ़ा नहीं है। इसके लिये आवश्यकता होनेपर पानीमे बर्फ डाला जा सकता है, अथवा बर्फ पानीके अन्दर दग्ध अङ्ग डुबाकर रखा जा सकता है। जब जलन रहे तब तक दग्ध स्थान ठंढे पानी में डुबा रखना जरूरी है। जलन बंद होने पर भी पहले पहल पानीसे हाथ निकालने के बाद
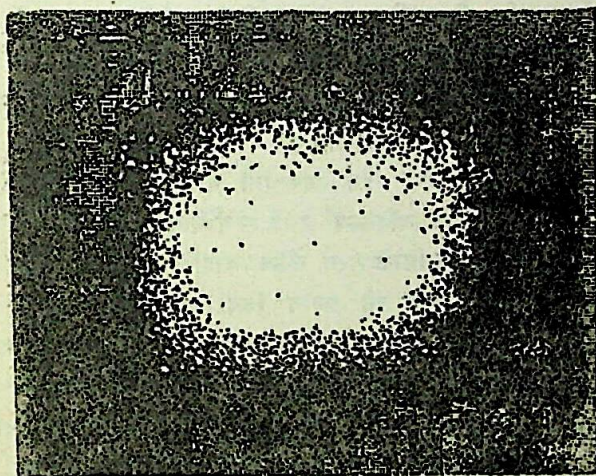
मिट्टीकी पट्टी (earth compress)

पुनः जलन होता है, उस समय दुबारा ठंडे पानीमें उस अङ्गको डुबाना आवश्यक है। जलन प्रबल होनेपर अनेक समय १० से १२ घंटेतक पानीमें

डुबा रखनेकी आवश्यकता हो सकती है। उसके बाद पानीसे निकालनेके बाद जब और यन्त्रणा नहीं रहती उस समय दग्ध स्थान पर चमड़ेके ऊपर अत्यन्त ठंढी मिट्टीकी खुली पट्टी आधी इञ्च मोटी करके प्रयोग करना चाहिये। पट्टी रखकर गरम होते ही बदल देना जरूरी है एवं दर्द कम हो जानेपर भी दीर्घ समयतकके लिये बार-बार बदलकर व्यवहार करना कर्तव्य है।

यदि ऐसा स्थान जल जाय, जो पानीमें न डुबाया जा सके, तो वहाँ खूब ठंढी मिट्टी की भारी व बड़ी पुलटिस उल्लिखित पद्धतिसे प्रयोग करना कर्तव्य है। अनवरत ठंढा पानी प्रयोग करनेसे यदि कँपकँपी मालूम हो तो दूसरे किसी अंग हाथ या पाँवपर थोड़ी देरके लिये बीच बीचमें गरम पानीकी थैली रखी जा सकती है।

किन्तु यदि शरीरका विस्तृत स्थान आगसे जल जाय एवं उसके फल-स्वरूप रोगी अवसन्न हो जाय अर्थात् शॉक लगे तो शॉकसे अविलम्ब, रोगीको बचाना ही पहला कर्त्तव्य समझना चाहिये। कारण व्यापक अग्निदाहसे मनुष्य जो शीघ्रातिशीघ्र मर जाता है, ऐसा साधारणतः शॉक लगनेके कारण होता है। इस अवस्थामें यदि रोगीका शरीर ठंढा व अवसन्न हो जाय तो अविलम्ब उसके ऊर्ध्व मेरुदण्डपर गरम-ठंढा प्रयोग करना चाहिये। एक मिनट गरम सेंकके बाद एक मिनट ठण्ढा देकर दस-बारह मिनटके लिये इसे प्रयोग किया जा सकता है। रोगीका हाथ-पाँव आदि स्थान भी गरम कर लेना आवश्यक है एवं गरम कम्बल आदिके द्वारा गलेतक ढका रखना चाहिये। उसे नीबू के रसके साथ गरम पानी भी पीने के लिये देना उचित है। संभव होनेपर पहली अवस्थामें कुछ समयतकके लिये गरम जलमें डुबाकर रखा जा सकता है।

किन्तु व्यापक अग्निदाहकी प्रधान चिकित्सा ही है ठंढे जलमें निमज्जन। अवसन्न अवस्थाकी प्रतिक्रिया अथवा उल्लिखित चिकित्साके फलस्वरूप जब शरीर गरम हो उठता है तब एक बड़े टबमें न होनेपर हौदके भीतर, उसे गले तक डुबा रखना उचित है। गाँवके लोग इस

अवस्था में तालाब या नदीमें गला दबाकर रह सकते है। आवश्यकतानुसार इस प्रकार कुछ दिनोंतक पानीके अंदर रहा जा सकता है। इससे कोई अनिष्ठ नहीं होता एवं किसी-किसी क्षेत्रमें देखा गया है कि, जहां अन्य किसी भी पद्धतिके द्वारा बचना संभव नहीं था वहां भी इस पद्धतिके द्वारा रोगी आरोग्य लाभ करता है (J. H. Kellogg, M.D.—Home Handbook of Hygiene and Medicine, p. 1411)। रोगीको टबमें रखनेपर हमेशा ही टबका पानी दिनमें दो बार बदल देना चाहिये। रोगीका सिर ठंडा रखना उचित है एवं दोनों कंधे जिसमें हमेशा पानीके नीचे रहें ऐसी व्यवस्था करना जरूरी है।

वर्तमान समयमें पृथ्वीमें सर्वत्र आगसे जले रोगीको ठंडे जलमें रखना एक श्रेष्ठ चिकित्सा समझी जाती है। शीतल जलमें शरीर डुबा रखनेपर वेदना व प्रदाह सर्वापेक्षा शीघ्र कम हो जाता है एवं बादकी अवस्थामें भी अच्छा फल होता है (Hobart A. Reimann M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 4. Philadelphia, 1948)। इसलिये विगत महायुद्धमें अग्निदाहकी जल चिकित्साके लिये कई विशेष केन्द्र खोले गये थे (Francis Beck, M. A., D.M.—Recent Advances in Physical Medicine, p. 100, London, 1950)।

कपड़ेमें आग लगने पर कभी भी दौड़धूप नहीं करना चाहिये। उससे आग और भी जल उठती है। आग लगते ही जमीनपर लेटकर लुढ़कना चाहिये एवं आसपास के व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि उसके शरीरपर रजाई या कंबल आदि दबा देना। इससे आग क्षणभरमें बुझ जाती है। कारण वायुके बिना आग नहीं जल सकती।

यदि आग लगकर शरीरका बहुत-सा स्थान एक साथ ही जल जाय तो अनेक समय परिधेय वस्त्र जले हुए घावके साथ मजबूती से चिपट जाते हैं। ऐसी अवस्थामें परिधेय वस्त्र कभी भी जोरसे खींचकर नहीं खोलना

चाहिये। उसे शरीरका चमड़ा छिन्न होकर बड़े घावकी सृष्टि कर सकता है। ऐसा होनेपर एक कैंचीके द्वारा घावके चारों ओरका कपड़ा काट लेना उचित है। उसके बाद कादा मिट्टी आदि देते-देते कपड़ा स्वयं उठ जाता है।

जल जानेपर यदि शरीरके किसी स्थानपर फफोले पड़ जायें तो फफोला कभी भी जबर्दस्ती नहीं फोड़ना चाहिये। उस अवस्थामें एक परिष्कार सूईको आगमें जलाकर उसके द्वारा फफोलेके नीचे एक बहुत ही छोटा छिद्र कर देना होता है। इससे फफोलेका सारा पानी निकल जाता है। यदि अपने आप पानी न निकले तो फफोलेपर मृदु दबाव देनेपर सारा पानी निकल जाता है।

बादमें फफोलेके ऊपर कादा मिट्टी प्रयोग करनेपर ऊपरका चर्म भीतर के घाव के साथ लग जाता है एवं बादमें भीतरसे घाव सूखनेपर अपने आप मरकर उठ जाता है।

घावपर मिट्टीकी पट्टी न रहने पर उसके ऊपर नारियल तेल लगाकर रखा जा सकता है। विशुद्ध काडलीवर आयल लगानेपर अधिक उपकार होता है।

बड़ा घाव होनेपर हमेशा ही परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना कर्तव्य है। हाथ व पैर इत्यादि अत्यधिक रूपसे जल जानेपर हमेशा ही ध्यान रखना आवश्यक है कि वह जिसमें सर्वदा सरल रूपमें रहे एवं पास ही पासके दोनों घावों के बीच केलेका पत्ता या पान रखनेमें भूल न हो। हाथ व पैर की संधि या तत्संलग्न स्थान जल जानेपर यदि वे आपसमें सटे हुए रहें तो अविछिन्न रूपसे जुड़ जाते है एवं बादमें अलग नहीं होते। बहुत बार हाथकी अंगुलियां इस प्रकार आपस में जुड़ जाती हैं।

इसके अलावा हाथ या पांवकी संधि जल जानेपर हाथ सीधा नहीं रखनेसे घाव सूखनेके समय वह अंग सिकुड़ जा सकता है। उसके बाद उसे फैलाना असंभव हो जाता है (Cutchbert Alave Sprawson, M. D., F. R. C. P., and Robert Dudley

Alexander, M. B., M. R. C. P.—Moore's Manual of Family Medicine and Hygiene for India p. 321 Delhi, 1936)।

बिजलीका धक्का

[Electric shock]

बिजलीके तारके स्पर्शसे प्रायः ही लोग आहत होते हैं। ए० सी० करेंठ डी० सी० करेंठ से अधिक नुकसानदेह होती है।

आघात की तीव्रता निर्भर करती है विद्युत प्रवाहके जोर (Voltage), श्रेणी (type) एवं स्थितिकाल (duration) के ऊपर। शरीर भींगा रहनेपर आघात ज्यादा होता है। ज्यादा शॉक लगनेपर शरीर जल जा सकता है एवं रोगी बेहोश हो सकता है। बहुत-सी अवस्थाओंमें इससे मृत्यु हो जाती है।

बिजलीका झटका लगते ही, रोगीको तारसे अलग करना पहला कर्तव्य है। ए. सी. करेन्ठ रोगीको खींच लेता है। इस अवस्थामें उसे छुड़ानेके लिये खाली हाथसे कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। परन् शीघ्र ही स्विच बन्द कर देना कर्तव्य है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो एक सूखा लाठीके द्वारा उसका शरीर छुड़ाना चाहिये। ऐसा न कर आघात-प्राप्त व्यक्तिका शरीर स्पर्श करनेसे सहायता करनेवालेकी भी मृत्यु हो सकती है।

बिजलीकी करेन्टसे जल जानेपर आगे से जल जानेके समान ही चिकित्सा करना कर्तव्य है। झटका लगते ही आघात-प्राप्त अङ्गको उसी क्षण ठन्डे पानीमें डुबा देना उचित है। यदि जल बहुत शीतल न हो, तब जलके भीतर अंग डुबानेके बाद बरफ संग्रह करना चाहिये। यदि ऐसा स्थान आगसे जल जाय जिसे पानीमें डुबाना सम्भव न हो तो उस स्थानपर ठंढी कादा मिट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है। केवल इसीसे क्षणभरमें दर्द कम होती है, फफोले नहीं उठते और घाव

नहीं हो पाता। यदि विलम्बसे चिकित्सा शुरू करनेपर घाव उत्पन्न हो जाय, तब भी आधा इञ्च साफ कादा मिट्टी बार-बार बदलकर प्रयोग करनेसे घाव जल्द आरोग्य हो जाता है। बिजलीके तारके स्पर्शसे रोगी यदि बेहोश हो जाय तो उसे छुड़ाकर कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास (artificial respiration) प्रवाहित करनेकी चेष्टा करना कर्तव्य है (William Bierman, M. D.—Physical Medicine in General Practice, p. 516, New York, 1952)। रोगीकी रक्षा करनेका यही एकमात्र उपाय है। जबतक रोगीको होश न हो तबतक यह चेष्टा करनी चाहिये। रोगीके बेहोश होते ही श्वास-प्रश्वासके व्यायाम शुरू करना उचित है। विभिन्न कारखानोंमें देखा गया है कि बेहोश होनेके बाद जब पहले दस मिनटके भीतर यह शुरू किया गया तब अधिकांश रोगियोंने आरोग्य लाभ किया। द्वितीय दस मिनटके अन्दर भी चिकित्सा आरम्भ करनेपर काफी रोगी आरोग्य लाभ करते हैं। किन्तु उसके बाद आरोग्य होनेकी संख्या कम होती है। तथापि रोगीके बेहोश होने के ७ घन्टे बाद भी इससे कभी-कभी रोगीको पुनर्जीवन लाभ हुआ है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 1028, London, 1953)। रोगीको छोड़नेके पहले कमसे कम एक घंटेतक कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास बहानेकी चेष्टा करना उचित है (Frederick W. Price, M. D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine; p. 371, London, 1943)। एक बार श्वास-प्रश्वास बहलनेके बाद पुनः रोगी बेहोश होनेपर फिर पहलेकी तरह चेष्टा करनी चाहिये। श्वास-प्रश्वास बहानेके लिये रोगीको चित लिटाना आवश्यक है। उसके बाद रोगीके सिरकी ओर जाकर रोगीके दोनों हाथोंको केहुनीके ऊपर पकड़ना चाहिये। इसके बाद दोनों हाथोंको सिरके दोनों ओरसे उठाकर शरीरके साथ समांतराल रूपसे पीछे ले जाना आवश्यक है। उसी प्रकार पीछे

दो सेकेण्ड रखकर पुनः दोनों हाथोंको उठाकर छातीके दोनों तरफ लाकर धीरे-धीरे दो सेकेण्डके लिये दबाव देना होता है। इस प्रकार हर मिनटमें १५ बार करना आवश्यक है।

पानीमें डूबना

[Drowning]

मनुष्य पानीमें डूबनेपर साधारणतः हृत्पिंडकी गति एवं श्वास-प्रश्वास बंद हो जानेके फलस्वरूप मौतके मुंहमें चला जाता है। साधारण अवस्थामें मनुष्य यदि तीनसे पाँच मिनटके लिये आक्सीजन ग्रहण न कर सके तो वह मर जाता है। किन्तु पानीमें डूबनेके आध घन्टे बाद भी अनेक समय मनुष्य बच उठता है।

पानीसे निकलनेके बाद पहला कर्तव्य ही है कृत्रिम उपाय द्वारा रोगीके शरीरमें श्वास-प्रश्वास लौटना। रोगीको सूखे स्थानमें ले आना, उसके कपड़े-लत्ते खोल देना, शरीर गरम करना, ये सभी गौण कार्य हैं, उसके शरीरमें श्वास-प्रश्वास लौटना ही सर्व प्रधान एवं सर्वप्रथम चिकित्सा है। The usual signs of death are not reliable in a case of drowning. For this reason artificial respiration should be continued for prolonged periods. This should be continued until pronounced cooling begins Don't waste a second. Start at once—मृत्युके स्वाभाविक लक्षण जलमें डूबे व्यक्तिमें नहीं देखे जाते हैं। इसलिये दीर्घ समयतक कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास चलाना चाहिये। जबतक शरीर ठंढा न हो जाय तबतक इसे चलाना उचित है। इस कार्यमें एक सेकेण्ड भी समय नष्ट करना उचित नहीं। अविलम्ब चिकित्सा आरम्भ करना कर्तव्य है (Martin Emil Relifuss, M. D., F. A. C. P., and Alisore Howe Price, M. D.—A Course in practi-

cal Therapeutics, p. 530, Baltimore, 1958)।

इसलिये पानीसे निकालते ही उसे पट सुलाकर उसकी छातीके नीचे एक पतला तकिया या तह की हुई धोती आदिके द्वारा ऊँचा कर देना कर्तव्य है। इस समय रोगीका मुंह एक ओर करवट कर देना चाहिये। इससे उसका मुंह व नाक मुक्त खुला रह सकता है। तत्पश्चात् रोगीकी तरफ मुंह करके उसके शरीरके दोनों तरफ पांव रखकर खड़े होकर उसकी पंसलीके शेष अंशपर दोनों तरफसे दो हाथ रखकर जोरके साथ दबाव देना चाहिये। इससे पानी व बन्द वायु फेफड़ेके रास्ते निकल जाती है। तत्पश्चात् उसके पेटके पास पकड़कर रोगीको यथासम्भव ऊँचा उठाना कर्तव्य है एवं चार-पांच सेकेण्डतक ऊंचा रखना आवश्यक है। किन्तु उस समय रोगीका सिर सर्वदा जमीनके साथ सटा रहना चाहिये। रोगीको इस प्रकार ऊंचा उठानेपर उसके दोनों फेफड़ोंमें हवा भर जाती है एवं वे बिस्तार लाभ करते हैं। इस व्यवस्था द्वारा जितनी हवा फेफड़ेमें प्रवेश करती है अन्य किसी भी अवस्था द्वारा सम्भव नहीं। सर्वापेक्षा सुफल प्राप्तिके लिये हर मिनटमें बाहरसे पन्द्रह बार इस प्रकार क्रमशः उठाना एवं नीचे रखकर दबाव देना कर्तव्य है। कमसे कम एक घन्टा तक ऐसा किये बिना किसी भी रोगीकी आशा नहीं छोड़नी चाहिये। यह देखा गया है ऐसा करनेके फलस्वरूप कुछ घंटोंके पश्चात् भी रोगीने पुनर्जीवन लाभ किया है। अतएव जबतक जीवनकी थोड़ी आशा भी वर्तमान हो तबतक इसी प्रकार निःश्वास लौटानेकी चेष्टा करना कर्तव्य है।

यह अवस्था जितनी सहज है उतनी ही लाभदायक है। इसमें श्वासनलीको पानी व कफ आदिसे मुक्त करनेके लिये अलगसे चेष्टा करनेकी जरूरत नहीं होती। पानी व कफ अपने आप निकल जाते हैं एवं पेटमें यदि पानी हो तो वह भी साथ ही साथ निकल जाता है।

ऐसा करनेके समय हर आध घन्टेपर रोगीके गर्दनके निकट ऊर्ध्व मेरुदण्डपर दो मिनट गरम सेंकके बाद दो-एक मिनट ठण्डा देकर गरम-ठंढा देनेसे श्वास-प्रश्वास यन्त्र उत्तेजना लाभ करता है एवं द्रुत फल होता है।

इसके अलावा इस समय जो हार्टफेल होनेका भय रहता है वह भी दूर हो जाता है। किन्तु इसलिये कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास लौटानेका काम कभी भी बन्द रखना उचित नहीं। कारण श्वास-प्रश्वास लौटना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। इसे प्रयोग करनेके समय कुशलताके साथ गरम-ठंडा देना उचित है।

रोगीके शरीरसे ऐसी चिजोंको यथाशीघ्र हटा देना चाहिये जिससे उसके श्वास-प्रश्वास ग्रहण करनेमें बाधा उपस्थित हो। इसके लिये पासमें खड़े व्यक्तिका कर्तव्य है कि उसका कपड़ा-लत्ता तथा कमरका बेल्ट वगैरह या गांठ आदि खोल दे।

रोगीके शरीरमें श्वास-प्रश्वास लौटनेके उपरांत उसे गरम बिस्तरेपर सुलाकर गरम जल जलके बोतल आदि द्वारा उसका सारा शरीर गरम कर लेना उचित है। जलमें दीर्घ समयतकके लिये डूब रहनेके कारण स्तब्ध रक्तस्रोत जिससे पुनः अच्छी तरह चलाचल कर सके इसके लिये भी शीघ्र व्यवस्था करना आवश्यक है। एतदर्थ उसके हाथ एवं पैरोंपर घर्षण प्रयोग करना विशेष रूपसे कर्तव्य है। घर्षण हमेशा नीचेसे ऊपरकी ओर करना चाहिये।

रोगीके शरीरमें भोजन करनेकी क्षमता लौटते ही उसे छोटे चम्मच द्वारा नीबूका रस गरम जल पिलाना उचित है अथवा अन्य कोई गरम पेय देना जरूरी है। किन्तु दो-तीन दिनोंतक उसे गरम दूध व फलके रसके सिवा और कुछ खानेको देना उचित नहीं।

शॉक

[Shock]

प्रबल आघातसे रक्त चलाचल बन्द हो जानेका नाम शॉक है। ज्यादा रक्तस्राव, प्रबल दस्त, अधिक पसीना निकलना, शरीरका बहुत स्थान जल जाने आदिसे ऐसा होता है। बहुत अवस्थामें भय, उद्वेग और

आतंक से भी ऐसी अवस्था पैदा होती है। जिन मनुष्योंके स्नायु दुर्बल हैं, उन्हें साधारणतः ऐसा हो जाता है। इस अवस्थामें हार्टके रक्त पम्प करनेकी ताकत कम हो जाती है, मुंह और चर्म विवर्ण हो जाते हैं, अधिक पसीना होता है, नाड़ी इतनी मृदु और द्रुत हो जाती है कि नाड़ी है या नहीं यह पता नहीं चलता। रोगीका श्वास-प्रश्वास ठीक नहीं रहता एवं वह बीच-बीचमें दीर्घ निःश्वास लेता है। बहुत बार शरीरका उत्ताप स्वाभाविककी अपेक्षा कम हो जाता है एवं रोगीको अत्यन्त प्यास लगती है। साधारणतः इस अवस्थाके बाद एक प्रतिक्रिया होती है। उस समय रोगीके शरीरमें ताप वृद्धि पाता हैं एवं ज्वर साधारणतः १०० डिग्रीके करीब होता है। यदि आघात लगनेके साथ ही साथ रोगीको रक्तस्राव हो या अत्यधिक ठंढ लगे तब रोगीकी अवस्था अत्यन्त कठिन हो सकती है। जिस कारणसे ही शॉक क्यों न हो, always treat the shock before you give first aid for the accident that caused it—दुर्घटनाकी चिकित्सा करनेके पहले सर्वदा ही शॉककी चिकित्सा करना उचित है. (Louis H. Merker, M. D.—Until the Doctor comes, p. 145 Toronto, 1953)। इसलिये रोगीके अवसन्न होते ही उसे गरम बिस्तरेपर सुलाकर गरम कम्बल आदिके द्वारा गलेतक सारा शरीर भली भाँति ढक देना जरूरी है एवं देहके चारों ओर गरम जलका बोतल रखना आवश्यक है। उसके अलावा नीबूके रसके साथ गरम पानी पीनेके लिये देना उचित है।

इसके साथ रोगीके मेरुदण्डपर दो मिनट गरमके बाद दो मिनट ठंढा देकर १२ से २० मिनटके लिये गरम-ठंढा देना कर्तव्य है। इससे रोगी अति शीघ्र चंगा हो उठता है।

यदि रोगी बेहोश हो जाय तो पहले ही कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास लौटना कर्तव्य है। इसके लिये बिजलीका धक्का देखिये।

श्वास-रोध

[Asphyxia]

बहुत-सी अवस्थाओंमें श्वास-रोध होनेके फलस्वरूप लोगोंकी मृत्यु हो जाती है। पानीमें डूबनेके कारण इस प्रकार मृत्यु होती है। बहुत बार विषाक्त गैस ग्रहण करनेके फलस्वरूप श्वास-प्रश्वास बन्द हो जाता है। क्लोरोफार्म आदि विष मस्तिष्कके श्वास-प्रश्वास केन्द्रको पक्षाघातग्रस्त कर श्वास-प्रश्वास बन्द कर देते हैं। विभिन्न विषाक्त गैस, (Sulphurous acid, Chlorine व Ammonia आदि) भी अज्ञातरूपमें श्वासनली बन्द कर देते हैं। बन्द घर के भीतर स्टोभ या कोयला जलता हुआ छोड़-कर सोनेके फलस्वरूप बहुतोंने निद्रितावस्थामें ही प्राण त्याग किया है।

बहुत बार धुएँ से दम अटक जाता है। गलेमें रस्सी बान्धनेपर भी श्वास-प्रश्वास, बन्द होकर लोगों की मृत्यु हो जाती है।

किन्तु रोगीके बेहोश होनेके बाद शीघ्र चिकित्सा आरम्भ करने पर जीवनकी रक्षा हो सकती है।

इन सभी अवस्थाओंमें रोगीको यथासम्भव शीघ्र मुक्त हवा में ले जाना जरूरी है। रोगीके चारों ओर जिसमें भीड़ न जमे ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है। किन्तु इस समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि रोगीका शरीर ठण्डा न हो जाय। रोगीकी आँख और मुँह पर जल्दी से जल्दी पानीके छपके देना चाहिये एवं जितनी जल्दी सम्भव हो कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास चालू करनेकी कोशिश करना कर्तव्य है। इसके लिये बिजलीकी धक्केकी चिकित्सा देखिये। पानीसे डूबे हुए रोगीकी तरह इन रोगियोंको भी मेरुदण्डपर गरम-ठण्डा देना उचित है। पानीके डूबे हुए, या विभिन्न गैस आदिसे श्वास-प्रश्वास बन्द हो जाय तो हमेशा ही ऊर्ध्व मेरुदण्डपर गरम-ठण्डा देना कर्तव्य है। गरम जल की बोतल और गीली तौलिया से यह प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिये दो तौलियाकी

जरूरत होती है। यदि सम्भव हो तो पहली अवस्थामें कुछ समयके लिये उसे गरम पानीमें गलेतक डुबाया जा सकता है।

अफीम ग्रहण

(Opium Poisoning)

प्रति वर्ष अफीम ग्रहण करनेके कारण सारी पृथ्वीमें बहुत-से लोगोंकी मृत्यु होती है। साधारणतः १० से ३० ग्रेन अफीम खाने पर मनुष्य मर जाता है।

अफीम खानेके बाद रोगीका सिर घूमना, मस्तिष्कका भारीपन तथा नींद आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। नींद क्रमशः गहरी होती जाती है और अन्तमें अचेतन निन्द्रा उपस्थित होती है। इस समय रोगीकी नाड़ी अत्यन्त धीमी हो जाती है, होंठ नीले पड़ जाते हैं, आंखकी पुतली सिकुड़ जाती हैं, मुंह व होंठोंपर ठण्ढा पसीना-सा निकलता है एवं प्रति मिनट वह केवल २ से ४ बार गहरा निःश्वास परित्याग करता है। रोगीके निःश्वास के साथ अफीमका गन्ध मिलता है। अन्तमें रोगीका शरीर हिमकी तरह ठण्ढा होने लगता है और वह ६ से १२ घन्टेके अन्दर मृत्युके गालमें चला जाता है।

जैसे ही मालूम हो कि किसीने अफीम खाया है वैसे ही अविलम्ब उसे उलटी करानी चाहिये। कयके साथ अफीम बाहर निकल जानेपर ही जीवनको रक्षा होती है। इसके लिये रोगीको ईषदुष्ण गरम जलमें नमक देकर पिलाना कर्तव्य है। रोगीकी गलेतक नमक मिला पानी पिलाना आवश्यक है। उसके बाद गलेमें उँगली देते ही उलटी होने लगती है। अथवा एक स्वच्छ कबूतर के पंखसे गलेके भीतर गुदगुदाने से कय होती है। किन्तु एक बार उलटी करना ही यथेष्ट नहीं। रोगीको बार-बार उलटी कराना कर्तव्य है। पहले रोगी को केवल नमक मिले पानीसे कय कराकर बादमें हर पाइन्टमें ५ से १० ग्रेन पोटासियम परमांगानेट

(potassium permanganate) के साथ उलटी कराना ही साधारण नियम है।

रोगीको एक बार गरम पानीसे डूस देना भी विशेष रूपसे आवश्यक है। उससे केवल शरीर ही हलका नहीं होता, गरम पानीके डूससे शरीर चंगा भी हो उठता है।

इस समय रोगीके मेरुदण्डपर दो मिनठ गरम सेंकके बाद दो मिनठ ठण्डा देकर एवं एक साथ चार-पांच दफे करके १६ से २० मिनटके लिये गरम-ठंढा प्रयोग करना कर्तव्य है। आवश्यकता होनेपर यह हर एक घन्टा बाद बाद प्रयोग किया जा सकता है। इसके बाद रोगी को आधे घन्टेके लिये घर्षण-स्नान प्रयोग कर सकनेपर रोगीकी जीवनी शक्ति शीघ्र ही जाग्रत हो उठती है, शरीरका ताप बढ़ता है एवं फुसफुस व हृदयकी गतिमें उन्नति होती है। किन्तु घर्षण-स्नानके पश्चात् शुष्क घर्षण प्रयोग कर शरीरको गरम कर लेना उचित है।

जबतक रोगी स्वस्थ न हो जाय तबतक उसे सोने नहीं देना चाहिये। उस समय उसे बार-बार इधर-उधर टहलना जरूरी है एवं आँख व मुंहपर ठंढे पानीका छींटा देना कर्तव्य है।

किन्तु जिससे उसे कष्ट हो एवं शरीर थक सके ऐसी अवस्था हर प्रकारसे त्यागना उचित है।

रोगीका श्वास-प्रश्वास बन्द होने का उपक्रम होनेपर कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास लौटानेकी चेष्टा करना कर्तव्य है (W. F, Von Octtingen, M. D. Ph. D.—Poisoning, P. 402, New York, 1954:)।

आरोग्य लाभ होनेके बाद कुछ दिनोंतक उसे दूध व फलोंका रस पिलाकर रखना उचित है एवं रोज डूस देना आवश्यक है।

आँखमें धूल गिरनेपर

रास्ता चलते-चलते यदि आंखमें कोई कीड़ा पड़ जाय तो उसी वक्त

मुड़कर पीठकी ओरसे उसी तरफ चलना उचित है जिधर वह व्यक्ति जा रहा था। चलनेके समय उलटा अर्थात् पीछेकी ओर जाना होगा। हवाके उल्टे झोंकेसे दो-चार सेकेंडमें ही कीड़ा बाहर निकल जाता है।

यदि आंखमें धूल पर जाय तो आंखको बिलकूल हो नहीं रगड़ना चाहिये। एक स्वच्छ रूमालके एक कोनेको नुकीला लपेटकर उसके द्वारा मल बाहर निकालना उचित है।

यदि उसके बाद दर्द हो तो आंखके ऊपर दो-एक मिनटके लिये धीमा सेंक देना आवश्यक है।

नाकमें मटर गुब्बार घुसनेपर

नाकमें कोई वस्तु प्रवेश करनेपर उसे निकालनेका सर्वप्रधान व सहज उपाय ही है, मुंह एवं जो नाक मुक्त हो उसे दबाकर अवरुद्ध नासिकाके द्वारा जोरसे निश्वास परित्याग करना। इससे नाकके भीतर अवस्थित मटर इत्यादि अनायास ही बाहर निकल जाते हैं। कई बार हिचकी आने के कारण नाकके भीतर खाद्य आ जाते हैं। उस समय इसी प्रकार नाक झाड़कर नाक सांफ कर ली जाती है।

छींक उत्पन्न कर भी अनायास ही प्रविष्ट वस्तु बाहर की जा सकती है। इसके लिये रूमालका एक कोना महीन लपेटकर खुली नाममें घुसा दिया जाता है इससे नाकके भीतर गुदगुदी लगते ही अपने आप छींक आती है एवं उसीसे नाक साफ हो जाती है।

यदि रोगी शिशु हो तो उसकी खुली नाक आँख दबाकर जोरसे उसके मुंहमेंफूंक देना चाहिये। इससे श्वासनलीका द्वार अपने आप बन्द हो जाता है एवं फूंकके साथ प्रविष्ट वायु नासिकाके भीतर अवस्थित बटन या मटर आदि जो कुछ भी हो उसे ही जोरके साथ बाहर कर देती है। इससे यह सुविधा होती है कि छोटे-छोटे बच्चोंको इससे डर नहीं लगता। यह जिस किसी भी समय किया जा सकता है एवं नाकके भीतर प्रविष्ठ मटर इत्यादि फूल उठनेके पहले ही उसे बाहर कर दिया जाता है।

कानमें पानी घुसनेपर

नदी या तालाबमें डूब कर स्नान करनेके समय बहुत बार कानमें जल प्रवेश कर जाता है। तब कानमें और थोड़ा पानी देकर सिर एक ओर घुमाकर दो-तीन बार ऊपरकी ओर शरीर उछालते ही पानी स्वयं बाहर निकल जाता है। जिस कानमें जल प्रवेश करे उसी कानमें पानी देना चाहिये।

गलेमें कांटा चुभ जानेपर

मछली खानेके समय कभी-कभी गलेमें कांटा चुभ जाता है। इस समय कई एक ग्रास भात लड्डू की तरह बनाकर बिना चबाये गील जानेसे कांटा अपने आप नीचे उतर जाता है।

सरकना

[Choking]

हमलोग जो भोजन करते हैं वह श्वासनलीके ऊपरसे भीतर प्रवेश करता है। जब खाद्य भीतर जाता है तो श्वासनलीका द्वार स्वयं बन्द हो जाता है। निगलनेके समय बातें करनेपर या हंसनेपर श्वासनलीका द्वार बहुत बार भली-भांति बन्द नहीं हो पाता। उस समय खाद्यका कुछ हिस्सा श्वासनलीके भीतर प्रवेश करता है एवं श्वास बन्द हो जाता है। उस समय उसे बाहर करनेके लिये खांसीकी सृष्टि होती है। इसे ही सरकना कहते हैं। ऐसा होते ही सर्वप्रथम शरीर ढीला कर लेना आवश्यक है। ऐसा करनेपर प्रायः ही थोड़े समयमें आफत दूर हो जाती है। यदि ऐसा न हो तो अविलम्ब सिर नीचा कर लेना कर्तव्य है। इस अवस्थामें दोनों जांघ व हाथके ऊपर शरीरका भार रखकर खांसनेसे गला सहज ही साफ हो जाता है। इस समय एक घूंट पानी पीनेसे भी कभी-कभी खाद्यके कण पानीके साथ नीचे उतर जाते हैं। इस अवस्थामें खूब धीरे-धीरे दीर्घश्वास ग्रहण करना कर्तव्य है। इससे खाद्यके कण श्वासनलीके भीतर गम्भीर

रूपसे प्रवेश नहीं कर सकते एव बहुत बार खांसीके साथ यह बाहर हो जाता है। कण्ठनली (adam's apple) के ऊपर दबाव देनेसे भी वह कभी-कभी वह हट जाता है किन्तु यदि ऐसी अवस्था हो कि किसी तरहसे भी गला साफ न हो सके रोगीका श्वास बन्द हो जाय अथवा मूर्च्छा होनेका उपक्रम हो तो रोगीके मुंहके भीतर अंगुली देकर अवरुद्ध खाद्य-पदार्थ बाहर निकालने की चेष्टा करना उचित है। प्रायः ही दो-तीन बार ऐसी चेष्टा करनेपर गला साफ हो जाता है। रोगी बेहोश हो जानेपर कृत्रिम उपाय द्वारा श्वास-प्रश्वास लौटाना चाहिये। इसके लिये बिजलीका धक्का देखिये।

बच्चोंको सरक जानेपर बहुत बार माताएं उनके पांव पकड़कर नीचेकी ओर सिर झुला देती है एवं पीठके ऊपर जोरसे आघात करती है। बच्चों के गलेसे प्रतिबन्धक दूर करनेकी यह एक अच्छी पद्धति है। बच्चे यदि पैसे निगल लें तो उस समयभी ऐसा करना चाहिये। पेटके भीतर न जानेपर वह स्वयं ही बाहर निकल जाता है।

कीड़े मकोड़ों को काटना

[Bites and stings of insects]

कोई-कोई कीट-पतंग शरीरके भीतर डंक मारकर एवं किसी-किसी श्रेणी के कीड़े काटकर शरीरके भीतर तीव्र यन्त्रणा उत्पन्न करते हैं। डंक मारते ही या काटते ही दर्द आरम्भ होता है, आहत स्थान फूल उठता हैं, भारी मालूम होता है एवं उसके बाद धीरे-धीरे दर्द, फूलना व भार बोध कम हो जाता है। किन्तु कभी-कभी उस स्थानपर फोड़ा उत्पन्न होता है एवं रोगी अत्यन्त तकलीफ पाता है। बिच्छूके डंक मारनेपर बहुत बार एक ही रातमें मृत्यु होते देखी गयी है।

साधारणतः बर्रे, मधुमक्खी, बिच्छू (scorpion) व शतपद विशिष्ट वृश्चिक (centipede) आदिके द्वारा मनुष्य आक्रांत होता है। कोई कीड़ा डंक मारते ही डङ्क निकाल देनेकी चेष्टा करना कर्तव्य है।

छिद्रयुक्त एक चाभीको डंकके ऊपर रखकर थोड़ा दबाते ही डंक चाभीके छेदमें फँसकर निकल आता है। एक सन्नेके (चिमटी) द्वारा उसे अनायास ही निकाल लिया जा सकता है। नाखून द्वारा भी बहुत बार डङ्क बाहर निकाला जा सकता है। डङ्क इस प्रकार निकाल देनेसे जलन व दर्द बहुत कम हो जाती है। उसके बाद यथासम्भव ठंढी कादा मिट्टी घावके ऊपर प्रयोग कर गरम फलानेल द्वारा बांध रखना चाहिये एवं उसके गरम होते ही अथवा दर्द पुनः आरम्भ होते ही उसे बदल देना आवश्यक है। आवश्यकता होने पर मिट्टीके अन्दर बर्फ रखकर उसे प्रयोग किया जा सकता है। मिट्टी जिस प्रकार विष खींच लेती है उसी प्रकार दर्द को भी शीघ्र कम कर देती है। इसके अलावा मिट्टी प्रयोग करने पर वह स्थान प्रदाह-युक्त नहीं हो सकता। यदि मिट्टी न मिले तो घावपर बर्फ प्रयोग किया जा सकता है अथवा वेदना कम करनेके लिये शीतल जलकी धारा या बड़ी ठंढे पानीकी पट्टी प्रयोग की जा सकती है।

कटे हुए स्थानपर फोड़ा उत्पन्न होनेपर फोड़ेकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

पगले जानवरका काटना

[Rabies]

संसारमें जो दुर्घटनायें मारात्मक जैसी होती हैं उनमेंसे एक प्रधान है पगले जानवरों का काटना। इससे बहुत अवस्थामें जलातंक रोग (Hydrophobia) उत्पन्न होता है, इसलिये लोग इससे बहुत अधिक डरते हैं।

साधारणतः पगले कुत्तेका काटना ही अधिक देखा जाता है लेकिन कुत्तेके काटनेसे जितना क्षति नहीं होती, उससे अधिक होता है पगले भेड़िये (wolf) और बिल्लीके काटनेसे। इन सब जन्तुओंके काटनेपर प्रायः सर्वदा ही जलातंक रोग होता है। शृगाल या दूसरे मांसाहारी जन्तुओंके

काटनेसे भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

पशके जानवरोंके काटनेके बाद घाव शीघ्र ही सूख जाता है किन्तु ऐसा होनेसे विष भी चला जाता है ऐसी बात नहीं। वह शरीरके भीतर रह जाता है, एवं जिनकी रोग प्रतिरोध क्षमता कम है, उनके शरीरमें जलातंक रोग उत्पन्न करता है।

कभी-कभी काटनेके सिर्फ दस दिनोंमें रोगका प्रकाश होता है। किसी—किसी अवस्थामें काटनेके दो वर्ष बाद भी रोगका आक्रमण होता है। रोगाक्रांत व्यक्तियोंमें सैकड़े २० प्रतिशत काटनेके बाद तीस दिनोंके अन्दर आक्रांत होते देखे जाते हैं। सैकड़ा ८० व्यक्ति ६० दिनके भीतर रोगाक्रांत होते हैं एवं सैकड़ा एक आदमी चार महीनोंके बाद आक्रांत होता है (Roscoc L. Pullen, M.D., F.R.C.P.—Communicable Diseases, P. 546, Philadelphia, 1950)।

रोगीको पहली अवस्थामें रोगी अस्थिर, विमर्श एवं क्रोधी स्वभावका हो जाता है। साथ ही साथ ज्वर एवं खाद्य ग्रहण करनेमें अक्षमता प्रकट होती है। बादमें क्रमशः उन्मत्तावस्था, श्वासकष्ट एवं खांसी आरम्भ होती है। इसी खांसीके लिये साधारणतः अनुमान किया जाता है कि जलातंकका रोगी कुत्तेकी तरह बोलता है। उस समय रोगीके कानमें कोई ऊँची आवाज जानेपर अथवा उसकी आँखोंपर तेज रोशनी पड़नेपर या उसे पानी पिलानेकी थोड़ी-सी भी चेष्टा करनेपर उसके शरीरमें मरोड़ (convulsion) उपस्थित होता है। इससे इस रोगको जलातंक कहा जाता है। तथापि अच्छा रहनेपर वह स्वस्थ व्यक्तिकी तरह बातें करता है। किन्तु क्रमशः वह दुर्बल होने लगता है एवं तीन-चार दिनोंमें ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

सन् १८८५ ई० में पास्तरने जलातंक रोग आरोग्यके लिये विशेष इंजेक्शनका आविष्कार किया। उस समय सारी पृथ्वी पर एक आशाकी किरण फूट पड़ी किन्तु शीघ्र ही यह किरण म्लान हो गई। एक बार हिसाब

करके देखा गया है कि पगले जानवरोंके काटनेपर पास्तर इनस्टिच्यूटोंमें जिनकी चिकित्सा हुई है उनमेंसे सेकड़े ५-६ की मृत्यु हो गई (Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 45, Philadelphia, 1951)। अपितु कोई चिकित्सा न करनेपर भी सैकड़े ९ से अधिक मनुष्योंकी मृत्यु नहीं होती।

उसकी अपेक्षा भी आश्चर्य का विषय यह है कि अमेरिकाके कई एक राष्ट्रोंमें जहां गत पाँच वर्षोंके भीतर पगले जानवरोंके काटनेसे कोई मृत्यु नहीं हुई, उन्हीं सब जगहोंमें अति सतर्कता हेतु प्रतिषेधक चिकित्साके फलस्वरूप कई मौतें हुई (Ibid., p. 45)।

गृहपालित कुत्ते सर्वदा ही लोगोंको काटते हैं किन्तु उससे किसीको जलातंक रोग नहीं होता। यदि कुत्ता पागल नहीं होता तो कोई इन्जेक्सन लेनेकी जरूरत नहीं होती (Louis H. Merker, M.D.—Until the Doctor comes p. 139, Toronto, 1953) उसके अलावा बहुत स्वास्थ्य-प्रतिष्ठानों (boards of health) का यही अभिमत है कि काटनेसे उत्पन्न हुए घावको दग्ध (cauterise) करने की भी आवश्यकता नहीं है। साबुनके पानीसे घावको अच्छी तरह धो देना ही यथेष्ठ होता है (Ibid., p. 139)।

किन्तु कोई पगले जानवरके काटनेपर अविलम्ब उसकी प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ करना कर्तव्य है कारण वह विष यदि देहके भीतर रह जाय तब वह क्रमशः स्नायु-केन्द्र एवं देहके अन्यान्य यन्त्रोंपर आक्रमण कर जलातंक रोग उत्पन्न करता है।

पगले जानवरोंके काटते ही, सांपके काटनेपर जैसे रस्सी द्वारा बाँधा जाता है, उसी तरह घाव व देहपर इस तरह रस्सी बाँधना चाहिये जिससे कि नीचेका रक्त ऊपर न उठ सके। इसके बाद वह स्थान एक ब्लेडके द्वारा चीरकर विषाक्त रक्त बार-बार मुंह द्वारा चूसकर थूक देना चाहिये। प्रति बार रक्त चूसकर जल द्वारा कुल्ली कर लेनी चाहिये। यदि रोगीकी इच्छा हो तो बन्धन देने के बाद वह स्वयं चूसकर विष बाहर कर

दे सकता है। किन्तु मुंह व जीभमें घाव रहनेपर कभी उस विष को चूसना उचित नहीं है एवं घावके मुंहको दबाकर उसका रक्त बाहर कर देना चाहिये।

विषाक्त रक्त निकालनेके बाद स्थानको नीबू रस मिले हुए पानीसे धोकर साफ कर लेना कर्तव्य है। अथवा गरम साबुनके पानीसे २० मिनट तक क्षत धोना आवश्यक है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 49, Philadelphia, 1954)।

उसके बाद घावपर आधा इंच मोटी साफ कादा मिट्टीकी पुलटिस भारी फ्लानेलके द्वारा ढक देना चाहिये एवं प्रति आध घंटेसे एक घन्टेके अन्तरसे बदल देना उचित है। पट्टीके नीचे गर्मी उत्पन्न होनी चाहिये। अर्थात् पट्टीके प्रयोगसे घावके मुंहके चारों तरफका चमड़ा जिससे शीतल न हो जाय। पट्टी गरम न होनेपर एक गरम जलकी बोतल या थैली थोड़ी देरके लिये पुलटिसके ऊपर रक्खी जा सकती है। मिट्टी इकट्ठी न हो सके तो भींगे कपड़ेकी आवृत्त पट्टी प्रयोग करना कर्तव्य है।

इस समय कई दिनोंतक रोगीको उपवास कराने से अत्यन्त लाभ होता है। कोई कहते हैं कि दांत काटनेके विष द्वारा देहकी क्षति प्रतिरोध करने में उपवास जैसा सुनिश्चित उपाय और दूसरा नहीं है (Harry Benjamin Everybody's Guide to Nature Cure, p. 468, London, 1952)। रोगी यदि बहुत दिनोंतक उपवास न कर सके तब उसे दो-तीन दिनों के लिये अवश्य ही उपवासमें रखना चाहिये कि इस समय नींबूके रसके साथ प्रचुर जल पान करना कर्तव्य है। उपवास तोड़ने पर रोगीको फलोंके रस व फलोंपर रखना उचित है। फल संग्रह करनेमें कठिनाई होने पर सलाद, टटके शाकका कच्चा रस व मधु-जलके ऊपर रखना कर्तव्य है। सम्पूर्ण स्वस्थ होनेपर रोगी धीरे-धीरे साधारण पथ्यपर लौट आ सकता है।

तो काटनेके बादके एक वर्षतक सावधान रहना उचित है। इस समय प्रति सप्ताह एक बार नीम पानी का डूस लेना चाहिये एवं काफी पानी

पीकर भीतरसे शरीरको धो डालना उचित है। इसके अलावे रोगीका प्रधान पथ्य ही होना चाहिये फल, फलोंके रस,टमाटर, धनिया पत्ता, गाजर आदिका सलाद, सिझायी तरकारी व मट्ठा। बीच-बीचमें उपवास अत्यन्त जरूरी है।

सर्प-दंशन

[Snake-bites]

पृथ्वीपर जितने साँप हैं उन्हें दो हजारसे भी अधिक श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है। इनमें वजन एवं लम्बाईमें काफी पार्थक्य है। सिर्फ ६ इञ्चसे लेकर ३० फुटतकके होते हैं। पृथ्वी पर ऐसे साँप भी देखे जाते जिनका वजन ३०० पाउण्ड है। पुनः ऐसे भी साँप हैं जिनका वजन कुछ ही औंसतक है। किन्तु सभी साँप विषाक्त होते हैं ऐसा नहीं। सैकड़े १५ से भी कम साँपोंके विषदांत होते हैं एवं उनमेंसे आधेसे अधिक साँपोंके काटनेसे ही मनुष्य मर सकता है।

सर्पदंशन यदि मस्तिष्क या धड़में कहीं हो तब हाथ-पांवके दंशनकी अपेक्षा वह अधिक मारात्मक होती है एवं हाथके दंशन पाँवकी दंशनकी अपेक्षा अधिकतर विपद्जनक होते हैं। सर्पदंशनसे वयस्क व्यक्तियोंकी जितनी मृत्यु होती है उससे दुगुणी होती है शिशुओंकी (W. F. Von Oethingen, M.D., Ph.D.—Poisoning, p.462, New York, 1954)।

साँपके काटते ही मनुष्य मर जायेगा इसका कोई मतलब नहीं। कारण बहुत-से साँप ऐसे हैं जिनमें विष नहीं होता। किन्तु किसी भी साँपके काटनेपर मनुष्य अवसन्न हो जाता है। ऐसा केवल विषके कारण होता है ऐसी बात नहीं। लोग अकारण ही डरकर मृत्युके मुँहमें चले जाते हैं। बहुत-सी अवस्थाओंमें देखा जाता है कि झाड़-फूँक व टोटका आदि द्वारा सांपसे डंसा हुआ व्यक्ति चंगा हो उठता है। जब विष शून्य सांपके डसने, पर डरकर लोग अवसन्न हो जाते हैं, केवल उसी समय झाड़-फूंक

से उपकार होता है।' बहुत-सी अवस्थाओंमें इनके द्वारा रोगीका विश्वास लौट आनेके कारण अवस्थाकी उन्नति होती है। बहुत-सी तथाकथित परीक्षित दवाइयां इसी प्रकार लोगोंका विश्वास लाभ करती हैं।

विषाक्त सांपके डसनेपर डसा हुआ स्थान फूल उठता है, रोगीका शरीर अवसन्न हो आता है, छाती धड़फड़ करती है, श्वासकष्ट उपस्थित होता है, रोगी बेहोश हो जाता है, शरीरमें लकवा मार जाता है, मरोड़ (convulsions) प्रकट होता है एवं प्रतिकार न होनेपर रोगी मर जाता है। किसी किसी समय आध घन्टेके अन्दर रोगीकी मृत्यु हो जाती है। और कभी-कभी रोगी ५ से ६ हफ्ते तक बचा रहता है। उस अवस्थामें बहुत बार घावके पास फोड़ा उत्पन्न होता है एवं रोगीके तकलीफकी सीमा नहीं रहती।

सांपके डसते ही घावसे थोड़ा ऊपर इस प्रकार कसकर बांधना चाहिये जिससे रक्त चलाचल सम्पूर्ण बन्द हो जाय एवं नीचेका विषाक्त खून ऊपर न चढ़ सके। रस्सी जितनी कसकर बांधी जाय उतना ही अच्छा है, यदि ढीली रह जाय तो कलम आदि घुसाकर रस्सीको कलममें लपेट देनेपर रस्सी काफी कस जाती है।

उसके बाद डसा हुआ स्थान एक तेज छूरी या ब्लेड आदि द्वारा आधा इञ्च गहरा व एक इञ्च लम्बा करके काट देना उचित है। उसके बाद पानी डालकर उस स्थानको अच्छी तरह धो देना चाहिये एवं दबा-दबाकर जहरीला खून बाहर निकाल देना आवश्यक है। तत्पश्चात् एक व्यक्ति को घावको चूसकर जहरीला खून निकालकर थुत्कार करके फेंक देना उचित है। रोगी स्वयं अथवा उसका कोई आत्मीय-स्वजन इसे कर सकता है। प्रति घन्टा एवं कई घण्टोंतक इस तरह रक्त चूस लेना कर्तव्य है एवं प्रति बार २० मिनटके लिये चूसना आवश्यक है (Vincent J. Brooks and Hubert N. Alyea, professor of chemistry—Poisions,

p. 169, New York, 1946)। रक्त चूसनेमें डरना नहीं चाहिये। कारण रक्त यदि पेटके भीतर चला भी जाय तो उससे कोई क्षति नहीं होती (Hamilton Baily, F. A. C. S., and R. J. Mcneill Love, M. S.—A Short Practice of Surgery, p. 11, London, 1956)। कारण जब यह रक्तस्त्रोतके साथ मिलनेकी सुविधा पाता है तभी यह क्षति कर सकता है। हर बार खून निकालकर थूक देनेके बाद मुँह कुल्ली करके साफ कर लेना चाहिये। मुंहमें घाव न रहनेपर इससे कोई नुकसान नहीं होता। किन्तु यदि मुंहमें घाव हो तो ऐसा कभी भी करना उचित नहीं। इसके बाद रोगीकी आंखें बन्द कर उत्तप्त लाल लोहेके द्वारा या जलते हुए कोयलेके द्वारा डसा हुआ स्थान जला देना चाहिये। इससे विष जल जाता है।

जलाना संभव न होने पर एक मुरगीके बच्चेका नितम्ब देश (पीछेका हिस्सा) काटकर उसका कटा हुआ स्थान रोगीके घावके साथ जोड़ देना चाहिये। जबतक विष रहे मुरगीको रोगीके शरीरसे जोड़नेके थोड़ी देर बाद ही वह बेहोश हो गिर जाता है। तब और एक मुरगी लाकर उसी प्रकार उसे घावसे जोड़ देना चाहिये। जब इस प्रकार लगाते लगाते मुरगीका बच्चा न मरे तब समझना चाहिये कि विष खतम हो गया।

तथापि उसके बाद भी बड़ी तथा आध इञ्च मोटी मिट्टीकी पुलटिस आध घंटे बाद-बाद बदलकर घावके ऊपर प्रयोग करना चाहिये एवं उसे फलानेलसे ढक देना आवश्यक है। इस समय रोगीको बार-बार गरम पानी पीलाना उचित है। उससे शरीरको दोषमुक्त करनेमें सहायता की जाती है। किन्तु रोगीको पेशाव हो रहा है या नहीं इस ओर लक्ष्य रखना आवश्यक है। यदि रोगी पानी पीनेमें असमर्थ हो तो डुषकी सहायतासे थोड़ा-थोड़ा करके गरम पानी उसके शरीरमें घुसा देना चाहिये।

डसनेके बाद रोगीका शरीर प्रायः हिम हो जाता है। उस समय हाथ एवं पांवपर गरम पानीका बोतल आदि प्रयोग कर एवं उसका

शरीर गले तक ढककर गरम रखना कर्तव्य है एवं जिससे शरीर ठंढा न हो जाय इसके लिये सभी प्रकारसे चेष्टा करना आवश्यक है।

रोगीको शांत होकर विश्राम करना चाहिये। तकलीफसे छटपटाने पर रोगीकी अवस्था शीघ्र खराब हो सकती है।

यदि रोगी बेहोश हो जाय या श्वास-प्रश्वास बन्द हो जाय तो कृत्रिम उपायसे श्वास-प्रश्वास लौटना आवश्यक है।

रोगीका हृदय कमजोर हो जानेपर उसके ऊर्ध्व मेरुदण्डपर दो मिनट गरम सेंकके बाद दो मिनट ठंडा देकर बीच बीचमें २० मिनटके लिये गरम-ठंढा प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करनेपर अन्यान्य अवस्थाओंकी तरह इनमें भी हृदय चंगा हो उठता है।

मुझसे एक सज्जन ने कहा है कि सांपसे डसे हुए एक व्यक्तिको श्मशान ले जानेके समय रास्तेमें उतारकर गलेतक मिट्टीमें गाड़ दिया और चार-पांच घटेके बाद पुनः दूसरी जगह गाड़ रखनेकी व्यवस्था की। इससे उसका शरीर गरम हो गया एवं उसने एक बार आंखें खोलकर देखा। पर वहां ताप आदि प्रयोग करनेकी सुविधा न होनेपर उसे बचाना संभव न हो सका।

डसे हुए स्थानका बंधन अचानक नहीं खोलना चाहिये। यह जान लेनेपर कि अब शरीरमें विष नहीं है, कुछ समय विराम देकर थोड़ा-थोड़ा गांठ खोलना उचित है। कुछ विष रहने पर भी इस प्रकार वह एक साथ ही शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकता एवं शरीरका बहुत कम ही नुकसान करता है।

जबतक रोगी संम्पूर्ण रूपसे स्वस्थ न हो तबतक उसे कुछ भी खाने देना उचित नहीं। किन्तु इस समय उसे प्रचुर पानी पिलाना चाहिये। उसके बाद उसे कुछ दिनोंतक फल व फलोंका रस देना उचित है।

—:०:—

चतुर्दश अध्याय

रोग-निर्णय

(Diagnosis)

विभिन्न रोग शरीरमें विभिन्न रूपसे प्रकट होते हैं और विभिन्न रोग शरीरमें विभिन्न अवस्था भी उत्पन्न करते हैं। इन सभी अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओंका अवलम्बन करके भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंका सामना करना पड़ता है। इसलिये हमेशा ही रोग पहचाननेकी आवश्यकता होती है और स्वस्थ अवस्थामें शरीरकी प्रकृति और रुग्ण अवस्थामें उसकी विकृति के हालतको भली-भाँति जाननेकी जरूरत होती है।

रोगीको नाड़ी सांस शरीरकी गरमी, मल, मूत्र और कफ इत्यादिकी अवस्था रोग-निर्णय करनेमें विशेष रूपसे सहायता करती है। रोगीकी जीभ, पेट और लीवर आदिकी भी जांच करनेकी आवश्यकता होती है। ये सब जांच करके रोगीकी शरीरकी अवस्था और रोगकी अवस्थाके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त की जाती है।

पूरे जवान आदमीकी नाड़ीकी चाल मिनटमें साधारणतया ७२ बार होती है। जन्मके समय बच्चेकी नाड़ो साधारणतया १४० बार चलती है। और एक वर्षतक इसी रूपसे चला करती है। इसके बाद उम्र बढ़नेके साथ-साथ धीरे-धीरे नाड़ीकी चाल कम होती जाती है। शिशु रहने तक नाड़ी १२० बार चलती है, बाल्यावस्थामें प्रायः १०० बार, जवानमें ९० बार, प्रौढ़ावस्थामें ७५ बार, और बूढ़े होनेपर ६० से ७० बार तक चलती है।

विभिन्न अवस्थाओंमें नाड़ीकी चाल भिन्न-भिन्न होती है। सोये रहने की अपेक्षा उठकर खड़े होने में इसकी चाल ५ से १० बारतक बढ़ जाती है। दौड़कर आनेमें इसकी चाल १६० या उससे भी अधिक हो

सकती है। फिर डर जाने या मानसिक अवसन्नताके कारण कभी-कभी ५० बारसे भी नीचे उतर जाती है। ज्वरके समय नाड़ोकी चाल बढ़ी रहती है। परन्तु पीलिया, यूरेमिया, पुराना अजीर्ण, गठियां, संन्यास, न्यूमोनिया, मेनिनजाइटिस और सन्निपात बुखारमें मामूली तौरसे नाड़ी की चालकम हो जाती हैं।

कब्जेके ऊपर जो नाड़ी है उसके ऊपर हाथके तीन अंगुलियोंको रखकर नाड़ीकी चाल गिन सकते हैं। परन्तु जिस समय हाथ में नाड़ीका पता नहीं मिलता उस समय केहुनी या घुटनेकी उलटी तरफ बरदनके ऊपर और कानके सामनेवाली जगहोंपर अंगुलीसे छूकर नाड़ीकी चालका पता लगाया जाता है।

नाड़ीकी जांचके समय उसकी धरकन गिननेकी लिये सदा ही एक घड़ी रखना उचित है। परन्तु इस जांच में केवल धड़कन गिनना ही काफी नहीं हैं। इस समय उसकी आवाज, उसका ढङ्ग, उसका आयतन, उसकी कमजोरी या मजबुती आदिकी परीक्षा करना आवश्यक है। स्वस्थ नाड़ी पूरे समयकी पाबन्दी रखते हुए मृदुगतिसे चलती हैं। इसमें व्यतिक्रम हो तो समझना होता है कि नाड़ी ठीक नहीं है। नाड़ीकी चाल हृदय और शरीरको हरेक अवस्था प्रकट करती हैं। कम-कभी नाड़ी बहुत तेज चलती है। यदि नाड़ी दुर्बल हो या बहुत तेज चल रही हो तब इसको सदा दुर्बलताका लक्षण समझना चाहिये। इस प्रकारकी नाड़ीको चपल नाड़ी (frequent pulse) कहते हैं। जब यहै खुब धीरे-धीरे-चलती है तब उसे धीर नाड़ी (low pulse) कहते हैं। जिस समय मस्तिष्कमें विषका असर होता है या संन्यास रोग हो जाता है या मनुष्य शराब या अफीम खाकर बेहोश हो जाता है, उस समय नाड़ीकी चाल असम्भव रूपसे दुर्बल हो जाती है। अंगुली दबानेसे जब नाड़ी सूतकी तरह पतली मालूम हो, उस समय वह पतली नाड़ी (thready pulse) कही जाती है। हैंजा आदि रोगमें जब शरीर बहुत दुर्बल हो जाता हैं, उस समय ऐसा ही होता है।

यह हार्टफेल्योरका एक अचुक लक्षण है (Rudolph H. Kamp-mirer, M. D.—Physical Examination in Health and Disease, p. 501, Philadelphia, 1954)।

नाड़ीके ऊपर अंगुलीकी चाप पड़ते ही तुरंत अगर वह चुप हो जाय तो उसे दुर्बल नाड़ी (feeble pulse) कहते हैं। यह अत्यन्त दुर्बलता या थकावटका लक्षण है। नाड़ी चलते-चलते जब एक दो धड़कन बाद देकर चलती है उस समय वह सविराम नाड़ी (intermittent pulse) कही जाती है। इससे हृदयका कोई रोग सूचित होता है। जब नाड़ी कभी तेजीके साथ और कभी धीरे-धीरे चलती है या कभी झोंकसे और कभी सुस्तीके साथ चलती हैं तब उस नाड़ीको असम नाड़ी (irregular pulse) कहते हैं। कळेलेकी बीमारियोंमें साधारणतया ऐसी ही चाल रहती है। परीक्षाके समय यदि यह अनुभव हो कि नाड़ी पुष्ट है तब उसे पूर्ण नाड़ी (full pulse) कहेंगे। स्वस्थ लोगोंकी नाड़ी अधिक परिश्रमके समयतक ऐसी चलती है। कभी कभी अंगुलीमें नाड़ीका पता भी नहीं मिलता, इसको लुप्त नाड़ी कहते हैं। इससे हृदयकी अत्यन्त अवसन्न अवस्था प्रकट होती है। कभी-कभी नाड़ी ऐसी सबल होती है कि अंगुलीके दबावसे वह नहीं रुकती। इसको कड़ी नाड़ी (hard pulse) कहते हैं। बुढ़ापेमें जब नाड़ीकी नस दुर्बल हो जाती है तब ऐसी ही चाल होती है।

रोगीकी सांसकी चालें भी बहुत-सी बातें बताती हैं। पैदा होने-पर बच्चोंकी सांस हर मिनटमें करीब-करीब ४० बार चलती है। इसके बाद आयुके बढ़नेके साथ ही इसकी संख्या भी कम होती जाती है। २ वर्षके बच्चेकी सांस हर मिनट ३५ बार चलती है। २ से लगभग ९ वर्षकी आयुतक साधारणतया २३ बार, ९ से १५ वर्षकी आयु-तक २० बार और इसके बाद जवानोंमें सांसकी चाल प्रायः १८ बार हो चलती है। एक बार सांस लेने और छोड़नेको एक गिनते हैं। कई कारणोंसे सांस लेने और छोड़नेकी गिनतीमें कमी और बेसी भी हो

सकती है। शारीरिक परिश्रम, मानसिक उत्तेजना, गरमीमें रहना, बुखार सूक्ष्म सांस-नलियोंकी सूजन, न्यूमोनिया, प्लूरिसी, यक्ष्मा और कभी-कभी खूनकी कमीकी बीमारी आदिसे सांसोंकी संख्यामें वृद्धि हो सकती है। फिर दमा, मेनिनजाइटिस, दिमागका ट्यूमर, संन्यास, बहुमूत्र रोगके कारण अचेतन निद्रा, यूरेमिया और हृत्पिण्डकी मेदापकर्षकता (fatty degeneration of the heart) आदि बीमारियोंमें सांसोंकी संख्या बहुत कम हो जाती है। अफीम और कोई कड़ी दवा विषम मात्रामें लेनेसे भी ऐसा होता है। नींदके समय और बहुत सर्दीमें सांस लेने तथा छोड़नेकी संख्या कम हो जाती है। छातीके उत्थान और पतनकी संख्याकी गिनती करके या छातीके नीचेके भागमें हाथ लगाकर सांसकी संख्या गिनी जाती है। औरतोंकी सांसकी गिनतीके लिये छातीके ऊपरके हिस्सेपर ध्यान देना होता है और पुरुषों तथा तीन सालतकके बच्चोंके पेटके निचले भागपर ध्यान रखकर सांसोंकी गिनती अच्छी तरह हो सकती है। स्वस्थ सांस सर्वदा शब्द-शून्य निकलता है।

बीमारीको समझनेके लिये शरीरकी गरमीका परिमाण जानना भी बहुत आवश्यक है। स्वस्थ अवस्थामें शरीरकी गरमी साधारणतया ९८° रहती है। शरीरकी गरमी सबसे कम रहती है सवेरेके समय ६ से ७ बजेके भीतर। इसके बाद शरीरकी गरमी बढ़ने लगती है और यह सबसे अधिक हो जाती है ५ से ७ बजे शामतक। धीरे-धीरे रातमें यह कम होती है। बुखार के समय शरीरकी गरमी बढ़कर ११०° तक हो सकती है या नीचे होकर ९०° तक हो जा सकती है। जब यह गरमी, १०६° से ऊपर होकर ९५° से नीचे गिरे तब समझना चाहिये कि रोगीकी अवस्था बहुत भयंकर हो गयी है। जिस समय शरीरकी गरमी ९६° से नीचे रहती है उस समय उसको अवसन्न अवस्थाका ताप (collapse temperature) कहा जाता है। शरीरकी गरमी ९६° से ९७° तक आ जाय तो उसे अस्वाभाविक कम गरमी (sub-normal temperature) कहते हैं, ९९·२° से १००·४° तकका

मामूली बुखार (slight temperature); १००.५०° से १०३° तक बीचके दर्जेका बुखार (moderate temperature), १०३° से १०५.४° तक बेशी बुखार (high fever) और १०५.४° से ऊपर जानेपर उसे अधिक बुखार (hyper pyrexia) कहा जाता है। यक्ष्मा, न्यूमोनिया, आंतका बुखार, छोटी माता और मलेरिया आदिमें बुखारकी गरमी विभिन्न प्रकारकी होती है। बहुत बार तो बुखारका ढंग देखकर बीमारी बता दी जा सकती है। बुखारका ताप साधारणतः थर्मामीटरसे देखा जाता है, वह गैलिलियोका आविष्कार है किन्तु सिर्फ सन् १८५२ ई० से ही नियमित रूपसे इसका प्रचलन शुरू हुआ है (Ralph H. Major, N. D.— Physical Diagnosis, p. 46, Philadelphia, 1953)। बुखार देखनेके पहले थर्मामीटरके पारेको ९५° से नीचे ले आना जरूरी है और कांखको अच्छी तरहसे पोंछकर थर्मामिटर लगाना उचित है। थर्मामीटर अलग न ,रह जाय इसलिये कांखमें उसे लेकर हाथको दबाकर रखना चाहिये। ठीक-ठीक गरमीको जाननेके लिये थर्मामीटरको बगलमें ३ मिनेटोंतक रहने देना चाहिये। जीभके नीचे थर्मामीटर रखकर इससे कम समयमें गरमी जान ली जाती है। मुंहके भीतरकी गरमी असली गरमीसे साधारणतया १ डिग्री अधिक रहती है। मुंहमें थर्मामीटर लगाना हो तो प्रतिबार अच्छी तरहसे ठंढे पानीसे धो लेना चाहिये। जब ताप गुह्यद्वारमें लिया जाता है तब वह सबसे ज्यादा ठीक–ठीक होता है। गुह्यद्वार के भीतर थर्मामीटर डेढ़ इन्च घुसाकर यह लिया जा सकता है। गुह्यद्वारका ताप (rectal temperature) जीभ के नीचेके ताप (sub-lingual temperature) को अपेक्षा ०.७° बेशी रहता है एवं बगलका ताप (axillary temperature) मुंहके तापको अपेक्षा १° कम होता है। (Harry Walker, M. D., F. A. C. P.—Physical Diagnosis, p. 35, St. Louis, 1952)।

हमलोगोंके शरीरकी गरमी, सांस और नाड़ीकी चालेमें एक प्रकारका

सम्बन्ध है। जिस समय शरीरकी गरमी बढ़ती है उस समय प्रत्येक डिग्री गरमीपर प्रति मिनट ३ बार सांस और १० बार करके नाड़ीकी चाल बढ़ जाती है। इस प्रकार यदि किसीकी स्वाभाविक गरमी ९८°, नाड़ीकी चाल ७२ और सांस प्रति मिनट १८ बार चलती हो, और शरीरकी गरमी यदि ९९° हो जाय तो नाड़ीकी चाल ८२ बार और सांसकी धड़कन २१ बार हो जायेगी। नाड़ी, सांस और गरमीके इस हिसाबमें यदि गड़बड़ी हो तो उसे भारी खतरनाक समझना चाहिये। विशेषकर यदि ऐसी गड़बड़ी अधिक दिनोंतक चलती रहे या गड़बड़ी अधिक ही हो तो समझना पड़ेगा कि रोगीकी हालत अच्छी नहीं है। नाड़ीकी तुलना श्वास-प्रश्वासकी ऐसी वृद्धि न्यूमोनियाका एक प्रधान लक्षण है। यदि नाड़ीकी चाल दिनोंदिन बढ़ती जाय और उसके साथ शरीरकी गरमी न बढ़े तब समझना चाहिये कि कलेजा धीरे-धीरे कमजोर होता जा रहा है। सन्निपात, मेनिनजाइटिस और कलेजेकी सूजनमें गरमीकी तुलनामें नाड़ीकी चाल बहुत कम रहती है।

रोगीके पेट, यकृत, जीभ और आँखकी जाँच भी बराबर होती रहनी चाहिये। पेटकी जांच करते समय रोगीको चित सुलाकर उसके दोनों पैरोंको मोड़ देना उचित है। पहले पेटपर कई जगह अंगुली दबाकर जांच की जाती है। भीतर कहीं कोई कड़ी चीज है कि नहीं या ऐसे दबावसे रोगीको कुछ दर्द होता है या नहीं, इसमें यही देखना पड़ता है। ऐसा होनेसे समझना चाहिये कि पेटके भीतरका कोई यंत्र सूज गया है। कभी-कभी रोगीके पेटमें वायु रहती है। रोगीके पेटपर बायें हाथकी मध्य अंगुली रखकर दाहिने हाथकी मध्य अंगुली के द्वारा उसपर चोट करनेसे एक प्रकारका ढबढब शब्द सुनाई पड़ता है। पेटमें वायु रहनेसे सदा ही ऐसी ढबढबकी आवाज होती है। पेटके भीतर लीवर या पिलही बढ़ गयी हो तो भी वही आवाज थपथप (dull) होती है। इसलिये पेटपर हाथ रखकर ही यह पकड़ लिया जा सकता है कि वह कितना बड़ा हो गया है। किसी-किसी कारण कभी-कभी पेट खूब फूला रहता है। पेटके भीतर हवा

या पानीका इकट्ठा हो जाना, लीवर और पिलहीकी वृद्धि ट्यूमर, गर्भावस्था और पेटमें चर्बी बढ़ जानेसे ऐसा होता है। मलेरियामें और कभी-कभी सिफलिस रोगमें प्रायः लीवर बढ़ जाता है। लीवरमें सिरोसिस होनेके कारणसे यह कड़ा हो जाता है। मलेरिया, कालाज्वर, सन्निपात ज्वर और प्लेगमें पिलही बढ़ जाता है। गुरदेकी जाँच करनेमें रोगीको बिछावन पर बैठाकर उसके पीछेकी ओर खड़ा होना होता है। इसके बाद दाहिने हाथकी अंगुली पांजरके नीचे चाप देकर देखा जाता है। इस समय यदि रोगी जोर से सांस ले तो मामूली बढ़ा हुआ लीवर भी पकड़में आ जाता है। दुर्बल रोगीको लेटाकर भी उसके लीवरकी परीक्षा लेते हैं। इस समय दोनों पैरोंको मोड़ लेना जरूरी है। और रोगीको जोरसे सांस लेनेकी जरूरत है। रोगीकी परीक्षा लेनेकी समय उसकी दाहिनी ओर बैठकर, बायां हाथ इस प्रकार पांजरके नीचे रखना पड़ता है कि अंगुठा पंजरोंके नीचे ओर बाकी चारों अंगुलियां रीढ़पर रहें। दाहिना हाथ उस समय पेटके ऊपर रखकर नाभिपर चाप दिया जाता है। इसके बाद पेटपर चाप देते-देते दोनों हाथोंको धीरे-धीरे लीवरके नजदीक लाते हैं। इसी समय जब रोगी सांस छोड़ता है तब लीवरका किनारा हाथमें पकड़ा जाता है। रोगी यदि गहरी सांस ले तो यह खूब अच्छी तरहसे पकड़में आ जाता है। लीवर बड़ा या सख्त हो गया है कि नहीं यह जाननेके लिये इसी तरह जांच करना चाहिये। परन्तु इसमें यह जानना जरूरी है। कि बच्चोंका लीवर स्वाभाविक रूपसे नीचेकी तरफ कुछ बढ़ा होता ही है। बच्चेकी उम्र जब छः सालकी हो जाता है उस समय लीवरका किनारा शेष पंजरके बराबर रहता है और उसके बाद उम्रके बढ़नेके साथ ही साथ वह पंजरके भीतर दब जाता है। परन्तु खड़े होनेके समय बड़ी उम्रवालोंका लीवर भी सदा पंजरके बाहर प्रायः आधे इञ्चतक झूल जाता है।

रोगीकी जीभकी भी सदा परीक्षा होना चाहिये। इस समय जीभका कद और रंग, जीभ गीली है या सूखी और उसपर लेप चढ़ा हुआ है या

नहीं यह देखना जरूरी है। जीभ यदि हलके सफेद लेपसे ढकी हुई हो तो यह साधारणतया पायरिया, मुंह, गला और पक्वाशय आदिकी सूज या कोई बुखारकी बीमारी बताता है। जीभ यदि चौड़ी और चमकती न हो तब वह शरीरकी अत्यन्त दुर्बलता और रक्तशून्य अवस्था बताती है। जीभ यदि पतली हो, विशेष रूपसे उसके पीछेका भाग पतले लेपसे ढका हुआ हो किन्तु उसका किनारा और सामनेका भाग लेपसे ढका हुआ न हो तब वह किसी आंत्रिक ज्वरको प्रकट करती है। यदि जीभका सफेद लेप, सूखा और बादामी रंगका हो जाय तो यह सान्निपातिक ज्वर दर्शाता है और रोगीके लिये संकटापन्न अवस्थाकी सूचना देता है। जीभका लाल किनारा और बीचमें तथा पीछेके भागका सफेद लेप विभिन्न श्रेणीके अजीर्ण रोगका प्रकाश करता है। फेफड़े और हृदयकी किसी-किसी बीमारीमें जीभ लाल रंगकी हो जाती है।

सभी रोगोंमें मलकी अवस्थाकी परीक्षा करनेका प्रयोजन है। कितनी बार पैखाना होता है, थोड़ा या अधिक मल होता है, उसका रंग क्या है, किस ढंगका होता है, मलके भीतर पीव, आंव, खून या बिना पचा अनाजनका दाना रहता है या नहीं; यह सब देखना आवश्यक है। साधारणतया प्रतिदिन ६ औंस मल निकलता है। या यों समझें कि हमलोग जितना खाते हैं उसके आठ भागमें एक भाग मल होकर निकलता है। स्वस्थ मल साधारणतया गोल और लम्बा, भूरे रङ्गका और न कड़ा न पतला होता है। कब्जियत मल बहुत कड़ा और बहुत थोड़ा होता है। दस्त हो तो उसका मल पतला और हल्दीके रङ्गका और अधिक परिमाणमें होता है हैजाका मल चावलके धोवनकी तरह सफेद होता है, कीड़ोंके हलचलके कारण आंतके भीतर यदि मल सड़ गया हो तो बहुत बार उसका रंग हरा होता है। कभी-कभी रोगीका रंग सफेद रङ्गका होता है। जब इतना चर्बी-जातीय पदार्थ खा लिया जाता है कि वह पच नहीं सकता तब ऐसा ही होता है। यदि मलका रंग कादोके रंगका हो तब समझना होगा कि लीवर अपना काम ठीक-ठीक नहीं कर रहा है

या पित्तकी नालीका मुंह बन्द हो गया है। इसीसे कमला रोगमें कभी-कभी कड़ा पाखाना होता है। पक्वाशय आदिसे खून बहनेसे पाखाना अलकतराकी तरह काला होता है। ऊपरकी आंतके घावसे जो विष निकलता है वही मलको ऐसा काला कर देता है। यदि मलके भीतर आंव हो तब समझना होगा कि पेचिसकी शिकायत हुई है। मलके भीतर आँव और खुन हो तो उसे खूनी पेचिस कहते हैं। जब मलके भीतर रस्सीकी तरह आँव रहता है या आँव पैखानेके साथ-साथ मिला हुआ होता है या कड़े पैखानेसे लिपटा हुआ आँवका आवरण रहे तब समझना होगा कि रोगीको संग्रहणी (colitis) हुई है। पैखाना करते समय खून टपके तब वैसा प्रायः बवासीरमें ही होता है। बहुत बदबूदार मल आँतके सड़नेकी हालत (intestinal putrefaction) बताता है। अत्यधिक चीनी और चर्बी-जातीय खाद्य खानेसे बहुत बार मल गन्धयुक्त होता है।

पेशाबकी हालत भी सदा देखनी चाहिये। रोगीको कितनी बार पेशाब होती है, उसका परिमाण कितना होता है, रंग क्या होता है, बहुत बदबूदार होता है कि क्या और पेशाबमें गाद बैठता है कि नहीं, यह सब बराबर देखना चाहिये। स्वस्थ अवस्थामें एक वयस्क व्यक्तिको साधारणतया हर चौबीस घंटेमें १,५०० सीसी या ५० औंस या डेढ़ सेर पेशाब होता है। स्त्रियोंको थोड़ा कम होता है। बच्चोंको उनकी उम्रकी हिसाबसे बहुत ज्यादा पेशाब होता है क्योंकि वे खासकर तरल खाद्य खाते हैं। १५ वर्षोंके बाद साधारणतया वयस्क आदमियोंके समान ही पेशाब होता है।

विभिन्न कारणोंसे मूत्र कम बेश होता है। ज्यादा पानी पीनेसे ज्यादा पेशाब होता है। शीत ऋतुमें ग्रीष्मकी अपेक्षा अधिक पेशाब होता है। बरसातमें भी ऐसा ही होता है। जो दिनभर बैठे रहते हैं, उनसे कामकाजी आदमीकी अपेक्षा बहुत ज्यादा पेशाब होता है। जो स्नायविक रोगोंसे ग्रस्त है, उसे बा-बार पेशाब होता है।

पुनः थोड़ा पानी पीनेसे, शुष्क या ग्रीष्म ऋतुमें अधिक काम करनेसे ज्यादा पसीना होने के बाद एवं ज्वर, नये मूत्र-ग्रन्थि प्रदाह और हृद्रोगमें पेशाब साधारणतः कम होता है।

पेशाब और पसीनेके मध्य एक परिपूरक व्यवस्था वर्तमान है। पेशाब कम होनेसे पसीना ज्यादा होता है और पसीना कम होनेसे पेशाब बढ़ जाता है। साधारण हालतमें दैनिक डेढ़ सेर पेशाब होता है और अदृश्य पसीनेको मिलाकर पसीना कुल डेढ़ सेर होता है। ग्रीष्मकालमें जब पेशाब कम हो जाता है, तब पसीना अधिक होता है ; फिर शीतकालमें जब पसीना कम हो जाता है तब पेशाबकी मात्रा बढ़ जाती है।

साधारणतया रातसे दिनमें अधिक पेशाब होता है। साधारणतया दिनमें जितना पेशाब होता है, रातमें उसका आधा होता है किन्तु, मूत्र-यंत्रकी पुरानी बीमारीमें यह अवस्था नहीं रहती। उस समय रातमें दिनकी अपेक्षा ज्यादा पेशाब होता है।

बहुत हालतोंमें मूत्र-यंत्रके रोग, यही रोगलक्षणके साथ प्रगट होते हैं (Khagendra Nath Maitra, B. Sc., M.B., and Nabakumar Banerjee M.Sc., M.R.A.S.—A Guide to the Examination of Clinical Materials, p. 12, Calcutta, 1937)।

साधारणतया पेशाबका रंग भूसेके रंगके समान होता है। मधुमेहकी बीमारीमें और अधिक पानी पीनेसे पेशाबका रंग पानी की तरह होता है। पेशाबके साथ खून हो तो खूनका रंग गुलाबी या लाल होता है। पेशाबमें जब थोड़ा खून मिला होता है तब उसका रंग बहुत बार धूमिल होता है। पेशाबका रंग हरा हो तो समझना चाहिये उसमें पित्त मिल गया है। कमला रोगमें ऐसा पेशाब होता है। स्वस्थ मूत्र साधारणतया साफ होता है परन्तु बहुत देरतक एक जगह पड़ा रहे तो उसके भीतर कफका मामूली गाद बैठता है। यदि पेशाबके ठंडे होनेके साथ-साथ उसमें गुलाबी अथवा हल्दीके रंगका गाद बैठे और बर्तन दाग लग जाये तब

समझना होगा कि उसमें यूरिक एसिड जातिकी चीज है। वह साधारणतया गठिया या मूत्राशयकी पथरी रोगका संकेत करता है।

जिन रोगियोंको कफ निकलता है उनके कफकी परीक्षा करना भी जरूरी है। कफका परिमाण, गन्ध और रंग आदि रोगकी अवस्थाके विषयमें बहुत-सी बातें बताते हैं। सांसकी नालीकी नयी सूजनकी प्रथम अवस्थामें, गलेकी सूजनमें और कुकुर-खांसीमें बहुत कम कफ बाहर निकलता है। परन्तु सांसकी नालीकी पुरानी सूज, यक्ष्मा और न्यूमोनिया आदि रोगोंमें, बहुत खखार निकलता है। सूखी प्लूरिसीमें बहुत खांसी रहनेपर भी कफ बिल्कुल नहीं निकलता। ब्रङ्काइटिसकी बीमारीमें कफ पानीके समान फेनसे भरा हुआ निकलता है। फेफड़ेकी सूज या कलेजे और पेशाबके यंत्रकी बीमारीमें भी ऐसा ही कफ निकलता है। नये ब्रङ्काइटिसकी शेष अवस्थामें कफ गाढ़ा और कुछ अधिक हरा रहता है। पुराने ब्रङ्काइटिसमें भी ऐसा ही होता है। फेफड़ेके भीतर गड्ढा हो जाय तो साधारणतया हल्दीके रंगका और तेलके समान गाढ़ा कफ निकलता है। इस प्रकारके कफको यदि पानीमें डालें तो वह चपटा और गोल सिक्केकी तरह दिखायी पड़ता है। यदि कफका रंग जंग पड़ा हुआके समान दिखायी पड़े और यदि वह बर्तनमें इस तरहसे लगा रहे कि बर्तन उलटनेसे भी वह न गिरे, तब ऐसा होनेसे वह न्यूमोनियाका आक्रमण प्रकट करता है। कभी-कभी कफके साथ खून दिखायी पड़ता है। मामूली एकाध छींटेसे लेकर बहुत ढेरसा भी खून निकल सकता है। परन्तु यक्ष्माकी बीमारी होते ही ऐसा होने लगता है यह समझना भूल है। क्योंकि कंठकी नाली और हवाकी नालीमें मामूली चोट या गरमीके घाव, छातीकी बीमारी या स्त्रियोंके ऋतु बंद होनेसे इस प्रकार खूनकी उल्टी हो सकती है। कफके साथ खून रहनेसे उसका रंग सदा लाल होता है। न्यूमोनियामें कफका रंग धूमिल होता है। कफ यदि साफ न हो, सफेद और हल्दीके रंगका हो और उसमें फेन या बुलबुला न रहे और यदि वह पानीमें डूब जाय तब समझना होगा कि उसमें पीब है।

कभी-कभी खखार बहुत बदबूदार होता है। साधारणतया यक्ष्मा, फेफड़ेका गैंग्रिन (gangrene) और उसमें फोड़े होनेसे कफसे दुर्गन्ध आती है।

बहुत अवस्थाओंमें वेदनासे भी रोग-प्रकृतिका पता लगता है। साधारणतया चमड़ेके जिस स्थानपर दर्द मालूम होता है उसके ठीक नीचे शरीरके बिल्कुल भीतरके किसी यंत्रमें दर्द होनेसे ही यह ऊपर मालूम होने लगता है। परन्तु एक ही स्थानपर कई यंत्र रहते हैं। किसी यंत्रको बीमारीसे दर्द हो रहा है यह समझना जरूरी है। किस कारण दर्द होता है यह समझकर चिकित्सा करनी चाहिये। किसी-किसी हालतमें दर्दकी जगहसे दूसरी जगह हटकर भी दर्द मालूम होता है। इसको परोक्ष वेदना (reflex pain) कहते हैं। इस तरहका दर्द पित्तशूलमें दाहिने कंधेके नीचे और पेटमें मालूम होता है। मूत्र-यंत्रके रोग (renal colic) में पेट, लिंग, अण्डकोष और पैखानेके छेदके बीचका जो स्थान (perineum) है उसमें दर्द मालूम होता है। न्यूमोनियामें कई बार पेटके एक ही तरफ दर्द होता है। कलेजेके दर्दमें तकलीफ दाहिने कंधे और पूरे बायें हाथके ऊपरसे लेकर अंगुलीतक फैला हुआ होता है। उरु सन्धिके रोगमें अनेक बार घुटनेमें दर्द होता है। डिम्बकोषकी सूजनमें उस तरफकी छाती, गर्दन, सिरकी खोपड़ी, पीठ और घुटनेके भीतर दर्द मालूम होता है।

इन सबोंके अतिरिक्त रोगके निर्णयके लिये रोगकी प्रकृति, रोगका स्थितिकाल, रोगका इतिहास, व्यक्तिगत आहार-विहार, वासस्थानकी अवस्था और सिफलिस, गनोरिया और गठिया आदि बीमारियां पहले हुई हैं या नहीं यह अनुसन्धान करना चाहिये।

पंचदश अध्याय

प्रयोग-विधि

चिकित्सा करनेके पहले विभिन्न प्रयोग-विधियोंके सम्बन्धमें परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वास्तवमें प्रकृतिक चिकित्साकी सफलता ही निर्भर करती है निर्मूल प्रयोगके ऊपर। नीचे वर्णमालाके क्रमसे विभिन्न प्रयोग–विधियां व उनकी उपकारिता दी गई है।

आसन :—ऋषियोंका निकाला हुआ यह एक प्रकारका व्यायाम है। नियमित रूपसे आसन ग्रहण करनेसे परिपाक क्षमता बढ़ती है, कोष्ठबद्धता दूर होती हैं, स्नायु सबल हो उठती हैं, बुद्धि व स्मरण शक्ति बढ़ती है, विभिन्न अंतःस्रावी ग्रन्थियों (endocrine gland) को कार्यक्षमता बढ़ती है, उसके फलस्वरुप शरीरका गढ़ना व तोड़नामें (metabolism) वृद्धि होता है, शरीरकी रोग-प्रतिरोध-क्षमता बढ़ जाती है एवं यौवन दीर्घस्थायी हो जाता है। आसन सुबह या शाम या दोनों वेलाके भीतर बांठकर करना चाहिये। किन्तु प्रधान आहारोंके कमसे कम पांच घंटे बाद आसन करना चाहिये। इसके अलावा इसमें धीरे-धीरे अभ्यस्त होना चाहिये। इन आसनोंका अभ्यास कर सकनेसे नवजीवन प्राप्त होता है एवं किसी रोगका होना ही कठिन हो जाता है।

उड्डीयान :—पद्मासनमें बैठकर इस तरह श्वांस छोड़ना होता है कि पेट खाली हो जाता है। फिर पेटको यथासम्भव भीतरकी ओर खींचकर मेरुदंडके साथ सटाना होता है। यह आसन खड़े होकर तथा कुछ भुककर दोनों हाथ घुटनोंपर रखकर भी किया जाता है। इस आसनके अभ्याससे कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, स्वप्नदोष, हर्निया, एपेन्डिसाइटिस एवं विभिन्न स्त्री-रोगोंमें अत्यन्त लाभ होता है।

उत्थान-पादासन :—चित होकर सोकर दोनों पैरोंको सीधी रेखामें ३०° डिग्रीके कोणमें कुछ देरतक रखनेसे यह आसन हो जाता है।

इस समय दोनों हाथ सिरके पीछे सीधा बिछावनपर पड़े रहते हैं। इस आसनके करनेसे पेट सबल होता एवं परिपाक क्षमता पूर्ण रूपसे बढ़ती है।

धनुरासन :—पेटके बल सोकर दोनों हाथोंसे दोनों पावोंकी फिल्लीको पकड़कर मेरुदण्ड धनुषको टेढ़ा करनेसे ही यह आसन हो जाता है। उस समय केवल पेटके ऊपर शरीरका सारा भार रहता है। इस आसनमें मेरुदण्डका लचीलापन बढ़ता है, स्नायविक दुर्बलता दूर होती है, तोंद पचक जाती है एवं अजीर्ण रोगमें अत्यन्त लाभ होता है।

भुजङ्गासन :—पेटके बल सोकर एवं हाथके ऊपर शरीरका भार रखकर धीरे-धीरे नाभिसे ऊपरके देहको ऊपर उठानेसे ही यह आसन हो जाता है।

शवासन :—शरीरको शिथिल (relax) करनेका नाम शवासन है। बिछावनके ऊपर चित होकर सोकर एवं दोनों आखें बंद कर एक-एक कर देहके प्रत्येक अंग, पैर, पेट, छाती, हाथ, सिरके सम्बन्धमें सोचना पड़ता है कि ये अंग शिथिल हो गये हैं। इससे द्वारा आसानीसे निद्रा आती है, क्रोधका वेग दूर हो जाता है, थकावट दूर हो जाती है, मन शान्त व संयत होता तथा स्मरणशक्ति बढ़ती है। इसके अलावा इसके द्वारा सभी नये रोगोंकी तीव्रता कम हो जाती है। इसलिये शवासन सभी रोगोंकी अद्वितीय प्रधान चिकित्सा है (rest cure)।

सर्वाङ्गासन :—चित होकर सोकर धीरे-धीरे सारे शरीरको इस प्रकार ऊपर उठाना होता है कि दोनों पाँव सीधा ऊपर आकाशकी ओर रहता है और स्कन्धके ऊपर सारे शरीरका भार रहता है। इस आसनसे अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, आलस्य, मानसिक अवसाद आरोग्य होते हैं, यौवन दीर्घस्थायी एवं बुढ़ापा दूर चला जाता है। सुबह सोकर उठते ही दो ग्लास जल पीकर इस आसनके करनेसे निश्चित रूपसे कोष्ठ साफ हो जाता है। जरायुका बहिर्गमन, हार्निया व गुदा-द्वारका बहिर्गमन प्रभृति रोगोंमें सर्वाङ्गासन कर साथ-साथ उड्डीयान करनेसे तुरंत बाहर निकले हुए यंत्र अपनी जगहपर आ जाते हैं।

शीर्षासन :—जमीनपर सिर एवं दोनों पांव शून्यमें उठाकर यह आसन किया जाता है। शीर्षासनको आसनोंका राजा कहा जाता है। इस आसनके अभ्याससे स्नायविक शक्ति, स्मरणशक्ति व दृष्टि प्रभृति बढ़ती है एवं यौवन दीर्घस्थायी हो जाता है।

हलासन :—चित्त होकर सोकर व दोनों पाँव ऊपर उठाते हुए सिरके पीछे सीधा ले जाकर भूमिपर रखनेसे यह आसन हो जाता है। यह आसन मेरुदण्डका ही नहीं समस्त शरीरका एक अति श्रेष्ठ व्यायाम है।

उष्ण पादस्नान (hot foot bath) :—दोनों पैरोंको काफी गरम पानीमें डुबोकर बाल्टी सहित समस्त शरीरको कम्बलसे गले-तक लपेट लेनेको ही गरम पादस्नान कहते हैं। उस समय सिरमें भींगी तौलिया लपेट रखना चाहिये एवं बादमें नातिशीतोष्ण जलसे शरीर पोंछ लेना चाहिये अथवा घर्षण स्नान (cold friction) लेना उचित है। दुर्बल रोगीको सुलाकर, बैठाकर या अधलेटे अवस्थामें यह प्रयोग किया जा सकता है। वाष्पस्नानकी तरह उष्ण पादस्नानके द्वारा भी लोमकूपोंको खोलकर व शरीरका यथेष्ट विकार बाहर कर दिया जाता है। जब जाड़ा व कँपकँपीके साथ बुखार आता है अथवा हठात् ठंडा लग जाता है तब दोनों पांव गरम पानीमें डुबोनेसे ठंड व कँपकँपी दूर हो जाती है।

कटिस्नान (hip bath) :—हिपबाथ द्रष्टव्य।

कच्चे अनाजोंका सलाद (salad) :—प्रति दिन कुछ कच्ची शाक-सब्जी ग्रहण करना स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है। कच्ची शाक-सब्जियों के द्वारा अति उत्तम व्यंजन तैयार किया जाता है। उसे सलाद कहते हैं। धनिया-पत्ता, लेटूस शाक, पुदीना-पत्ता, खीरा, प्याज, बीट, गाजर, टमाटर, अंकुरित मूंग या चना, मूली व मटर प्रभृति सहित नीबूका रस, किशमिश, नारियल, प्रभृति मिलाकर अति उत्तम सलाद तैयार किया जाता है। विभिन्न फल भी काटकर उसके भीतर दिया

जाता है। यदि इसके साथ कुछ दही मिला दिया जाय तब सलाद अत्यन्त स्वादिष्ट व पुष्टिकर हो जाता है।

शाक-सब्जी साधारणतः पकाकर खाया जाता है। किन्तु पकायी हुई शाक-सब्जीकी त्रुटि यही है कि पकानेके समय खाद्यके कई विटामिन नष्ट हो जाते हैं। यह देखा गया है कि पकानेके बाद खाद्यद्रव्य रख देनेसे १६ से ६४ प्रतिशत थियामिन, २ से ७१ प्रतिशत नायासिन, २२ से ४५ प्रतिशत रिबफ्लाबिन एवं २८ से ९३ प्रतिशत विटामिन-सी नष्ट हो जाता है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 442, London, 1946)। इस कारण आजकल सारी पृथ्वीमें ही कुछ शाक-सब्जी कच्ची अवस्थामें खाई जाती है। इस कारण जो शाक-सब्जी व फल खाया जायगा वह यथासम्भव ताजा व साफ-सुथरा होना जरूरी है।

क्रमवर्धमान व्यायाम (graduated exercise):—नये रोगोंमें विश्राम ही चिकित्सा है किन्तु रोग आरोग्यके बाद धीरे धीरे क्रमवर्धमान व्यायाम अभ्यास करना चाहिये। हठात् पहले दिन ही दीर्घ समयके लिये या कष्टसाध्य व्यायाम कभी नहीं करना चाहिये। पहले-पहल एक-आध मिनटके लिये खूब हलका व्यायाम कर क्रमशः व्यायामका समय व तीव्रता बढ़ाई जाती हैं। इससे देह व देहका प्रत्येक यंत्र नया हो जाता है।

क्रमवर्धमान स्नान (graduated bath):—दुर्बल व अनभ्यस्त रोगीको हठात् स्नान न कराकर पहले-पहल थोड़े समयके लिये तौलिया स्नान (sponge bath) कराना चाहिये। उसके बाद रोगीके क्रमशः अभ्यस्त होनेके बाद धीरे धीरे स्नानका समय व उसकी तीव्रता बढ़ाई जाती है। बादमें रोगी परिपूर्ण स्नान ले सकता है। अभ्यास नहीं रहनेपर हठात् उसे शीतल जलसे भी स्नान कराना उचित नहीं। पहले-पहल थोड़े समयके लिये कुछ गरम पानीसे स्नान करा क्रमशः पानीकी गरमी कम करते-करते अन्तमें कुछ दिनोंके बाद शीतल जलसे

स्नान करना होता है। जीवनी शक्तिको बढ़ाने और रोगके कीड़ोंका आक्रमण रोकनेके लिये ठंढे जलके स्नानके जैसा और कुछ नहीं है। कमोवेश प्रत्येक रोगीको दिनमें दो बार स्नान करना कर्तव्य है एवं रातमें सोने के पहले सिर धुलाकर उसका सारा शरीर भींगे गमछेके पोंछ देना आवश्यक है।

गरम कम्बलका पैक (hot blanket pack) :—यह गीली चादरके पैकके समान है। भींगी चादरके बदले इसमें पशमी अलवान या कम्बल गरम जलमें डुबोकर प्रयोग करना होता है। इससे थोड़े ही समयमें रोगीका शरीर गरम हो उठता है।

गरम-ठंढी कुल्ली (alternate gargling) :—एक पात्रमें गरम जल एवं एक पात्रमें ठंढा पानी रखकर एक बार गरम जल एवं उसके बाद ठंढे जलसे कुल्ली करनेसे ही गरम-ठंढी कुल्ली हो जाती है। साधारणतः एकसे दो मिनटोंके लिये गरम पानीसे कुल्ली कर उसके बाद एकसे दो मिनटोंके लिये ठंढे जलसे कुल्ली करना आवश्यक है एवं एक साथ दो से तीन बार कुल्ली करना कर्तव्य है। आखिरी बार कुछ गरम ठंढा पानी व्यवहार करना उचित है। भयानक दाँत-दर्द भी इससे कम हो जाता है। दिनमें दो बार मिट्टी द्वारा दंत-मंजन कर दो बार गरम-ठंढी कुल्ली लेना ही मुंहके समस्त रोगोंकी सर्वप्रधान स्थानीय चिकित्सा है।

गरम-ठंढी पट्टी (alternate compress) :—इसमें एकसे पाँच मिनट गरम सेंक देकर उस स्थानको ठंढे पानीमें भिगोये गये गमछे द्वारा अच्छी तरहसे ठण्डा करना होता है। साधारणतः एक साथ बीस मिनटसे आधे घंटेके लिये इसे देना जरूरी है। गरम-ठण्डा प्रयोगसे आक्रान्त अंगकी रक्तवाही नलियाँ क्रमानुसार प्रसारित व संकुचित होती हैं। इस कारण उससे दूषित पदार्थ बाहर हो जाता है एवं नया खून बार-बार देह गठनका मसाला ले आता है। इस कारण इस पट्टीके प्रयोगसे दुर्बल व आक्रान्त अंग थोड़े ही समयमें चङ्गा व रोगमुक्त हो जाता

हैं। वर्तमान एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्रमें इसे contrast bath कहते है।

गरम-ठंढा हिपबाथ (alternate hip bath):—एक हिप-बाथके टबमें गरम जल एवं दूसरेमें ठण्ढा जल रखकर बाद-बाद गरम व ठंडे जलमें बैठनेसे ही गरम-ठण्ढा हिपबाथका लेना हो जाता हैं। यह बाथ लेनेके पहले सिर धो लेना जरुरी हैं एवं एक साथ तीन बार ग्रहण करना कर्तव्य है। यह बाथ कुछ दी लेनेसे पेटके समस्त यंत्र सबस्था प्राप्त करते हैं, पाचन शक्ति बढ़ जाती हैं, अजीर्ण दूर होता है, जनन यन्त्रोंके विभिन्न रोग अन्तर्हित होते है एवं बस्तिप्रदेशके समस्त यन्त्र ही नये हो जाते है।

गलेकी पट्टी :—गलेके चारों ओर एक भींगा व निचोड़ा हुआ कपड़ा लपेटकर पशमी मफलर प्रभृति द्वारा उसे अच्छी तरह ढक लेनेसे ही इस पट्टी का लेना हो जाता है। गला साधारणतः गरम होता है, इसलिये गलेके चारों ओर दो से चार तहतक भींगा कपड़ा रखना आवश्यक हैं। खद्दरका कपड़ा व्यवहार करनेसे दो तह ही काफी होता हैं। यह गलेके जिस किसी भी रोगमें प्रयोग किया जा सकता है।

घर्षण स्नान :—एक भींगे गमछेके द्वारा (तौलिया नहीं) दाहिना हाथ ढककर एवं गमछेके अवशिष्टांशको हाथके ऊपर बाएँ हाथके द्वारा सख्तीसे पकड़कर दाहिने हाथ से रोगीका शरीर घर्षण करनेसे ही घर्षण स्नानका लेना हो जाता हैं हाथके सामनेकी ओरका गमछा तना हुआ होना आवश्यक हैं। एक बारमें देहके मात्र एक ही छोटे अंशको इस तरह रगड़कर लाल व गरम कर लेनेसे एवं बादमें ढककर दूसरे अंशमें आया जाता है। देहको गरम अवस्थामें घर्षण स्नान आरम्भ करना होता है एवं घर्षणके अन्तमें यह देखना होता है कि घर्षण करते-करते शरीर गरम हो उठा कि नहीं। घर्षणके अन्तमें वह स्थान ठण्ढा हो जानेपर गरम जलके बोतल प्रभृति द्वारा दो-चार सेकेण्डके भीतर उसे फिर गरम कर लेना

आवश्यक है। ठीक-ठीक तरहसे घर्षण स्नान प्रयोग कर सकनेसे मृतप्राय रोगी नवजीवन लाभ करता है।

छातीकी सरल पट्टी—रोगी यदि इतना दुर्बल हो कि उसे कन्धेसे लपेटकर छातीकी पट्टी नहीं दी जा सकती तब यह प्रयोग किया जा सकती है। रोगीको एक पेटकी पट्टी देकर उसे गलेतक उठा देनेसे ही यह पट्टी हो जाती है, अर्थात् रोगीके कंठसे नाभि पर्यन्त स्थान एक भींगे कपड़ेके द्वारा पेट पीठ घुमाकर लपेटकर बादमें अलवान प्रभृति द्वारा ढककर बाँध देनेसे ही इस पट्टीका देना हो जाता है।

ढकी हुई पट्टी (heating compress)—जब पानीकी पट्टीका कपड़ा खुले रूपसे रखा जाता है तब उसे ठण्ढी पट्टी (cold compress) कहते हैं। और जब उसे अच्छी तरह निचोड़कर फ्लानेल या अन्य किसी गरम कपड़े द्वारा मोटा करके अच्छी तरहसे ढक दिया जाता है, तब उसे ढकी हुई पट्टी कहते हैं। इसे इस तरहसे ढकना आवश्यक है जिससे भीतरमें गरमीका संचार हो। इसे प्रयोग करनेपर यदि क्रमानुसार ठण्ढा मालूम पड़े तो इससे कुछ भी उपकार नहीं होता। आवृत्त पट्टी शरीरके विभिन्न स्थानोंमें प्रयोग किया जाता है। जब गलेके चारों ओर इसे प्रयोग किया जाता है तब उसे गलेकी पट्टी, छाती व गरदनके चारों ओर देनेसे छातीकी पट्टी, सिर्फ छातीके चारों ओर देनेसे छातीकी सरल पट्टी, पेटके चारों ओर देनेसे पेटकी पट्टी, नितम्बमें देनेसे विस्तिकी पट्टी जांघोंमें देनेसे जांघोंकी पट्टी, पैरमें देनेसे पैरकी पट्टी, धड़के चारों ओर देनेसे धड़की पट्टी, एवं गलेसे पैरतक समस्त शरीर ढककर देनेसे भींगी चादरकी पट्टी बोली जाती है। इस पट्टीके प्रयोगसे चमड़ेके नीचे लोमकूप खुल जाते हैं एवं उस रास्ते प्रचुर रोग-विष शरीरसे बाहर हो जाता है। इस कारण इसके प्रयोगसे रोग कम हो जाता है।

तापबहुल गरम-ठंडी पट्टी (revulsive compress)—किसी स्थानपर पाँच मिनट या अधिक समयके लिये गरम सेंक देकर उसके तुरंत बाद ही आधे मिनटके लिये खूब शीतल जलमें भिंगोये गमछेके द्वारा

21

उस अंशको पोंछ देना होता है। इस तरह एक साथमें तीन बार करना आवश्यक है। गरमसे शुरू कर ठण्डेमें इसे शेष करना चाहिये। इसकी उपकारिता गरम-ठण्डा पट्टोके अनुरूप हैं।

तौलिया स्नान (sponge bath)—एक आॅयल क्लाथ या माष्टिक कपड़ेके ऊपर चादर बिछाकर उसके ऊपर रोगीको गलेतक कम्बलसे ढकी हुई अवस्थामें सुलाना होता है। उसके बाद रोगीका सिर, मुँह व गला अच्छी तरह शीतल जल द्वारा धो दिया जाता है। इसके बाद प्रत्येक बार रोगीके देहका एक-एक अंश अनावृत्त कर उस स्थान को शीतल जलमें भींगी हुई तौलिया द्वारा ५ सेकेण्ड तक पोंछकर बादमें ५ सेकेण्डतक उस स्थानकी खाली हाथसे रगड़कर, उसके बाद ५ से १० सेकेण्डतक दूसरी सूखी तौलियासे पोंछकर, अन्तमें वह अंश कम्बलसे ढककर, फिर देहके दूसरे हिस्सेको उसी तरहसे पोंछना होता है। पहले रोगीका एक हाथ, उसके बाद दूसरा हाथ, फिर पेड़ू, छाती, पैर व जाँघोंके ऊपरकी ओर एवं सबके अन्तमें पीठ, पैर व जांघोंके पीछेकी ओर व नितम्ब पोंछना होता है। रोगी जितना ही ठण्डे पानीका अभ्यस्त हो जाता है, उतना ही ठंढा पानी व्यवहार करना कर्तव्य है (५०° डिग्रीतक)। तौलिया स्नानके अन्तमें रोगीके जानुसंधि व जननेन्द्रियका ऊपरी भाग भींगी तौलिया द्वारा जिससे अच्छी तरह पोंछा जाय एवं उस स्थानसे काफी गरमी निकाल लिया जाए, उसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है। अधिकतर रोगी ही स्वतः ऐसा कर सकते हैं।

पथ्य—नये रोगके समय प्रकृति घर साफ करनेमें व्यस्त रहती है। तब रोगीको अधिक खिलानेसे शरीर साफ करनेके कामसे उसे परिपाक प्रभृति कामकी ओर लौट आना होता है। उससे रोग दीर्घस्थायी हो जाता है। इसके अलावा प्रबल नये रोगोंमें विभिन्न यंत्रोंकी परिपाक क्षमता ही बहुत अन्शोंमें कम हो जाती है। उस समय रोगीको अधिक खाने देनेसे, वह देहके काममें आता है ऐसा नहीं।

वरन् उस अवस्थामें खाद्य-पदार्थ शरीरके लिये विषाक्त पदार्थमें बदल जाते हैं।

इस कारण कोई नया रोग होते ही पहले यथासम्भव उपवास कराना आवश्यक है एवं केवल नीबूके रसके साथ पानी पीकर रहना कर्तव्य है। इससे प्रकृतिको घर साफ करनेमें काफी सहायता मिलती है। इसके बाद रोगीको अत्यन्त हलका खाना देना चाहिये। रोगीको इस समय विभिन्न फलोंके रस, रसयुक्त फल, छेनेका पानी, हलका मट्ठा, बारह घन्टा भिगोए हुए किशमिशका पानी, तरकारीका पतला सूप एवं मधुके साथ जल देना उचित है।

पहले बुखार होते ही रोगियोंको साबूदाना व बार्लि प्रभृति दिया जाता था किन्तु वे सब खाद्य जिस तरह अत्यन्त अरुचिकर होते हैं, उसी प्रकार साबूदाना, बार्लि प्रभृति चबाकर खाया नहीं जाता इसलिये अच्छी तरह पचता नहीं। कारण श्वेतसार जातीय खाद्य अच्छी तरह चबाकर नहीं खानेसे उसी शरीरके काम नहीं आता। इसके अलावा उन सब खाद्योंमें विटामिन व धातव लवण प्रभृति रक्षाकारी खाद्य कुछ भी नहीं रहता। इसके विपरीत फलका रस, तरकारीका सूप व मट्ठा प्रभृति परम सुस्वादु एवं विभिन्न विटामिन व धातव लवणोंके श्रेष्ठ आधार हैं। ये सब खाद्य शरीरके भीतर जाकर रोग-विषको नष्ट करते हैं (neutralise) एवं प्रकृतिको घर साफ करनेमें सहायता करते हैं। रोगके समय इस प्रकारका पथ्य देना चाहिये जो विशेष रूपसे पुष्टिकर, सहजपाच्य, अनुत्तेजक व क्षारधर्मी हों।

पाकस्थलीकी गरम पट्टी (hot abdominal compress)—खानेके बाद जिनका भोजन पेटमें नहीं रहता एवं उल्टी होकर बाहर हो जाता है, उनको पाकस्थलीकी गरम पट्टीसे बड़ा उपकार होता है। रोगीके स्तनके नीचेसे नाभी पर्यन्त स्थानके चारों तरफ पेटकी पट्टी लेकर पाकस्थलीके ऊपर जितना गरम सह्य हो उतना ही गरम जलकी थैली व बोतल रखना आवश्यक है। उसके बाद एक कम्बल द्वारा पेटकी पट्टी व

गरम थैलो अच्छी तरह ढक देनेसे ही यह पट्टी लिया जाता है। आधे घंटेके बाद गरम थैली हटा लेनी चाहिये एवं उसके आधे घन्टे के बाद रोगीको खाना देना चाहिये।

पैरकी पट्टी (foot pack)—पैरकी फिल्लीसे लेकर जानुसंधि-तक अलग अलग दोनों पैरोंको निचोड़े हुए भींगे कपड़ेके द्वारा लपेटकर बादमें फ्लानेल द्वारा मोटा करके ढक देनेसे ही इस पैकका लेना हो जाता है। इस समय लक्ष्य रखना चाहिये कि जिससे दोनों पांव गरम रहें। अधिक गरम नहीं रहनेपर बीच-बीचमें पांवके ऊपर गरम जलकी बोतल व थैली रखकर दोनों पांवोंको हमेशा गरम रखना आवश्यक है। यदि पैर ठण्डे हो तो पट्टी नीचेके पैरोंमें न देकर दोनों घुटनोंके ऊपर देना चाहिये। पट्टी लेनेके बाद रोगीका सारा शरीर गलेतक कम्बल द्वारा ढक देना आवश्यक है एवं सिरको भींगी तौलिया द्वारा ठंढा रखना कर्तव्य है। यह पट्टी ऊपरके शरीरके आक्रान्त अङ्गोंसे दूषित रक्त नीचे ले आता है एवं कुछ समयमें ही आक्रान्त अङ्गोंकी रक्तबद्धता दूर होती है एवं अस्वस्थता कम हो जाती है। इस कारण ऊपरके देहके तमाम रोगोंमें यह यथेष्ट सफलतासे प्रयोग किया जा सकता है।

पेटकी लपेट (the wet girdle)—एक भींगे कपड़े द्वारा स्तनरेखासे पेड़ूकी शेष सीमातक समस्त स्थान दो–तीन बार घुमाकर बांधकर बादमें उसे अच्छी तरह फ्लानेल द्वारा लपेट लेनेसे ही इस इस पट्टीका लेना हो जाता है। कोष्ठ साफ करने एवं पेटके विभिन्न यन्त्रोंको सबल व दोषशून्य करनेमें यह जादू मन्त्रकी तरह काम करता है। एक नये कपड़ेके टुकड़ेको दोनों ओरसे फाड़कर बाइन्डरकी तरह बाँध देनेसे पट्टी खिसक नहीं सकती एवं सहज ही इसके भीतर गरमीका सञ्चार होता है।

पानीकी पट्टी (cold compress)—खूब शीतल जलमें भिगोया कपड़ा शरीरके किसी अंशपर रखकर गरम हो उठते ही बदल देनेसे ही जल-पट्टीका देना हो जाता है। पानीकी पट्टी सदा ही घड़ा

करके प्रयोग करना चाहिये। शरीरके जिस अंशपर पट्टी प्रयोग किया जाता है, उस अंशके आक्रान्त स्थलसे चारों ओर काफी दूरतक पट्टी द्वारा ढककर रखना कर्तव्य है।

विभिन्न रोगोंमें शरीरके विभिन्न स्थानोंमें यह पट्टी प्रयोग किया जा सकता है। स्नायु व धमनी प्रभृतिके द्वारा बाहरके चमड़ेके साथ हमारे आभ्यन्तरिक यंत्र संलग्न हैं। इस कारण विभिन्न यंत्रोंके रोगोंमें उन यंत्रोंके ऊपर स्थित चमड़ेके ऊपर पानीकी पट्टी प्रयोग कर उसके ऊपर प्रभाव फैलाया जा सकता है।

पानी पीना—हमारा शरीर क्षण-क्षण क्षय हो रहा है। जो सब जीवकोष नष्ट हो जाते हैं, रक्त उसे धोधाकर देहसे बाहर कर देता है। किन्तु रक्तमें जलीय अंशका अभाव होनेसे वे नष्ट जीवकोष देहके भीतर रह जाते हैं एवं देहके दूषित संचयको बढ़ाते हैं।

देहसे बहुत-सा जहर प्रतिदिन बाहर हो जाता है मूत्रके द्वारा। मूत्रके भीतर ४ प्रतिशत यूरिया, यूरिक एसिड प्रभृति मारात्मक विष रहता है।

इसलिये रोग या स्वस्थ अवस्थामें प्रतिदिन काफी पानी पीना चाहिये। जलपानका श्रेष्ठ समय ही है प्रातःकाल निद्रा त्यागनेके बाद, प्रत्येक दो भोजनोंके मध्यवर्ती समयमें एवं पेट जब खाली रहता है।

किन्तु बहुधा शरीर में जलकी माँग ही नहीं रहती। उन अवस्थाओं-में शरीरमें पहले इस मांगका निर्माण करना चाहिये। बाष्प-स्नान, सूर्य-स्नान या फुटबाथ लेनेसे शरीरमें इस मांगकी सृष्टि होती है। घर्षण-स्नान करनेसे किडनी प्रभृति समस्त यन्त्र ही चंगे हो जाते हैं इस कारण घर्षण-स्नान करनेसे काफी पेशाव होता है। डावका पानी, नीबू रस मिला हुआ पानी एवं गाजरके सूपसे काफी पेशाव होता है। किडनीकी खराबीमें किडनीके ऊपर गरम-ठंढा देनेसे तथा मूत्राशयकी खराबीमें मूत्राशयके ऊपर गरम-ठंढा देकर गरम पानीसे डूस देनेसे इनकी कार्यक्षमता लौट आती है।

भींगी चादरकी लपेट (wet-sheet pack) —एक भींगी

चादरके द्वारा रोगीके गलेसे पैरतक ढककर बादमें तीन-चार कम्बल या रजाईके द्वारा ढक देनेसे ही इस पैकका देना हो जाता है। साधारणतः पैकके भीतर रोगीको एक घन्टेके लिये रखना आवश्यक है। इसके बाद रोगीका सारा शरीर गरम जलसे भिगोई तौलिया द्वारा पोंछ लेना कर्तव्य है। इसका फल बहुत कुछ स्टीमबाथके समान होता है।

भींगी चादरका नातिशीतोष्ण पैक (neutral wet-sheet pack) —रोगीको जाड़ा लगना समाप्त हो जानेके बाद उसे पैकके भीतर एक ही तापमें रखनेसे मातदिल पैक होता है। रोगीको लम्बे समयके लिये इस हालतमें रखनेके लिये ऊपरसे कम्बल हटाकर यह मातदिल पैक रखनी चाहिये।

भींगी चादरका ठंढा पैक(cooling wet-sheet pack)—रोगीको भींगी चादरके पैकके भीतर केवल २० मिनटके लिये रखनेसे ही यह पैक देना हो जाता है। प्रबल ज्वरके समय यह पट्टी पाँचसे सात मिनटके लिये एक साथ तीन-चार बार दिया जा सकता है। इस पैकका व्यवहार करके इच्छानुसार ज्वरकी गरमीको कम किया जा सकता है।

मिट्टीकी पट्टी (earth compress) —पुलटिसके लिये स्वच्छ मिट्टी स्वच्छ जगहसे लानी चाहिये। मिट्टीका तीन भाग बालू एवं एक भाग चिकनी मिट्टी हो जिससे वह शरीरसे विष व पसीना प्रभृति खींच ले सकता है। इसे आध इञ्च मोटा व बड़ा करके प्रयोग करना चाहिये। प्रयोगके समय मिट्टी मक्खनकी तरह मुलायम होनी कर्तव्य है। घावके ऊपर प्रयोग करनी हो तो मिट्टी सदा ही एक घन्टेके लिये नई हाँड़ीमें उबाल लेना चाहिये। पानीकी पट्टीकी तरह यह खुली अवस्थामें तथा प्रयोजनानुसार ढकी अवस्थामें प्रयोग किया जा सकता है। जब फ्लोनेल प्रभृति गरम कपड़े द्वारा ढककर यह प्रयोग किया जाता है तब उसे मिट्टीकी ढकी हुई पट्टी कहा जाता है।

मूत्र यंत्रकी पट्टी (renal compress) —वक्षास्थिके नीचे तृतीय अंशमें (over the lower third ofsternum) तीन-

से दस मिनटके लिये खूब शीतल पट्टी रखकर उसी समय कमर व नितम्बके ऊपर गरम जलका बैग रखकर सेंक देना होता है। निर्दिष्ट समयपर भींगे गमछेको हटाकर उस स्थानको सूखे फलानेलके द्वारा एक मिनटके लिये रगड़कर बादमें फिर ठंढा प्रयोग करना होता है एवं पीछेकी ओरका गरम बैग हटाकर एक मिनटके लिये ठंढे जलमें भिगोए गमछे द्वारा उस स्थानको पोंछकर फिर गरमो प्रयोग किया जाता है। एक ही समय इसे २० से ३० मिनटके लिये करना आवश्यक है। अन्तिम बार छातीके ऊपरसे पानीको पट्टी उठाकर उस स्थानको सूखे फलानेल द्वारा घर्षण कर लाल व गरम कर लेना होता है। मूत्र उत्पादन करने व मूत्रका परिमाण बढ़ानेमें यह जिस किसी भी औषधिकी अपेक्षा अच्छा काम करता है।

मालिश (massage) —प्राकृतिक चिकित्सामें मालिशका एक विशेष स्थान है। इसके द्वारा रक्त-संचालन बढ़ता है, शरीरके विष निकालने वाले यंत्र (eliminative organs) उद्दीपित होते हैं, परिपाक क्षमता वृद्धि पाती है, स्नायविक शक्ति बढ़ती है, निद्रा आती है, आभ्यन्तरिक यन्त्रोंकी रक्तबद्धता दूर होती है, देहके प्रधान यन्त्रोंकी कार्यक्षमता बढ़ती है, थकावट दूर होती एवं नया रक्त बनता है।

मालिश बहुत तरहसे किया जाता है। इसके भीतर घर्षण ही प्रधान है। किसी अङ्गपर हाथ रखकर घुमा-घुमाकर नीचेसे रक्त ऊपरकी ओर (कलेजेकी ओर) ले जानेको ही घर्षण (friction) कहते हैं।

कभी-कभी दोनों हाथोंसे हाथ व पैर प्रभृतिकी मांसपेशियोंको खींचकर पकड़कर चाप देना होता है। उसे हाथका चाप (petrissage) कहते हैं।

कभी-कभी दोनों हाथोंको कठोरेके समान करके उसके द्वारा आघात किया जाता है। उस समय उसे (clapping) कहते हैं।

बाष्प-स्नान (steam bath) —रोगीको एक बेंतकी कुर्सीपर बैठाकर एवं कुर्सीके नीचे उबलते हुए जलका एक बर्तन रखकर रोगीके गर्दन तक सारा शरीर व कुर्सीको इस तरह कम्बल इत्यादिके द्वारा ढकना

आवश्यक है जिससे बाष्प बाहर नहीं हो सके। साधारणतः सामनेकी ओर व पीछेकी ओर एक कम्बल देनेसे ही अच्छा बाष्प-घर तैयार होता है। दोनों कम्बलोंको मेजतक विस्तृत करना चाहिये जिससे बाष्प बाहर नहीं हो सकता। स्टोव व चूल्हाके ऊपर एक मुँहकी एक टीनकी केटली रखकर रबरके नलकी सहायतासे कुर्सीके नीचे बाष्प लाकर बहुत अच्छी तरह बाष्प-स्नान प्रयोग किया जा सकता है। बाष्प-स्नानके बाद सारा शरीर भींगी तौलियासे पोंछकर शरीरकी गरमी (applied heat) को खींच लेना चाहिये। शरीरको दोषशून्य करनेके लिये इस तरहका उपाय और दूसरा नहीं।

वस्तिप्रदेशकी पट्टी (pelvic pack)—एक भींगे गमछेको लंगोटाकी तरह पहनकर ऊपरसे एक पशमी अलवान यो गरम कम्बल पहन लेनेसे इस पट्टीका लेना हो जाता है। भींगे गमछेको इस तरहसे लपेटना चाहिये जिससे भीतर हवा न जा सके। पेड़ू व वस्तिके विभिन्न रोगोंमें यह अत्यन्त फलप्रद है।

सूखी मालिश (dry friction)—एक बड़ी सूखी तौलिया या विछावनकी चादरका दोनों किनारा दोनों हाथोंके द्वारा एवं शरीरके विभिन्न अन्शोंके ऊपर उसे रखकर दोनों ओरसे खींचातानी करके शरीरको गरम कर लेनेका नाम ही सूखी मालिश है। स्नानके बाद जब शरीर शीतल हो जाता है तब यदि शरीरको ठंढी अवस्थामें छोड़ दिया जाय तो ठंढा लगकर रोग बढ़ सकता है अथवा नया रोग पैदा हो सकता है। इसलिये स्नानके बाद सूखी मालिश ग्रहण कर शरीरको गरम कर लेना कर्तव्य है। स्वस्थ लोग इसे स्वयं कर सकते हैं। किन्तु दुर्बल व रोगी मनुष्योंको इसे सदा ही दूसरोंकी सहायतासे करा लेनी चाहिये। जो सब दुर्बल रोगी नये रोगोंसे ग्रस्त हैं, वे, हो सकता है कि चादरके घर्षणको बरदास्त न कर सके। उनका शरीर गरम करनेके लिये दोनों हाथ सुखाकर कोमलतासे रोगी का शरीर रगड़ना चाहिये। किन्तु स्नानके बाद अति दुर्बल व बुखारके रगियोंका शरीर अत्यधिक गरम नहीं करना

चाहिये। ऐसा करनेसे स्नानको उपकारिता ही नष्ट हो जाती है। स्नान व स्पंज बाथके बाद सदा ही घर्षण कर केवल शरीरके स्वाभाविक तापको लौटा लेना आवश्यक है।

सूखा पैक (dry pack):—भीतरमें गीली चादर न देकर केवल कम्बल द्वारा भींगी चादरके पैककी तरह रोगीको गलेतक ढककर रखनेसे ही इस पैकका देना हो जाता है। पैकके समय पैरके नीचे गरम बोतल रखना जरूरी है। जो सब रोगी, विशेषत: दुर्बल रोगीका शरीर अत्यन्त ठंढा, जिन्हें बाष्प-स्नान नहीं दिया जाता अथवा बाहर लाकर सूर्य-स्नान कराया नहीं जा सकता, इसी तरह उनका शरीर गरम कर, उसके बाद उन्हें तौलिया स्नान, घर्षण-स्नान या साधारण स्नान प्रयोग किया जा सकता है।

सिजबाथ (sitz bath):— भीतरके माँसपर बल न लगाकर लिङ्गके बाहरका चमड़ा रूमाल द्वारा बार-बार पानी लेकर धोनेका नाम ही सिजबाथ है। इस तरह १५ से ३० बार करना आवश्यक है। स्त्रियोंको बाहरका चमड़ा धोना चाहिये। स्नायुओंके द्वारा ही शरीर परिचालित होता है। जिस स्थानमें अनुभूति सर्वापेक्षा ज्यादा है उसी स्थानमें यह 'बाथ' प्रयोग करके समस्त स्नायुओंको उद्दीपित कर लिया जा सकता है। इसलिये इससे शरीरका सारा काम ही अच्छी तरह चलता है।

सूर्य-स्नान (sun bath):— सिरको पहले धोकर एवं सिरपर भींगी तौलिया रखकर अथवा सिरको छायामें रखकर सूर्य-स्नान लिया जाता है। पहले दिन ही अधिक समयके लिये ताप न लेकर धीरे-धीरे समय बढ़ाना चाहिये। इस समय गमछेकी तरहका हल्का वस्त्र पहनना चाहिये। चमड़ेके ऊपर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं उसी समय केवल लाभ होता है। यदि इस समय शरीर गरम हो जाय तब बार-बार पानी पीना उचित है एवं सिर गरम हो जानेपर बार-बार सिर धो लेना चाहिये। हर तरहके गरम स्नानोंको लेनेके बाद ही भींगी

तौलियासे शरीर पोंछकर शरीरको ठंडा कर लेना उचित है। इसे वाष्प-स्नान इत्यादिके बदलेमें व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु दूसरे ताप स्नानोंसे यह बहुत अधिक फायदेमंद है।

काफी समयके लिये सूर्य-स्नान लेनेसे लोमकूप खुल जाते हैं एवं उस रास्तेसे शरीरके कितने ही दूषित पदार्थ निकल जाते हैं। इसके अलावा इसे लेनेसे देहका बनना व तोड़ना (metabolism) वृद्धि पाती है, शरीरमें विटामिन-डी शोषित होता है, शरीरमें सहज ही कैलशियम व फास्फोरस ग्रहीत होता है, रक्तको श्वेत व लाल कणिकायें वृद्धि पाती हैं, रक्त संचालनकी व्यवस्था उन्नत होती है एवं शरीरकी रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है। विभिन्न रोगोंके बाद स्नानके पहले क्रम-वर्धमान सूर्य-स्नान लेनेसे शरीर जल्दीसे बन जाता है। रोगका आक्रमण रोक रखनेके लिये भी यह विशेष फलदायक है।

सेंक (fomentation) :—जिस किसी तरहसे भी चमड़ेके ऊपर गरमी प्रयोग करनेसे ही सेंक देना होता है। गरमी नम व शुष्क हो सकती है। गरम जलके भीतर तौलिया डूबाकर एवं उसे निचोड़-कर आसानीसे सेंक दिया जाता है। पुनः गरम जलकी बोतल या थैली द्वारा भी सेंक दिया जा सकता है। जहाँ सेंक देना होगा वहाँ चमड़ेके ऊपर एक सूखी तौलिया रखकर एवं उसपर गरम थैली रखकर बादमें उसे कम्बल आदि द्वारा ढकना होता है। ऐसा करनेसे उस स्थानपर वाष्प-स्नान के प्रयोग जैसा लाभ होता है। ऊपरी अंगोंमें कहीं भी सेंक देना हो तो सर्वदा ही दोनों हाथ या पैर गरम है कि नहीं, देख लेना जरूरी है। यदि गरम न हो तब हाथ पाँव पहले गरम कर बादमें पेट व छाती आदिपर सेंक देना उचित है। सेंक कभी गरममें शेष नहीं करना चाहिये एवं सेंकके बाद सदा ही सेंककी जगहको शीतल जलमें भिगोए गमछे द्वारा कुछ समयके लिये रगड़ लेना उचित है।

स्थानीय वाष्प-स्नान (local steam bath),— सारे शरीरमें वाष्प प्रयोग न कर किसी अवस्थामें देहके अंश विशेषपर

वाष्प प्रयोग करनेकी जरूरत हो जाती है। एक उबलते हुए जलके पात्रको नीचे रखकर एवं आक्रान्त अंगको पात्रके ऊपर रखकर एक कम्बल द्वारा ढक देनेसे ही इस स्नानका लेना हो जाता है। वाष्प लेनेके बाद उस अंगको कुछ समयके लिये शीतल जलमें भिगोई तौलिया द्वारा पोंछ लेना उचित है।

स्नान :—स्नान सबके लिये जरूरी है। हैजा या बसन्त जो कोई भी रोग क्यों न हो, उसीमें स्नान करना उचित है। किन्तु स्नानका अर्थ यह नहीं है कि सारे शरीर को जलमें डुबोकर स्नान किया जाय। आवश्यकतानुसार रोगीपर दिनमें एक बारसे लेकर तीनबार तौलिया-स्नान, घर्षण-स्नान या कटि-स्नान प्रभृतिका प्रयोग किया जा सकता है। न्यूमोनियामें भी रोगीपर इस तरह तौलिया-स्नान प्रयोग किया जा सकता है कि जिससे उसका खूब उपकार हो। रोगीकी अवस्था एवं पद्धतिके अनुरूप स्नान (bath) प्रयोग करनेसे रोगीके शरीरकी रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है, यकृत, हृद् यंत्र व मूत्र-यंत्र आदि शरीरके प्रधान-प्रधान यंत्रोंकी कार्यक्षमता उन्नत होती है और कोई नया उपसर्ग उत्पन्न नहीं हो सकता, रोगकी अस्वस्थता मिट जाती है, रोगके बाद शरीर टूट नहीं जाता एवं रोग सहज ही आरोग्य हो जाता है।

किन्तु स्नान देनेके पहले यह देख लेना चाहिये कि रोगीका शरीर गरम है या नहीं। गरम नहो रहनेपर मालिश, फुट बाथ या मृदु वाष्प-स्नान प्रभृति द्वारा शरीर गरम कर उसके बाद उसे बाथ देना चाहिये। गरम जलकी थैली द्वारा भी हाथ-पाँव गरम कर बाथ दिया जा सकता है। फिर बाथके बाद घर्षण आदि करके शरीर गरम कर लेना कर्तव्य है

स्पंज बाथ (sponge bath) :—तौलिया स्नान द्रष्टव्य।

स्टीम बाथ (steam bath) :—वाष्प-स्नान द्रष्टव्य।

हिप बाथ (hip bath) :—एक गमलेके भीतर, पाँव बाहर रखकर बैठकर, लगातार पेड़ू व काछ घर्षण करनेसे ही हिप बाथका

लेना हो जाता है। पहले दिन सिर्फ ३ मिनटके लिये लेकर, क्रमशः समय बढ़ाकर अन्तमें आधे घंटेके लिये लिया जा सकता है। शरीरकी गरम अवस्थामें अथवा शरीर गरम करके इस स्नानकर लेना चाहिये एवं इसके लेनेके बाद भी पुनः शरीरको घर्षण आदिके द्वारा गरम कर लेना आवश्यक है। ऐसा करनेसे ही हिप बाथमें लाभ होता है, अन्यथा नही। कोष्ठ साफ करने, परिपाक शक्ति व आँतोंकी रस शोषण-क्षमता बढ़ाने, समस्त परिपाक यंत्रोंको सबल व दोषशून्य करने एवं समस्त शरीरको ही उद्दीपित कर लेनेके लिये इसकी जोड़ी और नही है।

६६२

श्री कुलरंजन मुखर्जी लिखित

अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा

परिवर्धित पंचम संस्करण

[विभिन्न समाचार पत्रों की सम्मतियाँ]

प्राकृतिक चिकित्साकी यही मूल पुस्तक है। इस पुस्तकके बारेमें 'दैनिक विश्वमित्र' ने लिखा है—डा० मुखर्जीने हिन्दी साहित्य को एक अपूर्ण पुस्तक प्रदान की है। प्रत्येक स्वास्थ्यप्रेमीके लिये इस पुस्तकको अपने पास रखना आवश्यक है। 'लोकमान्य'—इस पुस्तकसे जनसाधारण बहुत लाभ उठा सकेंगे। 'नवभारत टाइम्स'—यह अपने विषयकी प्रामाणिक पुस्तक मान ली जायगी। 'सन्मार्ग'—प्राकृतिक चिकित्साकी सारी विधियाँ इस पुस्तकमें लिखी गई हैं। 'स्वतंत्र भारत'—डा० मुखर्जीकी पुस्तक पथ-प्रदर्शकका कार्य कर सकेगी। ३५० पृष्ठ, मूल्य—७-०० पै० मात्र।

शिशु-रोगोंकी गृह-चिकित्सा

जन्मसे शुरू करके वयः प्राप्ति तक शिशुको जितने रोग हो सकते हैं उनमेंसे प्रायः सभी रोगोंकी चिकित्सा व पथ्यविधि इस पुस्तकमें दी गई है। २२२ पृष्ठ, मूल्य—५-०० मात्र।

खाद्यकी नयी विधि

तृतीय संस्करण

खाद्य तथा पथ्यके बारेमें, यह एक नई तरहकी पुस्तक है। इस पुस्तकमें विभिन्न खाद्योंका गुणागुण, भोजनकी स्वास्थ्यनीति, पथ्य-चिकित्सा तथा खाद्यके बारेमें जो कुछ जाननेका है वे सभी आधुनिक वैज्ञानिक खोजके आधारपर सरल ढङ्गसे लिखा गया है।

२१६ पृष्ठ, मुल्य—६-०० मात्र।

पुराने रोगोंकी गृह-चिकित्सा

परिवर्धित चतुर्थ संस्करण

इस पुस्तकमें अजीर्ण, अम्लरोग, पाकस्थलीका घाव, पुराना पेचिश, बवासीर, पुराना ब्रंकाइटिस, दमा, रक्तहीनता, मधुमेह, हृद्रोग, हृत्शूल, हृत्कम्प, उच्च तथा निम्न रक्तचाप, करोनारी थ्राम्बसिस, बातव्याधि, सन्धिप्रदाह, पेशीबात, ग्रन्थिवात, साइटिका, मृगीरोग, लकवा, उन्माद रोग, चर्मरोग, एकजिमा, पुराना घाव, दाँतके रोग, बालके रोग तथा जननेन्द्रियके विभिन्न रोगोंकी चिकित्सा व पथ्यविधि विस्तृत रूपसे दी गई है। लेखकने हजारों रोगियोंके ऊपर इन पद्धतियोंका प्रयोग करके पृथ्वीके श्रेष्ठ चिकित्सकोंके समर्थित पद्धतिके अनुसार यह तथा दूसरी पुस्तक लिखी है। ३०० पृष्ठ, मूल्य—७-०० मात्र।

स्त्री-रोगोंकी गृह-चिकित्सा

परिवर्धित पंचम संस्करण

इस पुस्तकमें स्तनका फोड़ा, जरायुका प्रदाह, जरायुकी स्थान-च्युति, बाधक वेदना, ऋतुरोध, स्वल्परज, अतिरज, अनियमित ऋतु, गर्भावस्था, प्रसव, व सूतिका क्षेत्रके विभिन्न रोग, इनके अलावा हिस्टीरिया व श्वेतप्रदर आदिकी चिकित्सा तथा स्त्री जीवनमें ऋतुकाल व गर्भावस्था आदि विभिन्न अवस्थामें स्वास्थ्यनीति व पथ्यविधि विस्तृतरूपसे लिखी गई है।

२०८ पृष्ठ, मूल्य—६-०० मात्र।

सत्यकी खोजमें

समाज, धर्म, राजनीति और मानसिक स्वास्थ्य आदि विषयमें एक श्रेष्ठ पुस्तक। ६० पृष्ठ, मूल्य—१-०० मात्र।

PROTECTIVE FOODS

in Health and Disease

[2nd Edition]

यह बिलकुल एक नई पुस्तक है। इस पुस्तकमें लेखकने विभिन्न स्वास्थ्यकर खाद्यके बारेमें चर्चा की है। इस पुस्तकका अधिकांश प्रबन्ध पहले Amrita Bazar Patrika, Hindusthan Standard तथा भारतवर्षकी विभिन्न श्रेष्ठ पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुका है। स्वास्थ्यकर खाद्योंमें सेव, केला, बेल, खजूर, अमरूद, किशमिश, आंवला, नीबू, आम, कमला, पपीता, अनन्नास, अंगुर, टमाटर, नारियल, बदाम, गाजर, आलू, सोयाबीन, दूध, अंडा, मछली, मांस, मधु, गुड़, ईख, मक्खन, तिल व आलिव आयल आदि ६५ विभिन्न खाद्योंका इतिहास, गुणागुण, खाद्य-मूल्य, विभिन्न देशोंमें खाद्य तथा औषधिके रूपमें इसका व्यवहार इस पुस्तकमें वर्णित हुआ हैं। पहले किशमिश चिकित्सा व नीबू चिकित्सा नामक पुस्तक मिलती थी। नये तथ्यों द्वारा उसी तरह इस पुस्तकमें विभिन्न रक्षाकारी खाद्योंके बारेमें लिखा गया है। इस पुस्तककी भूमिका हमलोगोंके भूतपूर्व जनप्रिय स्वास्थ्य-मंत्री श्री डी॰ पी॰ कारमारकारजीने लिखा है। इस पुस्तककी भूमिकामें उन्होंने लिखा है—

The problem of correct nutrition is one of great improtance to us from the point of view of promoting the health of our people. What to eat and how much to eat is a matter of concern to every one who seeks to maintain good health. The normal diet in India is deficient in protective foods. This treatise dealing with "Protective Foods in Health and Disease" by Dr. K. R. Mukherjee, a distinguished physician who has contributed richly to the better understanding of

various facts of health by his numerous publications, provides the layman and expert alick with a good knowledge of the various aspects of protective foods, like fruits, nuts, vegetables, milk and milk products, fats etc. He has dealt with the subject with a remarkable ability and clarity of expression, I am quite sure that it will be good reference book to all those who seek to study the subject. I hope that it will be patronized by all Governmental and non-official agencies who have to deal with this important subject.

इस पुस्तकका आकार इम्पिरियल साईज का। इसकी पृष्ठ संख्या ४२०, मूल्य—८) मात्र।

मिलने का पता—

प्राकृतिक चिकित्सालय

१४/२ बी और सी, हाजरा रोड (पश्चिम), कालीघाट, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-३१८०

स्व० डा० कुलरञ्जन मुखर्जी प्रणीत

१। अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा	—	७.००
२। दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	—	७.००
३। पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा	—	७.००
४। स्त्री-रोगों की गृह चिकित्सा	—	६.००
५। शिशु-रोगों की गृह चिकित्सा	—	५.००
६। खाद्य की नयी विधि	—	६.००
७। सत्य की खोज में	—	१.००
८। Protective Foods in Health and Diseases		13.00

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती प्रणीत

1. A Hand Book of Natural Treatment		5.00
2. Birth Control (Natural Process)		0.50
3. तम्बाकू का विष क्रिया	—	०.५०
4. Sure Cure		5.00

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४/२ बी और सी, हाजरा रोड, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-२१८